http://www.jainkosh.org

ज्ञानार्णव प्रवचन

भाग 20

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

श्री ... जैन महिला मंडल,
श्री ...
मल्हारगंज, इन्दौर.

ज्ञानार्णव प्रवचन

१८, १९, २०, २१ भाग

प्रवक्ता:
अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक:
खेमचन्द जैन सर्राफ,
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बन्धु, मन्दिर एवं लाइब्रेरियोंको
भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मन्दिरकी ओरसे अर्धमूल्यमें।

प्रथम संस्करण १०००] सन् १९७३ [मूल्य १५)

Report any errors at vikasnd@gmail.com

आत्म-कीर्तन

http://www.jainkosh.org

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान ।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ।।५।।

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रों द्वारा ।
४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा ।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानार्णव प्रवचन विंश भाग

रूपस्थधर्म्मध्यानवर्णन प्रकरण ३९

ज्ञानलक्ष्मीघनाश्लेषप्रभवानन्दनन्दितम् ।
निष्ठितार्थमजं नौमि परमात्मानमव्ययम् ॥

संसारी जीवोंके ध्यानकी स्थितियां—हम आप सब जीवोंके कुछ न कुछ ध्यान निरंतर बना रहता है, चाहे वह बहुत ही थोड़े समयमें बदलकर रहता हो, पर रहता है ध्यान सबके, और हम आप तो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव हैं, जो असंज्ञी जीव हैं उनके भी किसी न किसी रूपमें चित्तके बिना भी ध्यान बना रहता है, हाँ उसको एक प्रमुखता नहीं दी है, किन्तु संज्ञावोंके बलपर जैसे कि सिद्धांतमें बताया है कि आर्त रौद्रध्यान तो संसारके मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सभीमें पाया जाता है। विशेषतया चित्त वालोंके, मन वालोंके ध्यानकी बात कही जाती है, और मनुष्योंके तो इस ध्यानकी विशेषता है ही। हम आप करते हैं विचार, और वे सब विचार ध्यानोंके रूपमें बन जाते हैं। भाव ही हम आप कर पाते हैं, इसके अतिरिक्त और हम आप कर ही क्या सकते हैं ? जरा अपने आपका जितना स्वरूप है उतने पर दृष्टि देकर निर्णय करिये। सभी पदार्थ अपने गुणपर्यायात्मक हैं, अपने प्रदेशोंसे बाहर कोई भी पदार्थ कुछ नहीं करता।

वस्तुके निज क्षेत्रमें वस्तुत्वका प्रभाव—लोकमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध तो है ही विकारपरिणमनके प्रसंगमें। इस कारण लोगोंको ऐसा ख्याल हो जाया करता है कि देखो अमुक पदार्थने अमुक दूसरे पदार्थकी यह क्रिया की, क्योंकि वहां ऐसा कुछ अन्वयव्यतिरेक देखा गया, निमित्तके सद्भावमें उपादानमें कार्य देखा गया और ऐसे निमित्तोंके असद्भावमें उपादानमें यों कार्य नहीं देखा जाता है, इस तरह कार्य होनेके कारण एक यह ख्याल लोगोंको बन गया है कि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका कुछ कर देता है। यही कारण है कि एक पदार्थमें किसी दूसरे पदार्थका कर्तापन लाद दिया जाता है। जैसे मैं अमुकको सुखी करता हूं, अमुकको दुःखी करता हूं—इसमें तो कुछ निमित्तनैमित्तिक भावोंकी स्थिति नहीं बन रही है तिस पर भी यह प्रतीत है। वस्तुतः सर्वपरिस्थितियोंमें प्रत्येक पदार्थ अपने गुणपर्यायमें तन्मय रहा करता है। अतएव किसी भी पदार्थका गुण या पर्याय उसके अपने क्षेत्रसे बाहर नहीं होता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अशुद्ध परिणमनमें भी वस्तुस्वातन्त्र्यकी झलक—वस्तुस्वातन्त्र्यके निर्णयमें कुछ दृष्टांत ले लो। दीपक पदार्थको प्रकाशित करता है। इसमें दो बातें कही गई हैं—दीपक और पदार्थ। आप यह बतलावो कि दीपक कितना बड़ा है, कोई तो उस लालटेन या दीपकको देखकर झट बता देंगे कि दीपक तो कमरेके बराबर बड़ा है। पर दीपक उतना बड़ा नहीं है। दीपक तो उतना बड़ा है जितनेमें उसकी लौ है। यदि कहो कि नहीं बहुत बड़ा है दीपक, कमरे बराबर है, तो कमरेके जिस कोनेमें हाथ उठा दें तो वह सारा दीपक बुझ जाना चाहिए, पर ऐसा तो नहीं है। दीपक उतना बड़ा है नहीं। दीपक तो उतना ही बड़ा है जितना कि उसकी लौ है। दीपकके प्रदेशोंसे बाहर दीपकका कुछ नहीं है। ये पदार्थ दीपकसे बहुत दूर हैं, किन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध न मेटा जा सकेगा। प्रकट दिख रहा है कि दीपकका निमित्त पाकर ये पदार्थ अपनी अंधकार अवस्थाको त्यागकर प्रकाश अवस्थामें आये हैं। लेकिन इतना सम्बंध होनेसे कहीं यह बात न बन जायगी कि दीपकने अपना स्थान छोड़ छोड़कर पदार्थोंमें आ आकर इन्हें प्रकाशित किया है। अब जरा एक दृष्टांत और लीजिये। यहाँ प्रकाशके मध्यमें जो यह छाया रूप परिणमन है यह किसका छायारूप परिणमन है? इस बाबत तो निमित्तनैमित्तिक सम्बंध देखकर लोग कह देते हैं कि यह हाथकी छाया है, किन्तु यह बतलावो कि हाथ कितना है? जितनेमें ये अंगुलियां हैं, हथेलियां हैं उतना ही तो हाथ है। तो हाथके प्रदेशोंमें हाथका ही सब कुछ है। हाथसे बाहर हाथकी कोई चीज नहीं है। पर यह छायारूप परिणमन कैसे हुआ? यह पुस्तक है, यह चौकी, यह पृथ्वी जो भी वहां कुछ चीज प्रकाशके अवरोधरूप हो रही है छायारूप परिणम रही है, वह परिणमन पदार्थका है।

निजमें स्वातन्त्र्यका अनुभव—यहाँ दृष्टांत केवल इसलिए दिया है कि अपने आपमें यह निर्णय कर लीजिए कि मैं सबसे निराला शरीरसे भी जुदा केवल ज्ञानानन्दस्वरूपको लिए हुए चेतन पदार्थ हूं। यह मैं पदार्थ अपनेमें अपना ही सब कुछ करता रहता हूं, मैं किसी दूसरे पदार्थका कुछ भी कर सकनेमें समर्थ नहीं हूं। मैं तो केवल एक भाव बनाता हूं, और वे सब भाव ध्यानरूपमें हो जाया करते हैं। तो हम आप सबके ध्यान ये निरन्तर रहते हैं। अब उन्हीं ध्यानोंसे हम अपनी बरबादी कर लेते हैं और ध्यानोंसे ही हम अपनेको उन्नतिके पथपर ले जा सकते हैं।

सोलह ध्यानोंमें आठ अशुभ ध्यान—ध्यान १६ बताये गए हैं—४ आर्तध्यान, ४ रौद्रध्यान, ४ धर्म्यध्यान और ४ शुक्लध्यान। आर्तध्यान इष्टवियोगज, अनिष्टसंयोगज, वेदनाप्रभव और निदान—ये चार हैं। इष्टका वियोग होनेसे उसके संयोगके लिए जो चिन्तन चलता है वह इष्टवियोगज आर्तध्यान है। किसी अनिष्टका संयोग होनेपर उसके वियोगके

http://sahjanandvarnishastra.org/

लिए जो कल्पना होती है वह अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान है। शरीरमें पीड़ा होनेपर जो चिन्तन चलता है वह वेदनाप्रभव आर्तध्यान है। अन्य वस्तुवोंकी प्राप्तिके लिए जो आशा चलती है वह निदान नामक ध्यान है। ये ४ आर्तध्यान इसलिए कहलाते हैं कि इन ध्यानोंमें पीड़ा उत्पन्न होती है। पीड़ाके कारण इन ध्यानोंको आर्तध्यान कहते हैं। जैसे कि खोटे ध्यान, ये चार बताये हैं ऐसे ही खोटे चार रौद्रध्यान हैं—हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द और विषयसंरक्षणानन्द। हिंसामें आनन्द मानना, हिंसा करनेमें, करानेमें, करते हुएको देखकर किसी भी प्रकार हिंसाके प्रसंगमें आनन्द मानना हिंसानन्द रौद्रध्यान है। झूठ बोलनेमें, बुरा माननेमें, झूठी गवाही देनेमें, हँसी मजाकमें आनन्द मानना मृषानन्द रौद्रध्यान है। चोरीमें आनन्द मानना चौर्यानन्द है और पञ्चेन्द्रियसे विषयोंके संरक्षणमें आनन्द मानना सो विषयसंरक्षणानन्द रौद्रध्यान है। इसे रौद्रध्यान क्यों कहते हैं? यह रुद्र भावको लिए हुए होता है, क्रूरताको लिए हुए होता है और आनन्द इसके साथ यों लगा है कि वह उसमें मौज मानता है। ये ८ छोटे ध्यान हैं, इनसे तो आत्माकी बरबादी है, पर धर्मध्यान और शुक्लध्यान—ये संसारके संकटोंसे छुटकारा करानेके साधन हैं।

धर्म्यध्यान—४ धर्मध्यान हैं—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थान-विचय। भगवानकी आज्ञा मानकर जो धर्मध्यान बना हो वह आज्ञाविचय धर्मध्यान है। इसमें मात्र आज्ञा मानकर श्रद्धानी बना हो इतनी ही बात नहीं है, श्रद्धान तो उसके श्रद्धानके ढंगसे है, विवेकपूर्वक है वह आत्मदर्शी है, पर जिस किसी भी समय भगवानकी आज्ञाकी प्रमुखतासे विचार होता है वह आज्ञाविचय धर्मध्यान है। ये रागादिक विकार कैसे दूर हों, ये ही जीवकी बरबादीके हेतुभूत हैं। इस प्रकार रागादिकके अपायका चिन्तन करना सो अपायविचय धर्म-ध्यान है। कर्मोंके फलका चिन्तन करनेको विपाकविचय कहते हैं। संस्थानविचय धर्मध्यान इन ध्यानोंमें विशेष महत्त्वका ध्यान है, और इसके सम्बंधमें यह भी कथन चलता है कि मुख्यतासे संस्थानविचय धर्मध्यान निर्ग्रन्थ साधुवोंके हुआ करता है। वैसे तो सम्यग्दृष्टियोंके चार ध्यान हैं पर मुख्यताकी अपेक्षा देखा जाय तो संस्थानविचय साधु जनोंके हो पाता है। इसका एक मुख्य रूपक यह समझ लीजिए कि तीन काल तीन लोककी रचना उपयोगके सामने चित्रितसी रहे, ऐसी स्थिति होनेको संस्थानविचय धर्मध्यान कहते हैं। लोक कितना बड़ा है? ३४३ घनराजू प्रमाण है, इसमें यह जीव सर्वत्र जन्मा है। इतने बड़े लोककी सुधि बने। संस्थानविचय धर्मध्यान साधु जनोंके चिरन्तन रहा करता है। फिर संस्थानविचय धर्मध्यानमें उनके जो भेद किए गए हैं उनके भेदसे उनका महत्त्व और अधिक ज्ञात होता है। संस्थान-विचयके इन चार प्रकारोंको देखिये—पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत। पिण्डस्थध्यानमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपने आपके सम्बन्धमें जो चिन्तन चलता है वह पार्थिवी, आग्नेयी, मारुती, वारुणी व तत्त्व-रूपवती धारणामें है और वह यद्यपि एक कल्पनाके आधारपर चलता है, परन्तु उसमें क्रिया-गौरवका अभाव होनेसे आत्मनिर्भर अपनेको अनुभव करता है और उस स्थितिमें निष्कलंक आत्माको ध्यानमें लेता है। पदस्थध्यानमें मंत्रोंके सहारे अपना ध्यान जमाना है। रूपस्थध्यान में क्या होता है? उसके सम्बंधमें आचार्यदेव कहते हैं।

आर्हन्त्यमहिमोपेतं सर्वज्ञं परमेश्वरम्।
ध्यायेद्देवेन्द्रचन्द्रार्कसभांतस्थं स्वयंभुवम् ॥२०११॥

रूपस्थध्यानमें ध्येय—जो प्रभु आर्हन्त्यकी महिमासे सहित हैं, रूपस्थध्यानमें उस सकलपरमात्माका ध्यान किया जाता है। ये परमात्मा चार घातिया कर्मोंसे रहित हैं, किन्तु अभी शरीरसे रहित नहीं हो सके, ऐसे सकलपरमात्माका ध्यान होता है। यों समझ लीजिए कि जिस पुरुषने ज्ञान और वैराग्य किया है, ज्ञान और वैराग्यकी जब सीमा बढ़ती है तो वह परिग्रहको नहीं लपेट सकता, सबसे छुटकारा पाता है, निर्ग्रन्थ अवस्थाको धारण करता है। केवल एक आत्माकी धुनि ही उसके बनी रहती है। आत्मदर्शनके अनेक अवसरोंको आत्मा-नुभवके रससे तृप्त होकर उस महान आनन्दके प्रतापसे वह चार घातिया कर्मोंको नष्ट कर देता है। ज्ञानावरण—जो ज्ञानको रोके, दर्शनावरण—जो दर्शनको न प्रगट होने दे, मोह-नीय—जो दर्शन और चारित्रको बिगाड़ दे, अन्तराय—जो विघ्नका कारण हो, ऐसे चार घातिया कर्मोंका उसके विनाश होता है। रागद्वेषादिकका वहाँ अभाव है और तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थोंके जाननेकी शक्ति वहाँ प्रगट होती है, ऐसी आर्हन्त्यकी महिमा करके सहित हैं ये सकलपरमात्मा।

दिव्यसभास्थ प्रभुका ध्यान—रूपस्थध्यानमें वह सब दृश्य भी विचारना है जो समव-शरणमें हुआ करता है। पृथ्वीसे कुछ कम ५ हजार धनुष ऊपर समवशरणकी रचना शुरू होती है। जमीनपर इस समवशरणको कहाँ बनायें? १०-१२ कोशका ऐसा मैदान, जहाँ लोग जा सकें, कहीं पर्वत है, कहीं नदी है। तो यह रचना देख लो, ऊपर रचना होती है, सीढ़ियोंसे मनुष्य तिर्यञ्च आदि पहुंचते हैं। अनेक रचनायें जो मनको हरने वाली हैं उनको निरखते हुए जहाँ भगवान विराजे हैं, उनके निकट बारह सभायें होती हैं, उनमें मनुष्य तिर्यंच देव आदिक सभी विराजमान होते हैं। तीनों लोकोंके इन्द्र देवेन्द्र राजा महाराजा चक्रवर्ती सभीके सभी उस वीतराग प्रभुकी प्रभुताको निरखकर वहाँ खिंचे चले आते हैं। अरे उन देव देवेन्द्रोंको, बड़े-बड़े चक्रवर्तियोंको कौनसे सांसारिक वैभवकी कमी है, क्यों वे प्रभुके समक्ष जाते हैं? अरे वे सभी आत्महितके अभिलाषी हैं, और आत्महित है वीतरागतामें। तो उस वीतरागतासे अपने परिणामोंको निरखकर, अपने ज्ञानबलको देखकर वह वीतरागता प्राप्त की

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाती है। उस वीतरागताकी ऐसी महिमा है कि तीन लोकके इन्द्र खिंचे हुए चले आते हैं। रूपस्थ ध्यानमें उस परमात्माका स्मरण करना है जो आत्मविश्वास, आत्मज्ञान और आत्म-रमणके प्रकाशसे अनेक भव्य साधु वीतराग और सर्वज्ञ बन गए हैं, वीतराग सर्वज्ञ होनेपर अब उनसे मनुष्य इस तरह बातें नहीं कर सकते। वे परमात्मा हैं, यों उनसे शंका समाधान नहीं हो सकता, कोई उनसे घरकी चर्चा नहीं कर सकता। वह तो एक दर्शनीय मुद्रा है, वे अपने अनन्त आनन्दमें विराजमान हैं, ऐसे परम ज्ञानानन्दस्वरूपमें विराजमान सर्वज्ञ, परमेश्वरको जो देवरचित सभाके मध्यमें विराजमान हैं उनका ध्यान रूपस्थध्यानमें होता है।

प्रभुध्यानके समय आत्मप्रभुताका स्मरण—प्रभुके ध्यानके समय अपना भी ध्यान चलता रहता है तब आनन्द मिलता है। जैसे ये प्रभु हैं वैसी ही शक्ति मुझमें है, इस प्रकार का विश्वास हो तब ध्यान चलता है, नहीं तो जैसे यहाँ किसी बड़े महाराजके समक्ष पेशीमें आया हुआ कोई गरीब एक दीन और स्वामीका नाता अनुभव करके दुःखी रहता है, उसमें किसी न किसी प्रकारकी दीनता ही बनी रहेगी, ऐसे ही प्रभुका ध्यान करने वाले लोग मैं दीन हूं, ये मालिक है यों विचारे तो दुःख ही रहता है। तत्त्ववेदी भक्तजन अपने स्वरूपके साथ भी जोर लगाया करते हैं, वही शक्ति मुझमें है जो प्रभुमें है, तभी तो अपनी शक्तिका विचार करके हर्ष होता है और वर्तमान जो क्रिया है, परिणमन है उन्हें देखकर विषाद होता है तो आनन्द और पश्चाताप दोनों जब एक जीवके बनते हैं उस स्थितिमें कुछ ठंडे आँसू, कुछ गर्म आँसू इस तरह और गद्गद् वाणीमें मानो कुछ बोल रहा है, प्रभुसे तो कुछ बोला नहीं जाता है, मगर गद्गद् वाणीमें भीतरी भक्तिका पराग निखरता है। जैसे ४-५ वर्षके तोतले बालककी जो आवाज होती है उससे भी अधिक तोतली बोलीमें मानो वह कुछ प्रभुसे कहना चाहता है, वह एक प्रभुके ध्यानकी स्थिति है।

रूपस्थध्यानमें प्रभुशरण ग्रहण—इस शुभध्यानके प्रसंगमें उत्तरोत्तर विशुद्धि बढ़ाते हुए इन ध्यानोंका क्रम रखा गया है। पूर्वमें जो ध्यान बताये गए हैं उनसे अधिक प्रभुकी निकटता इस रूपस्थध्यानमें चल रही है। यह उपासक जगतमें किसीको अपना शरण नहीं समझता। कैसे समझे शरण? सब कुछ देख लिया, भोग लिया। जहाँ यह जीव गया, जिसके निकट पहुंचा, जिसको इसने शरण माना वहां ही इसे धोखा मिला, ठोकर ही मिली। जैसे बालक लोग जब फुटबाल खेलते हैं तो जिस बालकके पास वह फुटबाल पहुंची उसी बालकने पैरकी ठोकर मारकर उसे वहांसे भगा दिया। वह बेचारी फुटबाल एक जगह स्थित नहीं रह पाती। इधर उधर जहाँ कहीं भी पहुंची वहाँ ही ठोकर लगी, ऐसे ही यह जीव जिसे अपना शरण समझकर जिसके पास पहुंचता है वहीं इसे ठोकर मिलती है, शांतिसे स्थिर बैठ नहीं पाता। सर्वत्र इसे धोखा ही धोखा मिलता है। तब फिर किसको शरण मानें, किससे अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हितकी आशा करें ? सबसे विमुख होकर एक उस वीतराग सर्वज्ञदेवकी शरण गहें, उन्हींके दर्शन, गुणस्मरणमें अपना समय लगायें। रूपस्थध्यानमें उस समवशरणका ध्यान करें, जहाँ पर वीतराग प्रभु विराजे हैं, जिनकी वीतरागताको निरखकर देव देवेन्द्र, मनुष्य, तिर्यञ्च सभी पहुंच रहे हैं। सभी वीतराग प्रभुके चरणोंमें झुक रहे हैं। यों रूपस्थध्यानमें अनेक विधियोंसे अनेक बातें बतावेंगे। उससे हम आप अपना रूपस्थध्यान बनानेका प्रयत्न करेंगे तो उस रूपस्थ ध्यानके मर्मको हम आप पहिचान सकेंगे।

रूपस्थध्यानमें स्वयंभू परमात्माका ध्यान--अर्हंत परमात्माको स्वयंभू कहते हैं, स्वयं में स्वयंके द्वारा जो होता है उसका नाम स्वयंभू है। वह प्रभुता बाहरकी बातोंको जोड़ जाड़-कर नहीं उत्पन्न की जाती है, किन्तु बाहरकी बातें जो कुछ आ गई हैं उनको घटानेसे वह प्रभुता व्यक्त होती है। जैसे किसी पत्थरमें से कोई कारीगर मूर्ति निकाल रहा है, उसे बता दीजिये कि ऐसी मूर्ति इस पत्थरमें बनानी है, तो वह कारीगर कुछ चीज यहाँ वहाँसे ला करके जोड़ जाड़कर मूर्ति नहीं बनाता, किन्तु कारीगरने ऐसी विकृत दशामें जहाँ मूर्ति नहीं प्रकट है ऐसे पत्थरमें उस मूर्तिके दर्शन कर लिये, अन्यथा उसके हाथ नहीं चल सकते हैं उस ढंगसे कि जिस ढंगसे हाथ चलाकर पत्थरको निकालकर मूर्तिको प्रकट कर सके। कारीगर करता क्या है, उन छेनियोंसे मूर्तिका आवरण करने वाले उन पाषाणखण्डोंको अलग करता है। मगर करनेकी भी पद्धति देखिये। पहिले बड़े-बड़े खण्डोंको वह बड़ी छेनी हथौड़ेसे अलग करता है, लेकिन सावधानी वहां भी है, उसके बाद उससे सूक्ष्म छेनी हथौड़ीसे उससे अधिक सूक्ष्म आवरणोंको वह हटाता है, फिर अत्यन्त सूक्ष्म छेनी हथौड़ीसे अत्यन्त सूक्ष्म आवरण करने वाले पत्थरोंको वह हटाता है। देखने वाले लोग तो यही कहेंगे कि व्यर्थमें यह खर्चा ले रहा है, काम कुछ नहीं हो रहा है, मगर वह कारीगर उन समस्त स्थितियोंमें बाह्यतत्त्वोंको दूर कर रहा है, जोड़ कुछ नहीं रहा है। वे सब बाह्य खण्ड जब दूर हो जाते हैं तो वह मूर्ति प्रकट होती है। इसी प्रकार कुशल कारीगर सम्यग्दृष्टि जीव इस स्थितिमें भी जहाँ कि ये बातें गुजर रही हैं, शरीरमें बँधा है, कर्मोंसे दबा है, रागादिक विकार भी चल रहे हैं, ऐसी स्थिति में भी सम्यग्दृष्टि जीव परमात्मतत्त्वके दर्शन कर लेता है और उस परमात्मतत्त्वकी उपासनाके प्रसंगमें प्रज्ञाछेनीसे, भेदविज्ञानसे, विशुद्ध ज्ञानोपयोगसे इन रागादिक विकारोंको बाह्य तत्त्वों को हटाता है, किन्तु बाह्य तत्त्वोंके परभावोंके हट जानेसे वहाँ क्या प्रकट होता है, जो था वही प्रकट होता है, इसी कारण इस स्थितिको स्वयंभू कहते हैं।

अन्तरङ्गमें स्वयंभुत्व शक्तिका ध्यान—रूपस्थ ध्यानमें किन-किन विशेषणोंसे ध्यान किया जा रहा है, वे विशेषण विशेषता भी बताते हैं और शिक्षा भी देते चले जा रहे हैं। हमें उस अद्भुत आनन्दकी प्राप्तिके लिए क्या करना है, हमें बाह्यमें किसपर दृष्टि कराना है ?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अन्तर्दृष्टि करना है, अतः अनुभव करना है, ज्ञानमात्र निजस्वरूप जब ज्ञानमें ज्ञात होता है तो ज्ञानानुभूतिका रूप रखकर एक अद्भुत आनन्दको प्रकट करता है, उस आनन्दके प्रतापसे यह स्वयंभू अवस्था प्रकट होती है, ऐसे स्वयंभू परमेश्वर परमात्माको रूपस्थध्यानमें निरखा जा रहा है। देखिये जिन-जिनकी शरणमें हम अपना उपयोग लगाये रहते हैं वे हमें शरणभूत न होंगे। वे आकुलताके ही हेतुभूत हैं। शरण ढूँढ़ो ऐसोंका, जिनकी शरण गहनेसे अद्भुत आनन्दकी प्राप्ति हो, यही आत्माकी उत्कृष्ट स्थिति है। संसारके संकट न चाहने वाले लोगों को ऐसे प्रभुके दर्शन, गुणस्मरण करना चाहिए। यों रूपस्थ ध्यानमें यह सम्यग्दृष्टि पुरुष अरहंतको स्वयंभूके रूपमें निरख रहा है। अपने आपमें भी उस स्वयंभुत्वका प्रत्यय कर रहा है। यह बात इस मार्गमें बराबर है जिस मार्गमें प्रभुने प्रभुत्व प्रकट किया है। यह ज्ञानानन्द के विकासका पद अवश्य ही प्रकट होता है। यों एक परिचयके साथ भक्त प्रभुके ध्यानमें लीन हो रहा है। यह रूपस्थ ध्यानकी एक झलक है।

सर्वातिशयसम्पूर्णं सर्वलक्षणलक्षितम्।
सर्वभूतहितं देवं शीलशैलेन्द्रशेखरम् ॥२०१२॥

प्रभुध्यानकी साधना—अपने जीवनकी उन्नतिकी दिशामें मनुष्योंका कर्तव्य है कि वे निर्दोष सर्वगुणसम्पन्न पूर्ण विकासमय शुद्ध परमात्मप्रभुका ध्यान करें। विषय कषायोंसे कलंकित यह आत्मा है। प्रारम्भमें ये कैसे शुद्ध मार्गमें लगें और इन्हें कैसे अपने आपके स्वरूपमें मग्न होनेकी रुचि जगे, धुनि बने, उसके लिए उनको एक प्रभुभजन विशिष्ट सहायक है। जो मोही जन हैं उनको सभी प्रकारकी आकुलतायें प्राप्त होती हैं। इन मोही जनोंके चित्तमें निर्दोष प्रभुकी उपासनाकी बात कहाँ घर कर सकती है?

मोहकी विकट बाधा—यहाँ जीवोंपर सबसे बड़ी आपदा मोहकी है, दृष्टिविभ्रम की है। इस लोकमें है क्या? कुछ विचार भी इस प्रकारका करते हैं ये मोही जन, निर्णय भी मानते हैं, पर भीतरमें वैसी बात माननेको चित्त नहीं चाहता। बातें तो सब करके जाते हैं परन्तु दिलसे वैसी प्रतीति मान लें यह कठिन है। कठिन तो है, पर असंभव नहीं है। सोचिये क्या है हमारा यहाँ? ऐसा सोचना कोई कठिन नहीं है, यह तो एक बहुत मोटी बात है। क्या यह वैभव, ये परिजन, ये मित्रजन अपने हैं? अरे ये कोई अपने नहीं हैं, यह शरीर भी अपना नहीं है। यहाँ किसका ध्यान करें? कौन है लोकमें ध्यान किये जाने योग्य? बस एक प्रभु ही हैं उपासनाके योग्य, और उस प्रभुके दर्शन कब होंगे? जैसे प्रभु हैं वैसा अपने आपमें उपयोग बनायें तो प्रभुके दर्शन होंगे। इन चर्मचक्षुवोंसे प्रभुके दर्शन नहीं हो सकते। प्रभुके दर्शन होंगे ज्ञाननेत्रसे। जब ज्ञानको उस रूपमें ठहरायेंगे जैसे कि प्रभुमें गुण हैं, वैसा ही अपना उपयोग बनायेंगे तो प्रभुके दर्शन होंगे। सीधीसी बात यों भी कह सकते हैं कि जो अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आपमें प्रभुता प्राप्त करता है वह ही प्रभुके दर्शन कर सकता है।

प्रभुकी सर्वातिशयसम्पूर्णता—प्रभुके गुणोंको जानकर अब भक्तिमें उनके स्वरूपका वर्णन करिये। प्रभु सर्व अतिशयोंसे सम्पूर्ण हैं। अन्तरङ्ग अतिशय एवं बहिरङ्ग अतिशय—इन दोनों अतिशयोंसे परिपूर्ण परमात्मा हैं। निर्दोष ज्ञान, उत्कृष्ट ज्ञान और उत्कृष्ट आनन्दसे वे परिपूर्ण हैं। इससे बड़ा अतिशय और क्या है ? समन्तभद्र स्वामीने पहिले देवागम स्तोत्र करके प्रभुकी परीक्षा की कि मेरा माथा झुकने लायक प्रभु है, किस प्रकारका है ? हे प्रभो ! आपके चरणोंमें बड़े-बड़े देव आते हैं, आप आकाशमें गमन करते हैं, आपके ऊपर चमर ढलते हैं इससे कहीं आप प्रभु नहीं हैं, क्योंकि इस प्रकारकी बातें तो मायावी पुरुष भी करते हैं। हे प्रभो ! आपके शरीरमें पसीना नहीं है, अन्य भी दोष नहीं हैं, ऐसी बातें तो देवोंमें भी पायी जाती हैं, इनके कारण आप प्रभु नहीं हैं। तो क्या आपने धर्म चला दिया इस कारण आप प्रभु हुए ? अरे नहीं—धर्म चलाने वाले भी बहुत हैं। तब फिर किस बातसे प्रभु प्रभु हैं—जिसमें दोष एक भी न हो और गुण सब हों, बस ऐसी बात हो तो नमनेके योग्य प्रभु वही हैं।

अरहंत प्रभुकी निर्दोषता व गुणसम्पन्नता—जिसमें दोष एक भी न हो और समस्त गुणोंसे परिपूर्ण हो ऐसा कौन है प्रभु ? हे अरहंत प्रभु ! तुम ही हो ऐसे, जो निर्दोष हो और उत्कृष्ट गुणयुक्त हो। कैसे जाना हमने ? आपकी वाणीसे। आदिसे अन्त तक आपकी वाणी सुनकर आपके गुणोंको जाना। किसीके अन्तरङ्ग निर्दोषताकी परीक्षा करनी हो तो उसकी वाणी सुनकर परीक्षा की जाती है। किसी व्यक्तिके जुकाम हो अथवा बुखार हो तो उसके वचनोंको सुनकर यह पहिचान की जाती है कि हाँ इसके जुकाम है अथवा बुखार है, ऐसा ही कोई रोग दोष है, तो ऐसे ही हे प्रभो ! आपकी वाणी आदिसे अंत तक सुनकर जाना कि आप निर्दोष हैं। आपने अपनी वाणीमें कहीं कुछ कह दिया हो, कहीं कुछ विरुद्ध, ऐसी बात नहीं है। आपकी वाणीमें कहीं विरोध नहीं आता। आपने अहिंसाको धर्म बताया तो कहीं भी आदिसे अंत तक हिंसाको धर्म नहीं कहा। आपने गृहस्थ धर्मके विषयमें बताया कि गृहस्थ तीन हिंसावोंके (आरम्भी, उद्यमी और विरोधी) के त्यागी नहीं हैं। कहीं यह नहीं कहा कि गृहस्थोंके इन तीन हिंसावोंको करे। आपने शुरूसे अंत तक निर्विरोध बात बताई, इसलिए हमने जाना कि आप निर्दोष हैं, सर्व गुण सम्पन्न हैं। कहीं भी आपकी वाणीमें विरोधकी बात नहीं आयी।

प्रभुमाहात्म्यका परिचय—समन्तभद्रस्वामी जब भगवानकी स्तुति करने चले तब यह प्रस्तावना की कि हे प्रभो ! अब हम आपका स्तवन करते हैं।····अरे भाई अभी तो देवागम स्तोत्रमें आपने प्रभुको बहुत कुछ कहा था। तो कहते हैं कि नहीं, अभी तो हम यह परीक्षा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर रहे थे कि मेरे नमन करने योग्य प्रभु कैसा होना चाहिए ? देखिये आत्महितके प्रसंगमें जिसे हम आत्मसमर्पण करें, जिसका हम पूर्ण विश्वास रखें उसकी परीक्षा करनेमें कोई दोष नहीं है। तो कर ले प्रभुकी स्तुति। स्तुति प्रारम्भ करनेमें सर्वप्रथम यह कहा कि हे प्रभो ! आप ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण हो, अनन्त असीम ज्ञान और आनन्दका विकास आपमें है। हे प्रभो ! इतना कहनेके सिवाय और कुछ कहनेके लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं। आपकी अचिन्त्य महिमा है। उस ज्ञान और आनन्दके विकासके समझनेमें ही प्रभुकी सारी महिमा जानी जाती है। प्रभु कैसे हैं, इस बातको समझनेका और कोई उपाय नहीं है। विशुद्ध ज्ञान, विशुद्ध आनन्द इनकी ही बात अनुभवमें लायी जाय तो प्रभुके दर्शन हो सकते हैं। अन्यथा देख देखकर आंखें फोड़कर भी किसी जगह कैसा ही श्रम करके भी प्रभुके दर्शन करना चाहें तो प्रभुके दर्शन नहीं हो सकते हैं।

प्रभुशासनके एकाधिपत्य न होनेका कारण—इसी प्रसंगमें जब यह पूछा गया कि आपकी जब अचिन्त्य महिमा है, आपका निर्बाध स्वरूप है, आपका शासन पवित्र है, भव्य जीवोंके संसारसमुद्रसे पार होनेका हेतुभूत है, आपके वचनोंमें निर्विरोधता टपक रही है, आपके स्वरूपमें शुद्ध ज्ञानानन्दका विकास है, आपमें कोई ऐब नहीं है, आपका उपदेश सर्वके लिए हितकर है, आपके द्वारा चलाये गए धर्मसे ही सर्व जीवोंका कल्याण हो सकता है, इतनी सब बातें हैं, फिर भी इस प्रकारके निर्दोष शासनका एकाधिपतित्व क्यों नहीं है ? इस प्रश्नके उत्तरमें समन्तभद्राचार्य कहते हैं—कालः कलिर्वा कलुषाशयो वा, श्रोतुः प्रवक्तुर्वचनानयो वा। त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्मीप्रभुत्वशक्तेरपवादहेतुः ॥ तीन बातें हैं जिनके कारण हे नाथ ! तुम्हारे शासनका एक अधिपतित्व नहीं हो सका। वे तीन बातें क्या हैं ? प्रथम तो है कलि-काल। समय भी ऐसा है कि जहाँ जीवोंका रुख पापकी ओर, पतनकी ओर जाता है। दूसरा कारण है श्रोतावोंका मलीन आशय है, तीसरा कारण है वक्तावोंको नयोंका परिज्ञान नहीं और वे नयवाद बताकर सुनाते हैं।

कलिकालकी अवस्थाका संकेत—कलिकालके सम्बंधमें एक किम्बदन्ती है कि जैसे मानो कल तो लगेगा कलिकाल और आज है सतयुग, अच्छा युग। तो सतयुगके दिनमें किसी ने अपना टूटा फूटा पुराना मकान बेचा, खरीददारने उसी जगह नया मकान बनवानेके लिए गहरी नींव खोदी। नींव खोदते समय उसे एक अशर्फियोंका हंडा मिला, तो वह पुराने मकान का खरीददार अशर्फियोंके उस हंडेको लेकर बेचने वालेके पास गया और कहा कि देखो तुम्हारे पुराने मकानकी खुदाईमें यह अशर्फियोंका हंडा निकला है, इसे ले लो, यह तुम्हारा है, मैंने तो केवल नया मकान बनवानेके लिए जमीन खरीदी है ये अशर्फियां नहीं खरीदी हैं। तो बेचने वाला कहता है कि नहीं ये हमारी नहीं हैं, हमने तो वह जगह बेच दी, अब उससे निकलने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

वाली सभी चीजें तुम्हारी हैं। यों वे आपसमें झगड़ने लगे। झगड़ा इतना बढ़ गया कि राजा से निवेदन करना पड़ा। पेशी हुई। राजा भी बड़ा परेशान। राजाने भी बहुत मनाया, पर दोनोंने उन अशर्फियोंको लेना स्वीकार न किया। तो राजाने कहा अच्छा कल पेशी होगी। कल कलिकालका प्रारम्भ होगा। रातके समय बेचने वाला सोचता है कि मैं कितना बेवकूफ हूं, मैंने व्यर्थ ही अशर्फियां लेनेसे मना कर दिया, अरे देता ही तो है, अब जब देनेकी बात आयेगी तो ले लूँगा। उधर खरीददार सोचता है कि मैं कितना बेवकूफ निकला, अरे मेरी ही जमीनमें तो वह अशर्फियोंका हंडा निकला, वह तो मेरा है, मैं कैसे उसे दे दूं? राजाने विचार किया कि वे व्यर्थ ही झगड़ते हैं, न वह अशर्फियोंका हंडा उसका है, न उसका, वह तो जमीन में से निकला है सो मैं ही ले लूँगा। जब हुकुम सुनानेका समय आया तो वैसा ही हुकुम राजा ने सुना दिया।

पञ्चमकालका प्रभाव—कलिकालसे सम्बंधित एक बात यहाँ बतलानी है कि आजके समयमें धर्मकी रुचि होना, आत्माकी ओर ख्याल होना, निष्कषायका परिणाम होना, अपने ही हितसे अपना प्रयोजन होना, दूसरोंको क्षमा कर देना—ये सब बातें कितनी कठिन लग रही हैं? अरे है यहाँ किसीका कुछ नहीं, सारा स्वप्न जैसा खेल दिखता है। शीघ्र ही एक दिन वह आयगा कि यहाँसे विदा होना पड़ेगा, लेकिन वासना ऐसी पड़ी है कि वह निकल नहीं पाती। सदाके लिए संसारके संकटोंसे छूटनेकी बात मनमें नहीं समाती। इस जीवनके ये ऐश आराम मौजके साधन कुछ भी काम न देंगे, इस बातको वही समझ सकता है जिसे आत्मीय आनन्दका कुछ अनुभव हुआ है। एक सेठानीने नई नौकरानी रखी। स्कूलमें सेठानीका बच्चा पढ़ने गया और वह कुछ खाना न ले गया। सेठानी नौकरानीसे कहती है कि तू उस स्कूलमें चली जा और मेरे बच्चेको यह मिठाई दे आ। तो नौकरानी कहती है कि अभी तो मैं तुम्हारे बच्चेको पहिचानती ही नहीं। तो सेठानी गर्वके साथ कहती है कि मेरे बच्चेका क्या पहिचानना, स्कूलमें जो सबसे अच्छा मनमोहक बच्चा दिखे वही मेरा बच्चा है। सेठानीको अपने बच्चेके सौन्दर्यपर गर्व था। चली नौकरानी स्कूल, तो उसे स्कूलके सभी बच्चोंमें सबसे सुंदर मनमोहक अपना ही बच्चा दिखा, जो कि उसी स्कूलमें पढ़ता था। उसीको मिठाई खिलाकर वह चली आयी। शामको जब सेठानीका बच्चा घर आया तो अपनी मां से कहने लगा—मां आज तुमने हमें कुछ भी खानेको नहीं भेजा था। तो सेठानी बोली कि भेजा तो था नौकरानी के हाथ। नौकरानीको बुलाकर पूछा तो उसने बताया कि मुझे तो स्कूलमें सबसे सुंदर मनमोहक मेरा ही बच्चा दिखा था सो उसीको मिठाई खिलाकर मैं चली आयी थी। तो जिसमें जो बात बसी है वह तो उसके अनुकूल ही अपना उपयोग निकालेगा। जिसे आत्मानुभव हुआ है, उस निष्पक्ष आत्मीय आनंदका जिसने कुछ भी अनुभव किया है वह तो समझेगा कि सब

http://sahjanandvarnishastra.org/

असार है। तो लोगोंकी इस ओर रुचि कम होती है, यह सब एक कलिकालकी भी बात कही जा सकती है।

प्रभुशासनका एकाधिपत्य न होनेके द्वितीय और तृतीय कारण—दूसरा ऐब क्या है कि श्रोतावोंका अभिप्राय कलुषित है। कोई मद्य मांस खाता हो, उसका निषेध करते हुए बोला जाय तो उसे वे बातें न रुचेंगी। एक राजा अपने पुरोहितसे रोज शास्त्र सुना करता था। एक दिन पुरोहित कहीं बाहर चला गया, उसके लड़केने शास्त्र पढ़ा, राजाने सुना शास्त्र। उसमें मद्य, मांसके निषेधका प्रकरण था। प्रकरण यह था कि जो रंच मात्र भी मद्य, मांसका सेवन करता है वह नरक जाता है। राजाको यह बात सुनकर बड़ी बुरी लगी। दूसरे दिन जब पुरोहित आया तो कहा कि कलके दिन तुम्हारे लड़केने इस तरहसे शास्त्र पढ़ा था। तो पुरोहित बोला कि ठीक ही वह कह रहा था। जो रंचमात्र मद्य मांसका सेवन करता है वह नरक जाता है, जो किलो दो किलो मद्य मांसका सेवन करे उसके लिए नहीं कहा था (हँसी)। तो बताया है कि श्रोताजनोंका अभिप्राय कलुषित है। यह भी कारण है कि प्रभो! आपके शासन का एक आधिपत्य नहीं हो सका है। तीसरी बात बतायी है कि वक्तावोंको नयका विवेक नहीं है, किस नयसे क्या कथन है, किस नयकी क्या दृष्टि है? उस दृष्टिको न जाननेके कारण भी एक यह शासनके विस्तारकी रुकावट हो सकती है।

प्रभुका उत्कृष्ट अतिशय—समंतभद्रस्वामीने प्रभुस्तवनमें यह बात बतायी है कि उत्कृष्ट ज्ञान और उत्कृष्ट आनन्द आपका है। इतनी ही बात हम आपके स्तवनमें कह सकते हैं, इससे अधिक हम और क्या कहें? तो प्रभु सर्वज्ञ अतिशय कर सम्पूर्ण हैं। प्रभुका ध्यान बना रहे, प्रभुके गुण हमारे उपयोगमें समाये रहें तो इससे बढ़कर और क्या कहा जाय? जिस उपयोग में विषय कषायरहित परमतत्त्व समाया रहे वह उपयोग तो धन्य है। उस समय तो यह जीव एक अद्भुत आनन्दका अनुभव करता है। प्रभु सर्व अतिशयकर सम्पूर्ण हैं और समस्त लक्षणों से युक्त है। देखिये लक्षण कहो, लक्ष्मी कहो, लक्ष्य कहो सबका एक ही अर्थ है। लोग कहते हैं कि लक्ष्मीकी प्राप्ति हो। वह लक्ष्मी क्या? जो सर्वहितकर सर्वरूपसे उपादेय लक्ष्मी होती है वह लक्ष्मी क्या? जो आत्माका लक्षण हो, आत्माका गुण हो उस ही का नाम लक्ष्मी है। आत्माका असाधारण गुण ज्ञान है। ज्ञानका नाम लक्ष्मी है, पर जो सर्व प्रकार उपादेय है, हितकारी है ऐसे ज्ञानको लक्ष्मी तो पहिले कहेंगे, पर लक्ष्मीकी तो ख्याल याद रही और ज्ञान की याद भूल गई। फिर जिसमें भलाई समझा, जिसमें आनन्द समझा, जिसे विषयोंके साधन समझा, ऐसी द्रव विभूतिको लोग लक्ष्मी कहने लगे। तो सर्व लक्षणोंसे प्रभु लक्षित हैं।

प्रभुकी सम्यक् उपासना—प्रभुके स्वरूपके अनुरूप अपने उपयोगको जो बताते हैं और उस उपयोगमें प्रभुको विराजमान करते हैं, प्रभुकी पूजा करते हैं वे बादमें अपने ही भावोंसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अपनेको प्रभुरूप अनुभवने लगते हैं। यद्यपि उनका परिणमन उस समय प्रभुरूप नहीं होता फिर भी जिस प्रकारका वे चिन्तन करना चाहें करें, उसमें रुकावट कुछ नहीं है। देखिये सम्यग्दृष्टि जीव हो, जिसके कि रागद्वेष नहीं समाप्त हुए। निरन्तर रागपरिणमन, द्वेषपरिणमन, किसी भी प्रकारका कषायपरिणमन चल रहा है, जिस सम्यग्दृष्टिके अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण अथवा संज्वलन किसी भी प्रकारका रागद्वेष चल रहा है, परिणमन निरन्तर चल रहा है, वह हटा नहीं है लेकिन यह उपयोग जब आत्माका अनुभव करनेके लिए उद्यत होता है तो यह उपयोग न तो शरीरसे अटक खाता है, न कर्मोंसे और न उन रागपरिणामों से। सबको भेदकर अंतःमें ज्ञायकस्वरूपको लक्ष्यमें ले लेता है। तो हम इस उपयोगके द्वारा प्रभुके स्वरूपको जो निर्दोष है उसको उपयोगमें ले और उस रूप अपनेमें अनुभव करे तो इसमें कोई अटक नहीं है।

प्रभुभक्तिसे आत्मपावनता—प्रभुताके गुणोंको हम उपयोगमें ले लेते हैं और उसरूप अपना अनुभवन बनाया करते हैं। जब उस प्रकार हम प्रभुमें एक अभेदरूपसे मग्न हो जाते हैं तो यहाँ एक अद्भुत आनन्द प्रकट करता है। बस इस ही विशुद्ध आनन्दकी प्राप्तिके लिए हम आपको अपने जीवनका लक्ष्य बनाना चाहिए। घरके लोग हैं, उन्हें भी यह सिखायें तो आपको कोई लौकिक बाधायें न आयेंगी। सभीके सभी संतुष्ट रहेंगे। जो स्थिति प्राप्त है आजीविका सम्बंधी उसीमें वह सब परिवार तृप्त रहेगा और उस सन्तोषके वातावरणमें आत्महित की बातमें अपना कदम बढ़ा लीजिये। तो सर्व सार यही है। शेष जो कुछ भी गृहस्थ धर्ममें करना पड़ रहा है उसे इस गृहस्थ धर्ममें करना पड़ता है। जैसे कि कहा गया कि जिस गृहस्थ के पास कौड़ी नहीं वह बेकौड़ीका और जिस त्यागीके पास कौड़ी है वह बेकौड़ीका। तो जो व्यक्ति गृहस्थधर्ममें रहकर न्यायनीतिसे कमाई करके गृहस्थधर्मका पालन करे वह भी पवित्र आत्मा है। गृहस्थधर्मको न्यायनीतिसे पालते हुए तन, मन, धन, वचनसे धर्म उत्थानमें, धर्म प्रभावनामें भी अपना समय लगायें। कभी कोई उपसर्ग आता है धर्म समारोह आदिके समय भी अनेक उपद्रवोंका सामना करना पड़ता है, उस स्थितिको समतापरिणामसे झेल जाय तो क्या ऐसे आत्माको पवित्र आत्मा न कहेंगे? गृहस्थधर्म भी बहुत महत्त्व रख रहा है। आखिर है बात ऐसी ही कि साधुता बिना मुक्ति नहीं मिलती, पर आजके समयमें जैसा कि प्रभुने श्रावकधर्ममें बताया है कि जो गृहस्थ धर्मको निर्दोष रूपसे पालन करे वह भी पवित्र आत्मा है। सो निर्दोष प्रभुके ध्यानसे अपने आपके हृदयको पवित्र करना चाहिए और अपना आत्मबल बढ़ाना चाहिए।

परमात्मतत्त्वका निर्मल आशयके आसनपर अवस्थान—अपने आपको सर्व संकटोंसे रहित परमशांतिपदमें ले जानेका इच्छुक पुरुष जगतमें सर्व ओर दृष्टि डालकर निहारता है कि

http://sahjanandvarnishastra.org/

मेरा हितरूप कौन है, सर्वत्र देखा इसने, पर अन्य कोई पुरुष इसे अपने हितरूप नजर नहीं आया। देखते-देखते चिन्तन करते-करते अब यह समझमें आया कि जो स्वयं निष्कलंक है, अपने आपके विशुद्ध ज्ञानानन्दरसमें लीन है ऐसे प्रभु सर्वज्ञ परमात्माका स्मरण ही शरण है, अतएव यही परम आत्मा मेरे ही क्या, समस्त प्राणियोंके हितरूप है। जब तक अपने आपके हृदयमें स्वच्छता नहीं प्रकट होती, किसी भी प्राणीमें द्वेष विरोध मोहकी दृष्टि नहीं रहती, एक इस अशरण संसारमें अपने आपके आत्माकी जिसे वाञ्छा है ऐसे पुरुषके हृदयमें प्रभुस्वरूप विराजमान होता है। जैसे कभी कोई बड़ा नेता या कोई अधिकारी किसीके घर आया हो तो कैसा वह अपने घरको सुसज्जित करता है, घरका सारा कूड़ा कचरा निकालकर घरको साफ स्वच्छ करता है। तो जिस हृदयमें हम उस प्रभुस्वरूपको विराजमान करना चाहते हैं जो समस्त प्राणियोंके हितरूप है, जिनकी उपासनामें तीनों लोकके इन्द्र बड़े उत्साहपूर्वक पहुंचते हैं, बड़े बड़े मुनीश्वर जिनके ध्यानमें अपने आपका जीवन सफल समझते हैं, ऐसे प्रभुस्वरूपको हम अपने चित्तमें विराजमान करना चाहें तो हमें सबसे पहिले अपनी स्वच्छता कायम करनी होगी।

चित्तको मलिन बनानेकी निरर्थकता—किसके लिए हम अपने चित्तको मलिन बनायें। अधिकसे अधिक विकल्प होते हैं नामवरीके, पर सबसे बड़ा विष है नामवरीका। अरे किनमें अपनी नामवरीकी चाह करते ? इन मोही मलिन जीवोंमें ही ना। इनमें विरले ही लोग ज्ञानी हैं। इन मोही मलिन लोगोंमें अपने नामवरीकी चाह करनेसे क्या लाभ ? लोग मुझे समझें कि यह भी विद्यावान हैं, कलावान हैं, कुछ और और भी प्रशंसायें कर दें। अरे इन्हीं बातों के लिए यह मनुष्यभव पाया है क्या ? यह तो वैसा समझो जैसे कि बर्तन मलनेके लिए चंदन का बन जलाकर राख बनायी जाय। अरे यहाँ किसको प्रसन्न करना ? प्रसन्न करो एक अपने आपको, अपने उपयोगको, अपने इस विशुद्ध सहज ज्ञानस्वरूपमें रखकर उसके निकट बसकर सारे इन विकल्पजालोंको तोड़कर सच्ची प्रसन्नता प्राप्त करें। यह प्रभु सर्वभांति हितरूप हैं और परमशील शैलेन्द्र (पर्वत) का शिखर है। शुद्ध स्वभाव उनमें विकसित हुआ है। ऐसे प्रभु सकलपरमात्माका ध्यान करना रूपस्थध्यान है।

सप्तधातुविनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीकटाक्षितम्।
अनन्तमहिमाधारं सयोगिपरमेश्वरम् ॥२०१३॥

दिव्यदेहस्थ परमात्मा—कोई ऋषि अपने आपके अंतस्तत्त्वकी उपासनाके बलसे, उस निर्विकल्प निस्तरंग ज्ञानस्वभावके अभेद उपासनाके बलसे जब वीतराग हो जाता है, उसके घातिया कर्मोंका क्षय हो जाता है तब यद्यपि शरीर अभी है लेकिन उस परमात्मदशामें यह शरीर सप्तधातुवोंसे रहित हो जाता है। हड्डी, मांस, मज्जा, खून आदिक अपवित्र सभी चीजें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बदलकर परमपवित्र शरीर बन जाता है। आत्माके निर्मल होनेपर निर्दोष आत्मा कैसे शरीरमें विराजमान रहे, उनका वह शरीर किस प्रकार परिवर्तित हो जाता है ? ऐसी ही आशा रखी जा सकती है कि वह परमपवित्र परमौदारिक शरीर बन जाता है, उसमें सकलपरमात्मा अभी बिराजमान रहता है। तीर्थंकरदेव अनेक अतिशयकर सम्पन्न हैं। उन अतिशयोंमें एक अतिशय यह भी बताया गया है कि उनका रुधिर दुग्धके समान श्वेत होता है। हम आप लोगोंके भी खूनमात्र लाल नहीं होता है। लाल और श्वेत दोनों प्रकारका होता है। लाल खूनका काम कोई कीटाणु उत्पन्न करनेका है और श्वेत खूनका काम उन कीटाणुवोंसे रक्षा करनेका है अर्थात् अलग करनेका है, जैसा कि कुछ डाक्टर लोग भी कहते हैं। जब सफेद खूनकी कमी हो जाती है तब इसके रक्तमें विकार होता है। श्वेत खून होना शरीरकी वृद्धिमें सहायक है। और फिर एक और कल्पना करिये जैसी कि कविकी कल्पना है। एक माँ अपने बच्चे पर ऐसा निष्कपट प्यार करती है कि उस बच्चेपर स्नेह भावके कारण उसके शरीरमें दुग्ध झरने लगता है, तो जो महापुरुष तीर्थंकर समस्त जोवोंपर इस प्रकार बच्चेकी भाँति एक अनोखा प्यार रखते हैं, सबके कल्याणकी भावना रखते हैं ऐसे विशुद्ध पुरुषका खून श्वेत हो जाय तो इसमें क्या आश्चर्य है ? यों अनेक अतिशय उन तीर्थंकर देवके होते हैं।

परमात्माकी परमेश्वरता—जिनका मुक्ति स्वयं वरण करना चाहती है अर्थात् संसार से छूटकर अब मुक्ति पधारने वाले हैं ऐसे सकलपरमात्माको एक रूपस्थध्यानस्थ यह सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष अपने ध्यानमें ले रहा है। वे प्रभु अनन्त महिमाके आधार हैं, परम ईश्वर हैं। ईश्वर उसे कहते हैं जो अपने आपके स्वाधीन ऐश्वर्यंका अधिपतित्व रखता है। ऐश्वर्य नाम उसका है जहाँ अपना काम करनेके लिए पराधीनता न भोगनी पड़े, सभी काम स्वाधीन हों। ऐसे वैभवको कहते हैं ऐश्वर्य। जैसे एक भूमिपति अपनी भूमिसे सब कुछ अपने लिए उपयोगमें आने वाली चीजोंको निकाल सकता है, उसे भी ग्रामपति या ग्रामेश्वर कहो। नमक चाहिए तो वह भी अपने खेतसे निकाल सकता है, कपड़ा, अन्न आदि चाहिए तो वह भी निकाल सकता है। उसको बड़ी स्वाधीनता है। यह एक दृष्टान्तमें बताया है। तो प्रभुके ऐश्वर्यमें स्वाधीनता है। उनका ऐश्वर्य है उत्कृष्ट ज्ञान और आनन्दका अनुभव करना। क्या वे प्रभु किसी की अपेक्षा किया करते हैं ? स्वयं स्वयंसे स्वयंके लिए स्वयंमें स्वयंके प्रदेशोंमें वे उत्कृष्ट ज्ञान और आनन्दका अनुभवन करते हैं। ऐसे परमेश्वर सकलपरमात्माका ध्यान करें उसे रूपस्थध्यान कहते हैं। रूपका अर्थ है परमात्माका स्वरूप। परमात्माके स्वरूपमें जो अपना उपयोग लगाता है ऐसे ज्ञानीको रूपस्थ ध्यानी बताया है।

अचिन्त्यचरितं चारुचरित्रैः समुपासितम्।
विचित्रनयनिर्णीतं विश्वं विश्वैकबांधवम् ॥२०१४॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रभुकी अचिन्त्यचरितता—जिनका चारित्र अचिन्त्य है ऐसे परमात्माका ध्यान करो। जिनके ज्ञानज्योति प्रकट होती है उसका विचार, उसका चारित्र, उसकी वृत्ति अचिन्त्य होती है अर्थात् लौकिक जनोंसे विलक्षण होती है। वे क्षमा व नम्रताकी प्रतिमूर्ति होते हैं। जहाँ कषायोंकी मुद्रा नहीं होती है, माया लोभसे वे दूर रहते हैं, सर्व जीवोंमें जिनके हितकी बुद्धि होती है उनको यह मेरा है, यह पर है, ऐसी लघु वृत्ति नहीं आती है। ऐसे महापुरुषोंका चरित्र अचिन्त्य होता है, और फिर जो योगीश्वर हैं, जो कर्मोंका क्षय करके परमात्मा हुए हैं उन सकलपरमात्माका चारित्र तो अचिन्त्य है। क्या करते हैं वे निरन्तर? इस बातको लौकिक जन चिन्तनमें नहीं ला सकते हैं, ऐसा अचिन्त्य चारित्र है। सो निर्दोष चारित्र वाले पुरुषोंके द्वारा उनकी उपासना की गई है।

कार्यसिद्धिमें देव शास्त्र गुरुका स्थान—भैया! किसी भी कामके लिए हमें देव, शास्त्र, गुरु चाहिए। लौकिक काम हों तो उनमें भी लौकिक देव, शास्त्र, गुरुका आश्रय चाहिए। किसीको संगीत सीखना है तो उस संगीत सीखने वालेके चित्तमें कोई ऐसा प्रसिद्ध संगीतज्ञ रहेगा जो दुनियामें अतिशय कर प्रसिद्ध हो, चाहे उसे कभी देखा न हो, उससे चाहे कभी बात भी न हुई हो, पर उसके प्रति एक आदर्श भाव रहता है कि मुझे ऐसा बनना है। वह संगीत सीखने वालेका देव है, संगीत सीखने वाला उस देवको पा नहीं सकता, उससे बोलचाल नहीं है तो अपने ही गाँवमें किसी उस्तादकी खोज करता है और उससे सीखता है तो वह संगीतका गुरु हुआ। साथ ही साथ संगीतकी पुस्तकका आश्रय लेता है जिसमें सा रे ग म आदिक स्वरों का, आरोह अवरोहोंका, मात्रावोंका, ध्वनियोंका अच्छा उल्लेख रहता है, जिसमें अनेक राग रागनियां सब ढंगसे लिखी होती हैं, तो वह पुस्तक उस सीखने वालेके लिए शास्त्र हुई। इसी प्रकारसे व्यापार, रसोई आदिक सभी कामोंमें कोई एक आदर्श रहेगा उपयोगमें जो कि उसके लिए देव हुआ, जो उन कामोंको सिखाये वह गुरु हुआ और जिन पुस्तकोंका व वचनोंका सहारा लेकर सीखे वह शास्त्र हुआ। यों प्रत्येक कार्यमें देव, शास्त्र, गुरुका आश्रय चाहिए। कोई धर्मका काम करना चाहे, संसारके दुःखोंसे छूटनेका उपाय बनाना चाहे तो उसे धर्मके देव, शास्त्र, गुरुका आश्रय चाहिए। उस ज्ञानी ध्यानी मुमुक्षुके चित्तमें कोई आदर्श रहना चाहिए। जो निर्दोष है, विशुद्ध ज्ञानस्वरूप है, हमको वैसा ही बनना है, यह तो उसका आदर्श है, यही उसका देव है, परन्तु ऐसे देवसे हमारी भेंट नहीं हो रही, बोलचाल नहीं बन रही तो पास उपलभ्य किसी धर्मात्माका शरण गहें जो कि स्वयं धर्ममार्गमें लगा है और जो हमें भी धर्ममार्गमें लगनेकी प्रेरणा दे, जिसका एक आत्मतत्त्वकी उपासनामें ही मन है, जो आरम्भ परिग्रहसे दूर है, वही धर्मका गुरु है, और धर्मके शास्त्र जिनमें वीतराग बननेकी विधि लिखी है, जिनमें सम्यग्ज्ञानका निरूपण है वे शास्त्र हैं। सो धर्ममार्गमें भी तो चाहिये कोई आदर्श,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वह आदर्श है सकलपरमात्मा, निर्दोष परमात्मा, जो योगी जनों द्वारा उपास्य है, योगी जन उस परमात्माकी उपासना किया करते हैं।

परमात्मस्वरूपकी विचित्र नयनिर्णीतता—परमात्मस्वरूप नाना नयोंसे निर्णीत है। प्रभुका स्वरूप हम व्यवहारनयसे भी निरखते हैं, निश्चयनयसे भी निरखते हैं और उन सब नयोंसे हम किसी निर्णयपर पहुंचते हैं। जैसे निश्चयनयसे क्या हैं प्रभु ? एक विशुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप, निरन्तर समीचीन ज्ञान और आनन्दका परिणमन करते रहने वाले ऐसे विशुद्ध आत्मस्वरूप परमात्मा हैं और व्यवहारनयसे जो जिस पर्यायमें, जिस मनुष्यभवमें, जिस नामसे हुए हैं—कहते हैं कि ये आदिनाथ जी हैं, ये रामचन्द्र जी हैं, ये महावीर स्वामी हैं, यों जिस नामसे प्रसिद्ध वे महापुरुष सकलपरमात्मा हुए हैं उस नामसे उनके गुणोंका वर्णन करते हैं, उनकी वर्तमान ऋद्धिका वर्णन करते हैं। समवशरणमें विराजमान हैं, चतुर्मुख जिनका दर्शन होता है ऐसे अनेक विशेषणों करके हम प्रभुकी उपासना करते हैं, विचित्र नयोंसे वे निर्णीत हैं।

प्रभुभक्तिमें स्वयं सुखसम्पन्नता—सकलपरमात्मा समस्त विश्वके एकमात्र बंधु हैं। आत्माका निरपेक्ष बंधु कहा है परमात्माको। इतनी अपेक्षा तो रखते ही हैं संसारके लोग कि जैसे मेरी कषाय है, जैसा मेरा विचार है, जैसा मेरा निर्णय है उसके अनुरूप ही तो परिणति होगी। न हो तो उससे फिर लगाव नहीं रहता है, किन्तु भगवान परमात्मा वे विश्वके एक निरपेक्ष बंधु हैं। जो भक्त पुरुष प्रभुके सम्मुख होकर रहते हैं उनको सर्वप्रसन्नता अपने आप प्राप्त होती है और जो प्रभुसे विमुख होकर रहते हैं उनको कष्ट अपने आप प्राप्त होते हैं। प्रभु न किसीको सुखके देने वाले हैं, न दुःख देने वाले हैं, किन्तु यह स्वयं भव्य जनोंके उपादान की बात है। जैसे जो कोई दर्पणके सामने अपना मुख करेगा उसको अपनी मुखमुद्राके दर्शन अवश्य होंगे और जो दर्पणसे विमुख हो जायगा उसको अपनी मुखमुद्राके दर्शन नहीं हो सकते हैं। ज्ञानी पुरुष प्रभुसे किसी भी बातकी अपेक्षा नहीं रखता, वह तो मात्र यह चाहता है कि जो मैं सहज हूं, जैसा मेरा अपने आप स्वरूप है, अपने आपके सत्त्वके कारण जो कुछ मैं हूं वह मात्र प्रकट हो, केवल यही अभिलाषा है ज्ञानी पुरुषके, वह अन्य कुछ नहीं चाहता है। यही निर्णय अपना होना चाहिए। वस्तुका स्वरूप क्या है ? यह बात विदित होगी तो सब कुछ बात बन सकेगी, और जब तक वस्तुस्वरूपका परिचय नहीं है तब तक हम धर्मके नाम पर कुछसे कुछ करते रहेंगे, श्रम भी करेंगे, विशुद्ध भाव भी करेंगे, पुण्य परिणाम भी करेंगे, किन्तु वह सार बात न मिल सकेगी। कोई गली मिलनेपर जैसे एक भंवरमें फंसा हुआ जहाज भंवरसे निकलकर स्वतंत्र बन जाता है वैसे ही विकल्पोंमें फंसा हुआ आत्मा सहज जाननकी गली मिलनेपर विकल्पोंसे निकलकर स्वतंत्र बन जाता है और अपने आपमें कृतकृत्यताका

Version 1

अनुभवन करने लगता है।

इच्छाके अभावमें सुखका उद्भव—देखिये हम आप सबको जितना सुख मिल रहा है वह सब सुख किसी परके समागमके कारण नहीं मिल रहा है किन्तु उस समय किसी न किसी विषयमें यह भावना बन जाती है, निर्णय हो जाता है कि अब मुझको यह काम करनेके लिए नहीं है। बस इस अवधारणका वह सुख हुआ करता है। आप बड़ी सूक्ष्मतासे परीक्षण कर लीजिए। जैसे कोई मकान आपको बनवाना है तो मकान बन चुकनेपर जो एक सुखका अनुभव होता है तो कहते लोग ऐसा ही हैं, और वह भी ऐसा ही कहता है कि मकान बन चुका, अब मुझे बड़ा सुख हुआ, पर वहाँ सूक्ष्मतासे विचारें तो मकान बन चुकनेपर जो उसके यह भाव बना कि मकान बनवानेका काम मुझे करनेको नहीं रहा, इस अवधारणका वह सुख है। प्रत्येक सुखमें आप यही बात लगाते जाइये कि जिस चीजकी इच्छा है उस चीजकी प्राप्ति होने पर जो सुख होता है वह उस चीजकी प्राप्ति होनेसे सुख नहीं होता है, किन्तु उस चीजकी जो अब इच्छा नहीं रही, चाह नहीं रही, इच्छाका अभाव रहा, उसके करनेका अब काम नहीं है, इस अवधारणका वह सुख है।

इच्छाके अभावसे सुखके उद्भवपर एक दृष्टान्त—इच्छाके अभावसे ही सुख है इसपर एक दृष्टांत लें—आपके किसी मित्रका पत्र आया कि मैं कलके दिनकी तारीखमें करीब १२ बजे इस स्टेशनसे आ रहा हूं, तो आप आकुलित होने लगे कि मुझे १२ बजे वहाँ पहुंचकर मित्रसे मिलना है। तो और अनेक काम जो अभी तक आप देरसे करते थे उनको जल्दी-जल्दी निपटाने लगे। झट सारे काम निपटाकर आप स्टेशनपर पहुंचे, वहाँ जाकर आप पूछते हैं कि गाड़ी लेट तो नहीं है? पता लगा कि १० मिनट लेट है, लो और आकुलता बढ़ी। जब गाड़ी प्लेटफार्मपर आ गई तो आप झट इधर उधर दौड़कर डिब्बे डिब्बेमें देखने लगे। देख लिया कि हमारा वह मित्र अमुक डिब्बेमें बैठा है, वहाँ पहुंचकर मित्रसे मिलकर सुखका अनुभव किया। अब आप विचार करो कि क्या वह सुख मित्रके मिल जानेसे मिला है? अरे मित्रके मिलनेका वह सुख नहीं है, मित्रके मिलनेका अब काम नहीं रहा इसको चित्तमें अवधारण किया इस बातका वह सुख है। आप प्रश्न कर सकते हैं कि हम कैसे समझें कि मित्र के मिलनेका वह सुख नहीं है? तो देखिये—दो तीन मिनट मिलनेके बाद ही आप खिड़कीसे बाहर झांकने लगें। कहीं गार्ड सीटी तो नहीं दे रहा, अथवा कहीं हरी झंडी तो नहीं दिखा रहा। अरे भाई जब मित्रके मिलनेका वह सुख है तो खूब मिलते रहो उस मित्रसे और सुखी होते रहो, पर आप ऐसा न करेंगे। अरे वह सुख मित्रके मिलनेका नहीं है। वह सुख इस बातका है कि चित्तमें ऐसा अवधारण कर लिया है कि अब मित्रसे मिलनेका काम बाकी नहीं

रहा। यदि घरपर बैठे ही आप यह बात सोच लेते कि अरे क्या है मित्रसे मिलने जानेसे, हटावो अब नहीं जाना है, तो इतना आकुलित न होना पड़ता। जो सुख अब मित्रके मिल जाने पर प्राप्त हुआ है तो वह सुख पहिलेसे ही प्राप्त हो जाता।

इच्छाके विनाशमें पूर्तिका व्यवहार—साधु जनोंमें और गृहस्थ जनोंमें अन्तर क्या है ? घरमें बसने वाले गृहस्थ जन जिन चीजोंकी इच्छा करते हैं और उस इच्छाकी पूर्ति करके सुखका अनुभव करते हैं तो साधु जन उन इच्छावोंका पहिलेसे ही निरोध करके सुखका अनुभव करते हैं। लोग कहते हैं कि मेरी इच्छाकी पूर्ति हो गई, उसका अर्थ यह है कि इच्छा नष्ट हो गई। इच्छाके नष्ट होनेका ही नाम इच्छाकी पूर्ति है। कहीं इच्छा उस तरहसे पूर्ण नहीं की जाती जैसे बोरोंमें गेहूं भरकर बोरा पूर्ण किया जाता है। इच्छाकी पूर्ति होती है इच्छा के नष्ट होनेपर। तो साधु जन पहिलेसे ही इच्छाको नष्ट कर देते हैं जिससे वे परम सुखी रहते हैं।

प्रभुस्वरूपसे शिक्षण—हमें यहाँ बात यह लेनी है कि वे प्रभु उत्कृष्ट क्यों हैं ? उत्कृष्ट इसीलिए हैं कि उनके कोई प्रकारकी अभिलाषा नहीं रही। उनमें कोई वाञ्छा न होनेसे कोई दोष नहीं रहे, इसी कारण उनके ज्ञानादिक गुण सर्व अतिशयकर पूर्ण हो गए हैं। यह सब उनका एक माहात्म्य है। उस निर्दोषताको निरखकर अपने आपमें भी यह चिन्तन करें कि मैं भी निर्दोष होऊँ। देखिये कौनसा वह क्षण होगा जिस क्षण, इन विकल्पजालोंका भार मुझपर न रहे और उस ही सहज परमात्मतत्त्वका आश्रय करूँ, अपने कैवल्य स्वरूपका अनुभवन करूँ। ये सर्व समागम दुःखके ही कारण हैं। जीवोंको दुःख समूहके भोगनेका क्यों पात्र बनना पड़ रहा है ? योंकि इन पदार्थोंसे संयोग है। इष्ट संयोग मिलता है तो भी क्षोभका विकल्पजालका दुःख मिल रहा है और इष्टवियोग होगा तो भी दुःख मिलेगा। जिसके अध्यात्मतत्त्वमें बुद्धि न रहकर परपदार्थोंमें हितकी बुद्धि लगी है वह अपने आपको शान्तिमें नहीं बैठा सकता, क्योंकि परपदार्थका स्वभाव ही यही है। भेदविज्ञानसे यथार्थ निर्णय करके, बाह्य पदार्थोंका आश्रय करके केवल एक स्वदृष्टिमें लें, उसमें ही मग्न होनेका यत्न करें तो यह उपाय मेरी शान्तिके लिए होगा।

निरर्थक चिन्तासे निवृत्त होकर स्वरूपलीनताका कर्तव्य—भैया ! परिवार जनोंका जो अपने ऊपर बोझ रखा है उसे हटानेकी जरूरत है। क्या उन परिजनोंके साथ कर्म नहीं लगे हैं, क्या उनके साथ उनका उदय नहीं चल रहा है ? जितने भी परिवारके लोग हैं सभी अपने-अपने कर्मोंसे पल पुष रहे हैं। बड़ी कमाई भी होती है तो क्या यह सही बात नहीं है कि घर के जितने लोग हैं बच्चोंसे लेकर बूढ़ों तक, जिनके कि यह कमाई हुई सारी सम्पदा भोगनेमें आ रही है, उन सबके पुण्योदयके कारण आप निमित्त बन रहे हैं और यह कार्य हो रहा है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जब सब जीवोंके उदयकी करतूत है तो इतनी चिन्ता क्यों करना ? इन चिन्तावोंसे निवृत्त होकर एक यह मुख्य ध्यान बनाना है कि मुझे तो सत्य ज्ञानार्जन करके वस्तुस्वरूपकी महिमा जानकर अपने आपमें तृप्त होना है, संतुष्ट होना है। यह बात हम परमात्माके ध्यानसे सीखते हैं और इसीलिए बड़े-बड़े पुरुष भी, योगीश्वर भी, ज्ञानी भी परमात्मतत्त्वका ध्यान किया करते हैं। हमारे मुख्य कर्तव्य ये दो हैं—परमात्मस्वरूपका ध्यान करके अपने हृदयको पवित्र बनायें और अपने आपमें बसे हुए सहज शुद्ध ज्ञानस्वरूपका ध्यान करके उसके निकट बसकर निर्विकल्प होनेका प्रयत्न करें, बस ये दो बातें ही हम आपको वास्तविक शरण हैं।

निरुद्धकरणग्रामं निषिद्धविषयद्विषम् ।
ध्वस्तरागादिसंतानं भवज्वलनवार्मुचम् ॥२०१५॥

निरुद्धकरण परमात्माका स्मरण—लोकमें शरणके स्थान केवल दो ही हैं। बाह्यमें तो समझिये परमात्मतत्त्वका स्मरण और अंतरङ्गमें निज ज्ञायकस्वभावकी उपासना। रूपस्थध्यानमें स्थित ज्ञानी पुरुष परमात्माका ध्यान कर रहा है। कैसे हैं वे प्रभु परमात्मा, जिन्होंने इन्द्रियोंके समूहोंका निषेध किया है। प्रभु जब पहिले साधु अवस्थामें थे उस अवस्थामें इन्होंने इन्द्रियके समूहोंका निरोध किया अर्थात् इन्द्रियां जो चाहती हैं—जैसे स्पर्शनइन्द्रिय स्पर्श चाहती है, रसना इन्द्रिय रस चखती है, घ्राण इन्द्रियसे गन्ध जाना जाता है, चक्षुसे रूप देखा जाता है, कर्णोंसे शब्द सुने जाते हैं। तो प्रभुने साधु अवस्थामें इन इन्द्रियोंका विषय बाधा न पहुंचा सके इस प्रकार इन्द्रियोंको नियंत्रित कर दिया था। प्रभुकी उपासनामें हम उन विशेषणोंसे उपासना करते हैं जिससे यथार्थ शिक्षा भी मिलती है। हे प्रभो ! जगतके ये जीव इन्द्रियकी आधीनतासे परेशान हैं और उस परेशानीका मूल कारण तो यह भी है कि जितना भी संसारी जीवोंका ज्ञान हो रहा है वह इन्द्रियोंके द्वारसे हो रहा है। तब इन्द्रियोंमें प्रेम होना प्राकृतिक ही बात है। जब इन्द्रियोंमें प्रेम हुआ तो उन इन्द्रियोंके पोषनेके लिए विषय और अनेक प्रकारके साधन जुटाना आवश्यक हो गया है और अब तो यह मन अनिन्द्रिय इन समस्त इन्द्रियोंका सिरताज है। जिसका विषय सारे लोकभरमें फैल रहा है। मैं इस सारे विश्वमें एकछत्र राज्य करूँ, मैं सारे विश्वके जीवोंमें नामवरी उत्पन्न करूँ, इस प्रकार नाना प्रकारकी कल्पनाएँ, शेखचिल्लीपनेकी बातें मोही जनोंमें उत्पन्न होती हैं, इसीसे मोही जन परेशान होते हैं। हे प्रभो ! आपने इन इन्द्रिय और मन छहोंको अपने वशमें कर डाला है, इनको पीड़ित कर दिया है। ऐसे परमात्मतत्त्वका यह ध्यानी पुरुष अपने उपयोगमें ध्यान कर रहा है।

निरुद्धविषय परमात्माका स्मरण—देखिये प्रभुका शासन यदि प्राप्त किया है तो कुछ अपना उपयोग इस प्रकारका बनायें कि जिससे पाये हुए शासनका, समागमका लाभ प्राप्त कर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

लें। लोग तो बहुत-बहुत चितायें करते हैं, दुःखी रहते हैं। अपने विवेकके द्वारा इन्हें दूर किया जा सकता है। ये सांसारिक लाभ विशेष न मिलें, न सही, इनका क्या भरोसा? आज हैं कल नहीं, लेकिन अंतरङ्गमें श्रद्धा करें, आत्माके ज्ञानकी दृष्टि करें, सत्पुरुषोंके समागममें रहें, ज्ञानार्जनका यत्न करें तो वह अनूठा लाभ उठा लिया जाय, इस ओरसे क्यों विमुख हुआ जाय? इस ही ज्ञानकी परखसे ये इन्द्रियां और मन जो उद्दण्ड हो रहे हैं, इनका नियंत्रण हो जाता है। हे प्रभो! जो ज्ञानी पुरुषोंके ध्यानके विषयभूत होते हैं ऐसे तुमने विषय बैरीको ध्वस्त कर दिया है, आतमके अहित विषय कषाय। हम आपका अहित करने वाले विषय और कषाय हैं, अनुभव करके भी देख लो, जब किसी जीवपर राग उठता है, जब किसी बात में प्रीति पहुंचती है तो चूंकि प्रीति किसी न किसी परपदार्थमें हुआ करती है, उसकी आशा लग जाती है, उसमें विरोधतायें बनती हैं, अपनी चाहके अनुसार दूसरा जीव माने अथवा न माने, परपदार्थका परिणमन हो या न हो, तब कितनी व्यथा होती है, और जब इतना बड़ा दृढ़ संकल्प कर लिया जाय, साहस बना लिया जाय, जो कि बड़े आज्ञाकारी पुत्र, मित्र, स्त्री भी हों, तब यह जान लीजिये कि ये जीव भी सब उतने ही जुदे हैं जितने जगतके अन्य अनंत जीव हैं। प्रदेश उनके न्यारे, आत्मक्षेत्र उनके जुदे, कर्म उनके उनके साथ, मेरे मेरे साथ हैं। जब कुछ भी सम्बंध नहीं है, ऐसा ज्ञान होगा तो आत्मा अपने ज्ञानस्वरूपके निकट बस सकेगा, ऐसी उसमें पात्रता होगी।

विषयनिषेधसे ही आनन्दलाभ—भैया! क्या होगा इन सांसारिक चीजोंके लाभसे? लाभ तो अलौकिक लूटना चाहिए, अलौकिक लाभ तो अपने आपमें ही लिया जा सकता है, इस पारमार्थिक आनन्दके लाभसे किसीको वंचित न होना चाहिए। जिनके पुण्यके उदय चले जा रहे हैं उनके भी आत्मलाभसे वंचित होनेमें आपदा है, विडम्बना है, क्लेशका सामना ही करना पड़ेगा, और जिनके पुण्योदय विशेष नहीं अथवा पापका उदय होनेपर कुछ सांसारिक आपत्ति भी सता रही है उनको भी इन दोनों दृष्टियोंमें इस आत्मनिर्णयमें महान लाभ मिलेगा, इस लाभकी तुलना सांसारिक पराश्रित समागमोंसे नहीं की जा सकती है। इन बाह्य समागमों को क्या तरसना? जितने पौद्गलिक ठाठ हैं, बाह्यविभूति हैं इनकी क्या चित्तमें तृष्णा करना, इनसे कुछ फायदा है क्या? ये जहाँ जाते हैं वहाँ ही चित्तमें कुछ मलिनता उत्पन्न करते हैं। जब उदय होता है तो किस तरह समृद्धि आती है, आती है आने दो, फिर भी उसमें इस पुरुष का कुछ सम्बंध नहीं है। केवल कल्पनासे सुखी होनेकी बात है। चार लोगोंमें कुछ अपनी शान शौकत समझ लेनेभरकी बात है। वस्तुतः आत्माका इन ठाठोंसे क्या संबंध है और वहाँ भी आवश्यकतावोंको भी समझा जाय तो कितनी आवश्यकता है? एक क्षुधा तृषा निवारणके लिए दो चार रोटियां और शीत वेदनाके निवारणके लिए दो चार वस्त्र, इनके अतिरिक्त

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीवनको चलानेके लिए क्या आवश्यकता है लेकिन तृष्णावश बड़े-बड़े भोगसाधनोंका संग्रह लोग करते हैं, बड़े बड़े मकान महल बनवाते हैं, इतनी सुकुमालता दिखाते हैं कि जरा भी पैदल नहीं चल सकते। भला बतलावो ऐसी चर्या करने वालेके हृदयमें ये ज्ञान वैराग्यकी बातें क्या समायेंगी जो कि उन भोगसाधनोंके शौकीन बन रहे हैं। वैसे तो बहुत-बहुत सम्पदामें रहकर भी भरत जैसे वैरागी भी रह सकते हैं, पर जो उस वैभवसे शौकीन बन रहे हैं और शरीरके आराममें अपना सर्वस्व हित समझ रहे हैं उनकी बात कही जा रही है कि वे क्या इसके पात्र बन सकेंगे ?

ध्वस्तरागादिसन्तान परमात्माका ध्यान—प्रभुने इन विषयोंका पूर्ण परिहार किया है और रागादिकके संतानको ध्वस्त कर दिया है, राग ही तो सता रहा है सब जीवोंको। दूसरे पुरुषोंको मालूम पड़ती है दूसरेकी बेवकूफीकी बात, खुद नहीं समझ पाता। जैसे एक कहावत है कि वैद्य खुद अपना इलाज नहीं कर पाता, वह दूसरोंसे इलाज करवाता है, ऐसे ही ये मोही मलिन मूढ़ जीव दूसरेकी बेवकूफी तो झट समझ लेते हैं पर खुदकी बेवकूफी खुद नहीं समझ पाते। किसीके घर कोई गुजर गया, घर वाले लोग बहुत दुःखी हो रहे हैं तो दूसरे लोग समझाते हैं—अरे क्या है, मर गया तो क्या हुआ, उसके आत्मासे तुम्हारे आत्माका कुछ भी तो रिश्ता नहीं है, तुम लोग खेद क्यों करते, आत्मा तो अमूर्त है। यों दूसरेकी बेवकूफी तो झट समझमें आ जाती है, पर जब अपने ऊपर वही बात आ जाती है तो खुद बड़े दुःखी रहते हैं, तब अपनी बेवकूफी अपनी समझमें नहीं आ पाती। इन मोही जीवोंकी ऐसी हालत हो जाती है। जैसे खूब जंगल जल रहा है, इसके बीच एक पेड़पर एक आदमी बेवकूफ (मूढ़) चढ़ा हुआ है। तो जंगलको जलता हुआ निरख रहा है और हँस रहा है—देखो वह आग लगी, देखो वह खरगोश जल गया, देखो वह हिरण जान बचाकर भाग गया, यों देखता है और खुश होता है, पर उसे यह पता नहीं कि यह जलती हुई आग यहाँ भी आयगी, यह वृक्ष भी जल जायगा और मैं भी जलकर मर जाऊँगा। ऐसे ही समझो—ये संसारी मोही प्राणी ऐसे हैं कि उन्हें दूसरोंकी बेवकूफी तो झट समझमें आ जाती है, पर खुदकी बेवकूफी खुदकी समझमें नहीं आती। दूसरोंकी विडम्बनाको तो झट निरख लेते हैं और उसपर हँसने लगते हैं, पर खुद र अनेक प्रकारकी विडम्बनाएँ हैं पर उन्हें विडम्बना नहीं समझ पाते। यह सब क्या है ? यह सब राग अंधकारका प्रभाव है। प्रभुने इन रागादि संतानोंको ध्वस्त कर दिया है ऐसे वीतराग प्रभुका ज्ञानी भक्त ध्यान करते हैं।

प्रभुकी उपासना करनेका कारण—वे प्रभु क्यों बने, हमें परमात्माकी उपासना क्यों करनी चाहिए, इसका निर्णय तो करिये। कोई यह कहे कि परमात्मा हमें पैदा करता है, मारता है, सुखी दुःखी करता है, इसलिए परमात्माकी हमें उपासना करनी चाहिए तो उसकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह बात मिथ्या है। कुछ न हो और कुछ बना लिया जाय ऐसी बात यदि हो सकती हो तो कुछ उसपर विचार भी किया जा सकता है, किन्तु ऐसा तो है ही नहीं। जब कोई कुछ उपादान हो, कुछ चीज हो, पहिले उसीका ही तो रूपान्तर किया जा सकता है। तो जो चीज है वह स्वयं सत् है। उसमें यह स्वभाव पड़ा हुआ है कि उत्पाद व्यय करे और बना रहे, इसीको सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणके रूपसे कहा गया है, सत् रहे वह सत्त्वगुण है, बने वह रजोगुण है और पदार्थ मिट जाय वह तमोगुण है। इसीको ब्रह्मा, विष्णु, महेशके रूपमें माना गया है। लोग मानते हैं कि पदार्थकी उत्पत्तिका कारण हैं ब्रह्मा, पदार्थकी रक्षा करनेमें कारण हैं विष्णु, और पदार्थके विनाश कारक, संहारक हैं महेश। पदार्थमें प्रति समय पर्यायोंका उत्पाद व्यय होता रहता है, फिर भी सदैव उस पदार्थका सत्त्व रहता है, इस ही तत्त्वसे पदार्थ त्रिगुणात्मक है, पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है, पदार्थोंकी रचना प्रभुने की नहीं, बताई है। प्रभु तो परमज्ञानानन्दस्वरूप हैं, उनके उत्कृष्ट स्वरूपका, आदर्शका ध्यान करनेसे अपने ज्ञानानन्दस्वरूपका शुद्ध विकास होता है। इस कारण हम प्रभुकी उपासना करते हैं।

राष्ट्रीय ध्वजका वस्तुस्वरूपकी ओर संकेत—पदार्थकी त्रिगुणात्मकताको बताने वाला आज भारतका राष्ट्रीय झंडा है। उसमें तीन रंग हैं, ऊपर है लाल रंग अथवा कुछ केसरिया रंग जो लालका ही प्रकार है, बीचमें सफेद रंग है और सबसे नीचे हरा रंग है। ये तीनों रंग भी वस्तुके स्वरूपकी बराबर घोषणा कर रहे हैं। किस शासनकी ? चौबीसवें तीर्थंकरके शासनकी जिस झंडेमें बीचमें २४ आरेका चक्र भी है। वह चक्र २४वें तीर्थंकरके शासनकी घोषणा करता है, और वह सारा तिरंगा झंडा इस बातका सूचक है कि प्रत्येक द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है। साहित्यमें लाल रंगको व्ययका संकेत कहा है। जब कभी युद्धका वर्णन होता है, उसमें नरसंहारकी बात आती है तो रक्त रुधिर लालिमा आदिक रंगका वर्णन किया जाता है। तो वह लाल रंग व्ययका सूचक है। साहित्यमें किसीकी वृद्धिको बतानेके लिए हरे रंगकी बात कही जाती है, सो यह हरा रंग उत्पादका सूचक है तो यों व्यय और उत्पाद ओर छोर पर हैं, जैसे कि ध्वजमें इन दोनोंमें समानतासे रहने वाला जो श्वेत रंग है वह ध्रौव्य का सूचक है। जहाँ लाल रंग भी चढ़ता, हरा रंग भी चढ़ता, जिस ध्रुवके कारण उत्पाद भी होता और व्यय भी होता, प्रत्येक पदार्थ स्वयं अपने स्वभावसे उत्पन्न होता है, व्यय होता है और सदा बना रहता है।

वस्तुस्वरूपके निर्णयमें शान्तिके मार्गका लाभ—देखिये इस उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकताके निर्णयमें शान्तिका मार्ग बसा है। मैं सत् हूं। मैं प्रतिसमय नवीन पर्यायसे उत्पन्न होता हूं और वर्तमान पर्यायका व्यय कर डालता हूं, तिसपर भी मैं सदा बना रहता हूं, ऐसी बात प्रत्येक पदार्थमें है। जब प्रत्येक पदार्थ स्वयं अपनेमें उत्पादव्ययध्रौव्य करते हैं, उनकी क्रिया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उनके ही अर्थ चलती है तो किस पदार्थका किसके साथ तात्विक सम्बंध रहा ? जब कभी पर-पदार्थका निमित्त पाकर कोई पदार्थ विकृत बनता है, विकारी बनता है तो वहाँ यह भी तो तथ्य है कि विकाररूप परिणमनकी योग्यता रखने वाला पदार्थ निमित्तको पाकर अपनी परिणतिसे अपनेमें ही प्रभाव उत्पन्न करके विकृत बन गया है, क्या वहाँ निमित्तभूत पदार्थमें अपनी द्रव्य गुण अथवा पर्याय कुछ भी उस दूसरे पदार्थमें लगायी है, क्या ठोकर दी है, क्या मार की है ? अपने-अपने प्रदेशोंमें प्रत्येक पदार्थ अवस्थित हैं।

परमात्माकी उपासनाका प्रयोजन—यहाँ एक आशंका हो सकती है जब यह स्वरूप है तो फिर परमात्मा मुझे न सुख देता, न दुःख देता, न पाप कराता, न पुण्य कराता, तब फिर मैं परमात्माको किसलिए पूजूँ ? इसका समाधान स्वयं अन्तर्दृष्टि करके भी पा लिया जा सकता है। परमात्माको पूजनेका कारण यह है कि हम जिन कारणोंसे, जिन करतूतोंसे दुःखी हैं, रागादिक भावोंसे हम दुःखी हैं, सो दुःख दूर करनेका मार्ग प्रभुके गुणस्मरणसे मिलता है। कोई पुरुष दुःखी हो उसका दुःख दूर होनेका उपाय तो उपदेष्टा बता देंगे, पर करना उसका काम है। हम भी जब दुःखी होंगे तो उसका उपाय तो ऋषियोंने बता दिया, पर करनेका हमारा काम है। जितने भी दुःख होते हैं वे किसी न किसी पदार्थमें राग करनेके कारण होते हैं। आप समस्त दुःखोंकी परीक्षा कर लें। जितने भी दुःख होंगे वे किसी न किसी परपदार्थमें राग है तब दुःख होंगे, राग बिना दुःख न होंगे। तो इन दुःखोंके मेटनेका उपाय क्या है ? राग दूर कर लिया दुःख मिट जायगा। बात तो बिल्कुल सही है, पर सुननेमें यों भद्दा लग रहा होगा—तो क्या यह घर छोड़कर चले जायें, क्या बच्चोंको यों ही छोड़कर चल दें, ऐसी जो नाना आशंकायें भर गई हैं उनके कारण यह उपाय कुछ फीकासा जंच रहा होगा। लेकिन वीतराग ऋषि संतोंने बहुत अनुभव करके यह बात बतायी है कि जितने भी क्लेश होते हैं वे रागके कारण होते हैं। वीतराग प्रभुकी उपासनासे अपने उपादानमें सामर्थ्य प्रकट होता है जिससे रागभावका विरण होता है।

अपने-अपने सुखमें अपने-अपने पुण्योदयकी कारणता—कदाचित् कोई घर द्वार छोड़कर भी चल दे तो बच्चोंका पुण्योदय है तो बिगाड़ नहीं हो सकता। कहीं कोई बच्चोंको छोड़कर चला जाय तो बच्चोंका उदय उससे भी अधिक विकसित हो जाय। एक जोसी गांवमें रोज आटा मांगकर लाता था, १० बजे घरमें आटा देता था तब रोटियां बनती थीं, और घरके ८-१० लोग छोटे बड़े बच्चे तब अपना पेट भर पाते थे। रोज-रोजका उसका यही काम था। एक दिन नगरमें वह भिक्षा मांग रहा था, वहाँसे एक संन्यासी निकला—कहा जोसी जी क्या कर रहे हो ? जो मुहूर्त वगैरह बताते हैं वे पहिले जोसी ज्यादा रहते थे। जोसीने कहा कि हम भिक्षा मांग रहे हैं ताकि हम घर ले जायें और घरके लोगोंका गुजारा चले। तो वह संन्यासी बोला—क्या तुम घरके सभी लोगोंका गुजारा चला रहे हो ?····हाँ-हां, हम रोज

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देखते हैं, जब आटा माँगकर घर ले जाते हैं तब रोटियां बनती हैं। संन्यासी बोला—जोसी जी यह बात तुम्हारी मिथ्या है। तुम किसीको नहीं पालते हो, तुम मेरे साथ चलो, तुम भी आनन्दमें रहोगे और तुम्हारे घरके सभी लोग आनन्दमें रहेंगे। जोसी सरल पुरुष था, झोला वगैरह डालकर संन्यासीके साथ चला गया। जब ११-१२ बजे तक जोसी न आया तो गाँवके एक मस्खराने कह दिया कि उसको तो एक सिंह पकड़कर ले गया, खा डाला होगा। लो उसके मरनेकी बात सुनकर घरके व पड़ौसके सभी लोग दुःखी। पड़ौसके लोगोंने सलाह की कि इसके घरमें कमाने वाला वह एक ही पुरुष था, अब इनका गुजारा कौन चलायेगा? अपन लोग ऐसा करें कि इनकी सहायता करें ताकि ये भूखे तो न मरें। सो जो अनाज वाले थे उन्होंने दो-दो चार-चार बोरा अनाज दे दिया, घी वालोंने एक आध घीके कनस्तर दे दिये, कपड़ा वालोंने कुछ थान कपड़े दे दिये, शक्कर वालोंने शक्कर दे दी, तेल वालोंने तेल दे दिया। अब क्या था, वे बड़े मौजमें रहने लगे, रोज पूड़ी कचौड़ी पकौड़ी आदि बनें, खूब अच्छे नये-नये कपड़े पहिनें। जब १५ दिन बीत गए तो जोसी बोला संन्यासीसे कि अब महाराज जी हमें घर जानेकी इजाजत दो, जाकर देखें तो सही कि कौन बच्चा जिन्दा है और कौन मर गया है? संन्यासीने जानेकी आज्ञा दे दी, पर जाते समय कह दिया कि देखो उन्हें छिपकर देखना, सीधे यों ही घर न चले जाना। तो वह पहुंचा घर। घरके पीछेकी छतसे ऊपर चढ़ गया। घरमें झांकने लगा, तो क्या देखता है कि घरमें सभी बच्चे नये-नये कपड़े पहिने हैं, बड़े खुश हैं, हृष्टपुष्ट हैं, पूड़ी कचौड़ी पक रही हैं। वह सोचता है कि अरे यह क्या हो गया? मारे खुशीके वह घरमें उछलकर कूद गया अपने बच्चोंसे गले मिलनेके लिए। घरके लोगोंने जब उसे देखा तो समझा कि अरे यह तो भूत आ गया, वह तो मर गया था, सो घरके सभी लोग आगके ढेलोंसे, लूगरोंसे मार मारकर भगाने लगे। बेचारा जोसी अपनी जान बचाकर भाग गया। संन्यासीके पास पहुंचा, बोला—महाराज वहाँ ऐसी ऐसी हालत थी और मैं किसी तरहसे जान बचाकर आपके पास भाग आया हूं। तो संन्यासी बोला कि अरे जब वे सब सुखमें हैं तो तुझे कौन पूछे? तू उनका विकल्प छोड़। तो एक ही बात नहीं। अनेक ऐसे उदाहरण मिलेंगे कि जिस घरमें पुण्य बरसनेकी बात चली आ रही है कदाचित् कोई छोड़कर चला गया अथवा गुजर गया तो उसका घर ज्योंका त्यों है और उससे भी अधिक सम्हला हुआ है। तो चिन्ता किस बातकी?

प्रभुकी उपासनासे भवज्वलनके संतापकी शान्ति—भैया! अन्य प्रयोजनसे प्रभुकी उपासना नहीं की जाती है। प्रभुकी उपासना तो केवल इस कारण की जाती है कि जो दुःखका कारण मुझमें है वह कारण प्रभुमें नहीं है। तब उनका स्वरूप निरखकर मुझे पथ मिलेगा, शान्ति मिलेगी, उपयोग निर्मल होगा, ये रागादिकके संतान क्लेशके ही कारण हैं। ये रागा-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दिक भाव प्रभुके रंच भी नहीं हैं। यदि वीतराग ज्ञानस्वरूप प्रभुमें उपयोग बसे, लगे, तो यह उपयोग भी बहुत विशुद्ध होता है, शान्ति प्राप्ति होती है और पाप झड़ जाते हैं, पुण्यरस बढ़ता है, धर्मका पथ दिखता है, कल्याण ही कल्याण है, और उस प्रभुको छोड़कर जिस किसीमें भी चित्त लगायें तो क्या कल्याण होगा ? किसमें चित्त लगायेंगे, किसपर विश्वास करेंगे कि यह मेरा उद्धार कर देगा ? इन प्रभुने तो रागादिक संतानको ध्वस्त कर डाला और यह प्रभु संसाररूप संतापके लिए मेघके समान हैं। जैसे बहुत बड़ी आग लगी हुई हो जंगलमें तो उसके बुझानेका क्या उपाय है ? क्या कुवोंसे तालाबोंसे पानी भर भरकर बुझानेसे जंगलकी आग बुझ जायगी ? अरे आजकलकी ये आग बुझाने वाली मशीनें भी जंगलमें लगी हुई आगको बुझानेमें समर्थ नहीं हैं। हाँ मेघ बरस जायें तो जंगलमें लगी हुई आग शीघ्र ही बुझ जायगी। इसी प्रकार यह संसारकी ज्वलन बहुत तीव्र ज्वलन है, किसी पदार्थसे कुछ लेन-देन नहीं, कोई सम्बंध नहीं, कोई प्रयोजन नहीं, मगर ये मोही जीव जड़से भी जड़ बन रहे हैं, ये सर्व पदार्थ यद्यपि हैं इससे भिन्न, फिर भी ये मेरे हैं, ये गैर हैं, ये मुझे सुखी दुःखी करते हैं, ये मेरे विरोधी हैं इस प्रकारकी कल्पनायें किए हुए बैठे हैं ये मोही जीव। अरे यहां कौन अपना कौन विरोधी ? विचार न मिला, जिसकी जैसी कषाय है उसके अनुरूप दूसरेका परिणमन न मिला तो उसे अपना बैरी समझ लिया और जिससे कषायसे कषाय मिल गयी उसे अपना मान लिया। तो इस संसारकी दोस्तीमें रखा क्या है ? इतनी ही तो बात है कि कषायसे कषाय मिल गई तो वह दोस्त बन जाता है, इससे अधिक और नाता क्या है ? इस दुनियामें जो एक दूसरेके दोस्त बन रहे हैं उनमें और बात ही क्या है सिवाय इसके कि जैसी कषाय एक की है वैसी ही कषाय दूसरेकी है। किसीको सनीमा देखने जाना है और दूसरा कोई मिल जाय सनीमा देखने जाने वाला तो वे आपसमें मित्र बन गए, वे दोनों एक दूसरेके गलेमें हाथ डालकर बड़े आनन्दसे जाते हैं जैसे मानो वे दोनों परस्परमें एक दूसरेके बड़े मित्र बन गए हैं। क्या दम है इस संसारकी दोस्तोंमें ? इसी प्रकार विरोधकी भी बात है। विरोध भी किस बातका ? कषायसे कषाय न मिली तो बस विरोध बन गया। यह सब क्या है ? यह सब संसारकी तीव्र ज्वलन है, रागमें जल रहे हैं ये प्राणी। उस तीव्र आतापको बुझानेमें समर्थ एक ज्ञानमेघकी वृष्टि है। प्रभुने अपने उस ज्ञानके द्वारा जिसने ज्ञानस्वभावको जाना, उस ज्ञान-परिणमनके द्वारा जिस ज्ञानमें ज्ञानका विशुद्ध स्वरूप बसा हुआ है उस ज्ञानके बलसे उन्होंने रागद्वेष आदिककी ज्वलनको शान्त कर दिया है। हममें जो ज्वलन है, जो दुःख है वह किसके पास जायें कि मिट जाय ? जिसके रागद्वेषकी ज्वलन न हो, जो परमशान्त हो उसके निकट पहुंचें, उसके स्वरूपको उपयोगमें लें तो हमें शान्ति मिल सकती है, इसी कारण हम परमात्म-स्वरूपका ध्यान किया करते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

दिव्यरूपधरं धीरं विशुद्धज्ञानलोचनम् ।
अपि त्रिदशयोगीन्द्रैः कल्पनातीतवैभवम् ॥२०१६॥

प्रभुकी दिव्यरूपधरता व धीरता—आत्महितका अभिलाषी पुरुष जिन्हें परमहित प्राप्त हो गया है ऐसे प्रभुका ध्यान कर रहा है। परमात्मा दिव्यरूपका धारण करने वाला है। जिस देहमें स्थित वीतराग सर्वज्ञ प्रभु हुए, जिनके क्षुधा, तृषा, जन्म, मरण, अरति, खेद, रोग, शोक, डर, निन्दा, क्षोभ आदिक कोई दोष नहीं रहे, ऐसे प्रभु जिस देहमें विराजमान हुए वह देह भी साधारण नहीं रहता, दिव्य हो जाता है, तो प्रभु दिव्यरूपके धारण करने वाले हैं। कोई साधु वृद्ध हो और हड्डियां निकल आयी हों, अत्यन्त दुर्बल हो गया हो वह भी जब आत्माका विशुद्ध ध्यान रखता है और शुक्लध्यान उत्पन्न होता है तो वह भी परमात्मस्वरूप बन जाता है और परमात्मस्वरूप बनते ही उसका वह शरीर जो वृद्ध था, हड्डियाँ निकली थीं वह शरीर दिव्यरूप वाला हो जाता है स्वयं ही ? यह उनका एक अतिशय है। साधुजन तो कैसे ही शरीर वाले होते हैं, किसीके खाज हो, फोड़ा फुंसी हो और और भी अनेक प्रकार के चर्मरोग हों, पर वे प्रभु उत्कृष्ट ध्यानके प्रतापसे उन रोगोंको नष्ट कर देते हैं, वीतराग पदको प्राप्त करते हैं और सर्वज्ञ होते हैं, परमात्मा बनते हैं तो उनका शरीर अब उस प्रकारका नहीं रहता, दिव्य हो जाता है, एक रूप हो जाता है। ऐसे दिव्यरूपके धारण करने वाले परमात्माका ध्यान करना चाहिए। वे प्रभु धीर हैं—धीम् बुद्धिम् राति ददाति इति धीरः, जो बुद्धि को दे अर्थात् बुद्धि ठिकाने करे उसे धीर कहते हैं। तो धीर शब्दका अर्थ अथवा धैर्यका अर्थ क्या है ? आशयमें रागद्वेषरहित होकर अथवा पक्षमें न पड़कर निष्पक्ष हृदयकी वृत्ति रखनेको धैर्य कहते हैं। वे प्रभु जो चारघातिया कर्मोंसे रहित हो गए हैं सो वे परमधीर हैं।

प्रभुकी विशुद्धज्ञाननेत्रता—परमात्माके विशुद्ध ज्ञानरूपी नेत्र हैं। कुछ पहिले समयमें अलंकारोंके रूपमें बात चलती थी और लोग समझते थे कि इस अलंकारका यह भाव है। पश्चात् लोग अलंकारके भावको तो छोड़ने लगे और अलंकारको ही सीधा यथार्थरूप मानने लगे। हाँ तो पहिले एक अलंकारमें उस प्रभुको त्रिनेत्र कहा जाता था, महादेव कहा जाता था। महादेव त्रिलोकी हैं, तीन नेत्र वाले हैं, और तीन नेत्र वाले भी नहीं, एक नेत्र वाले हैं। दो नेत्र वाले हैं इस वर्णनमें कुछ अतिशय नहीं है। या तो एक नेत्र वाला कहो या तीन नेत्र वाला कहो। प्रभुके दिव्य देहमें दो नेत्र तो अब भी लगे हुए हैं। यद्यपि उन नेत्रोंसे वे ज्ञान नहीं करते, उनके क्षायिक ज्ञान है, पर शरीर है ना साथ तो शरीरके सब अंग भी लगे हैं, पर प्रभुके तीसरा नेत्र प्रकट हुआ है, महादेवके अर्थात् अरहंत परमात्माके तीसरा नेत्र प्रकट हुआ है, वह तीसरा नेत्र है केवलज्ञान अर्थात् विशुद्ध ज्ञान। इन चर्मचक्षुवोंसे तो सामने की चीज होगी वह जान जायेंगे और वह भी पूरे रूपसे नहीं जानेंगे। जो भाग दिख रहा है वही

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो ज्ञात है, भीतर क्या है, पीछे क्या है, इसको ये आँखें क्या जानें ? और जो सामने भी दिख रहा है वह भी कल्पनामें जितना आ पाता है, जितना यह समझमें ला पाता है उतना ही दिखता है, किन्तु केवलज्ञानमें कोई प्रतिबंध नहीं है । वह तो समन्तात् सर्वको जानता है । जो आत्मा निरावरण हो गया है उसके लिए तो सब समान है । अभिमुखताके कारण यह केवल ज्ञान नहीं जानता किन्तु कुछ भी सत् हो पदार्थ तो उसे जानता है । तो केवलज्ञान इतना विशाल ज्ञान है कि सत् था पर्यायरूपमें, सत् है, सत् होगा उस सबको जानता है, ऐसा विज्ञान, ज्ञानलोचन जिनसे प्रकट हुआ है ऐसे प्रभुका ध्यान रूपस्थध्यानी ज्ञानी पुरुष कर रहा है ।

प्रभुकी कल्पनातीतवैभवता—वे ध्येय प्रभु कैसे हैं कि देवेन्द्रोंके द्वारा, योगीन्द्रोंके भी द्वारा इनका वैभव कल्पनामें भी नहीं आता । अहो ! कितना अनुपम वैभव है प्रभुका । जो वैभव कभी विघट नहीं सकता, ज्ञान और आनंदका वैभव । बाहरी वैभवको लोग अपने आनंदके लिए जोड़ते हैं, पर वहाँ एक निकृष्ट कल्पित मौज भी होता है, कल्पनाका आश्रय करके । केवल हुए जो महापुराण पुरुष हैं, अरहंत देव हैं उनके उस ज्ञान और आनन्दके वैभवको कौन कल्पनामें ला सकता है ? यदि कल्पनामें लाये तो इसका अर्थ है कि उस ज्ञान और आनंदकी बात हममें भीआ गई । आप किस चीजकी कल्पना करते हैं ? जो बात आपमें समाई हुई हो वही कल्पना में आ सकती है । तो त्रिदशेन्द्र और योगीश्वरोंके द्वारा भगवानका वैभव कल्पनामें नहीं आता, लेकिन यह भी नहीं है कि उनके ज्ञानानंद वैभवका हम कुछ भी ज्ञान न कर सकें । यदि हम कुछ किसी भी अंशमें उनके ज्ञानानंद वैभवका ज्ञान नहीं कर सकते तो भक्ति नहीं उमड़ सकती है । प्रभुमें भक्ति उमड़नेका कारण यह है कि प्रभुका जो ज्ञानानंद वैभव है उसका हम आपको किसी न किसी अंशमें ज्ञान हो रहा है, अनुभव हो रहा है तभी तो यह गद्गद् होकर उनके गुणों का अनुरागी होकर अपनी बाहरी सुधको भी भूल जाता है और प्रभुके गुणोंमें अनुरक्त होता है । केवल ऊपरी बात हो भक्तिकी तो उससे प्रभुभक्तिकी लीनता नहीं बन सकती है । जिस अनंत ज्ञान और अनंत आनन्दको वे भोग रहे हैं, उस ज्ञान और आनन्दको लक्ष्यमें लिये बिना उस ज्ञानानन्दकी जातिका परिचय हुए बिना महत्ता कौन जानेगा, और प्रभुके उस वैभवका महत्त्व जाने बिना प्रभुमें भक्ति उत्कृष्ट हम क्या कर सकेंगे ? ज्ञानी पुरुषोंको उनके ज्ञानानन्दके पर वैभवकी जातिका बोध रहता है । वह समस्त कितना वैभव है, यह योगीश्वरोंके भी और देवेन्द्रोंकी भी कल्पनामें नहीं आ सकता । ऐसे कल्पनातीत वैभव वाले प्रभुका ध्यान करना चाहिए ।

स्याद्वादपविनिर्घातिभिन्नान्यमतभूधरम् ।
ज्ञानामृतपयःपूरैः पवित्रितजगत्त्रयम् ॥२०१७॥

प्रभुकी देन—प्रभुकी दिव्यध्वनिसे रत्नत्रय उपदेश परम्परासे प्राप्त सबसे बड़ा भारी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वैभव क्या हो सकता है ? सबसे उत्कृष्ट देन मुझे प्रभुसे क्या मिली है ? वस्तुतत्त्वके निर्णय करनेका उपाय मिल गया है। वह उपाय है स्याद्वाद। स्याद्वादका जो सही तरीकेसे आदर रखेगा उसको किसीका विरोध नहीं जंच सकता। अहो जब बड़े-बड़े एकान्त मतोंका ब्रह्म ही अद्वैत है, ज्ञान ही एक अद्वैत मात्र तत्त्व है, केवल विज्ञप्ति मात्र है, जिसमें कुछ आकार नहीं आता, चित्रप्रतिभासस्वरूपमात्र एक अद्वैत है अर्थात् ज्ञान ही ज्ञान तो है दुनियामें, परन्तु वह ज्ञान नाना आकारोंको लिए हुए है, पदार्थ कुछ नहीं है आदिक अनेक मंतव्य भी जब स्याद्वाद के द्वारा उन्हें समझा सकते हैं, उनको सान्त्वना दे सकते हैं कि तुम्हारा कहना ठीक है, पर इस दृष्टिसे ठीक है। बड़े-बड़े विरोधियोंके मंतव्योंको कोई दृष्टि लगाकर उनको शान्त कर सकते हैं, सान्त्वना दे सकते हैं तो फिर हम आप साधर्मी जनोंके बीच कदाचित् कोई विचारभेद आये और उसकी समाई हम न कर सकें तो सिवाय दोषके और कौनसी बात कही जा सकती है ? स्याद्वाद एक ऐसा उपाय है कि जिस उपायके द्वारा एकान्त मतोंको ध्वस्त कर दिया जाता है। देखिये—ध्वस्त करनेके दो उपाय हैं—एक एकांत मतका खण्डन करते हुए, दूसरे—जो बात एकान्तमतका मण्डन किए हुए है उसकी दृष्टि लगाकर। इस दृष्टिसे ऐसा है और इस दृष्टिसे ऐसा है, उसका अगर मंतव्य इस अनेकान्तरूप हो गया तो उनका एकान्त ध्वस्त हो गया ना, दोनों प्रकारसे उसको ध्वस्त समझ लीजिए। तो प्रभुकी देन सबसे बड़ी है स्याद्वाद। स्याद्वादरूपी बज्रके द्वारा ऐसे एकान्त पर्वतोंको जिसने ध्वस्त कर दिया है ऐसे हैं ये प्रभु। उनका ध्यान ज्ञानी पुरुष करते हैं। देखिये किसीके प्रति अधिक रुचि जगती है तो क्यों जगती है ? कोई हितकी बात मिलती है उसके कारण जगती है। हमें प्रभुसे हितकी बात एक स्याद्वाद पद्धति मिली है, एक मूल बात मिली है। स्याद्वादके द्वारा हम वस्तुतत्त्वका निर्णय करते हैं और वस्तुका विशुद्ध निर्णय करनेके बाद उपाय क्या है, हेय क्या है ? इसका हम विवेक करते हैं और विवेकके बाद उपादेयको ग्रहण करते हैं और हेयकी उपेक्षा करते हैं तब हमें वास्तविक परमार्थ तत्त्वकी प्राप्ति होती है। तो प्रभुकी यह उत्कृष्ट देन है स्याद्वाद। ऐसे स्याद्वादके अनुशासक प्रभुका यह ज्ञानी पुरुष ध्यान कर रहा है।

पावन प्रभुका ध्यान—कैसे हैं ये प्रभु ? जिन्होंने ज्ञानामृतके जलपूरसे तीनों लोकोंको पवित्र कर दिया है। मूल तो वे सर्वज्ञदेव हैं, जिनकी दिव्यध्वनिके वातावरणमें गणेशोंने (गणधरोंने) अपने ज्ञानको निर्मल किया है और उनके फिर उस द्वादशांग ज्ञानसे जो प्रवाह चला है, उपदेशपरम्परासे अनेक आचार्योंने अपना हृदय पवित्र किया है और उपदेश पाकर भव्य जीवोंने अपना हृदय पवित्र किया है। तो तीनों लोकोंको पवित्र किए जानेके मूल ये सर्वज्ञदेव हैं, ज्ञानरूपी अमृतजलके प्रवाहसे समस्त जगत पवित्र हो गया है। महावीराष्टकमें कहते हैं—यदीया वाग्गंगा विविधनयकल्लोलविमला, वृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां यः

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्नपयसि । जिसकी वचनरूपी गंगा, जो नाना नयरूपी कल्लोलोंसे निर्मल है, जिसकी वाणीमें, जिसके उपदेशमें सभी नयोंकी दृष्टिसे जहाँ निर्णय किया गया है, बताया गया है ऐसी वह वचनरूपी गंगा बड़े ज्ञानरूपी जलके द्वारा इस जगतमें जनताको स्नपन कराती है । 'श्री जिनकी धुनि दीपशिखासम जो नहिं होत प्रकाशनहारी । तो किस भांति पदारथ पांति कहाँ लहते रहते अविचारी ।।' यदि यह वचनगंगा न होती, प्रभुकी यह उपदेशपरंपरा न मिलती तो कैसे पदार्थ का स्वरूप प्राप्त करते ?

महादातारके महालाभसे महालाभ लेनेका अनुरोध—लोग बहुत बड़े दातारके प्रति नम्रताका व्यवहार रखते हैं, तो इनसे बड़ा दातार कौन मिलेगा जो संसारके संकटोंको सदाके लिए नष्ट कर देनेकी कुञ्जी दे रहे हैं, बता रहे हैं । जिनका आश्रय करनेसे, जिनकी आज्ञा मानने से हम संसारके संकटोंको समाप्त कर सकनेमें समर्थ हो सकते हैं । उनसे बढ़कर दातार और कौन होगा ? जब भगवान ऋषभदेव सभी पुत्रोंको, और औरको भी सब राज्य बांटकर उसके बाद विरक्त होकर ध्यानमें लीन थे तो नमि बिनमि ये दो सम्बंधी जब प्रभुके सामने आये और उनको उलाहना देने लगे कि वाह आपने सबको सब कुछ दिया, पर हमें क्या दिया ? बहुत-बहुत बातें कहने लगे तो एक देव आता है और कहता है कि चलो हम तुम्हें राज्य देते हैं, तो नमि विनमि कहते हैं कि हमें तुमसे कुछ न चाहिए, ये प्रभु जो देंगे सो लेंगे । पर उनके कहनेसे होता क्या, प्रभु अब क्या दे दें, वे तो अपने दूसरे जन्ममें आ गए, द्विज हो गए, वे क्या देंगे, लेकिन उसका उत्तर तो सुनिये—कितनी दृढ़ताका उत्तर था, "हमको बहुत बड़े दातार मिले हैं प्रभु । यदि उनकी छत्रछायामें रहकर भ्रान्तिकी दीनता न मिटा पाये तो जीवन बेकार है ।"

अलौकिक द्विजताका अलौकिक प्रभाव—साधु अवस्था प्राप्त होनेपर इसे द्विज कहा करते हैं अर्थात् यह दूसरी बार जन्मा है । जैसे कोई मनुष्य मर जाय और दूसरे जन्ममें पहुंचे तो दूसरे जन्ममें पहुंचनेके बाद इस पहिले जन्मकी भी कोई रट लगाता है क्या ? इस पहिले जन्मका भी कोई व्यवहार रखता है क्या ? इसकी कोई सुध नहीं रखता, राग नहीं रखता । कभी ऐसी भी घटनायें सुननेमें आयी हैं कि किसी बालकको जातिस्मरण हो गया और बालक बतला रहा कि यह मेरा घर था, यह मेरी मां थी, यह मेरा बाप था, वे मां बाप जान भी जाते हैं लेकिन जब शरीर बदल गया, जन्म बदल गया तो वह प्रीति जाननेके बाद भी नहीं रहती, और फिर जहाँ कुछ जाना नहीं जा रहा, दूसरा जन्म हुआ तो पहिले जन्मका क्या सम्बंध, क्या राग ? तो इसी प्रकार साधु होनेसे पहिले जो गृहस्थका जीवन था वह एक जन्म था, अब साधु होनेपर वह जन्म मिट गया । जैसे कि कोई मर जाता है तो उसका वह जन्म मिट गया, इसी प्रकार वह जीवन मिट चुका । अब दूसरा जन्म है । तो उस दूसरे जन्ममें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आया हुआ महापुरुष गृहस्थीकी बातोंका, रागोंका कुछ ध्यान रखता है क्या ? उनकी तो कुछ चिंता ही नहीं होती, उनका कुछ ख्याल ही नहीं होता, चाहे वह बड़े गद्दोंपर सोने वाला व्यक्ति हो, पर साधु होनेके बाद कंकरीली जमीनपर सोता है, फिर भी उसके ध्यानमें यह नहीं पहुंचता कि मैं यों यों था, क्योंकि उसका जन्म ही दूसरा हो गया। पहिले जन्मसे अब उसका क्या सम्बंध रहा ? तो ऐसे साधु संत और उनसे महान ये परमात्मा प्रभु ये बहुत बड़े दातार हैं। लोग कहते हैं कि प्रभुकी कृपासे सब सुख मिलेंगे, इसका अर्थ यह लगावो कि उनके किसी सम्बंधसे, उनकी उपदेश परंपरासे जो हमें उपदेश प्राप्त हुआ है हम उनका बड़ा आभार मानते हैं, उनकी कृपा समझते हैं। भले ही उनमें अब दयाका भाव उदयमें नहीं है, पर गुणानुरागी पुरुष आभारको भूल नहीं सकता। तो ज्ञानरूपी अमृतके दयापूर द्वारा जिसने तीनों लोकको पवित्र किया है ऐसे प्रभु परमात्माको यह ज्ञानीं पुरुष अपने उपयोगमें बसाये हुए है।

इत्यादिगणनातीतगुणरत्नमहार्णवम् ।
देवदेवं स्वयंबुद्धं स्मराद्यं जिनभास्करम् ॥२०१८॥

प्रभुकी गुणरत्नमहार्णवता—प्रभुमें असंख्य गुण हैं, जैसे समुद्रमें अनगिनते रत्न भरे पड़े हुए हैं, इसी प्रकार इस ज्ञानपुञ्जमें जो वीतराग सर्वज्ञ हैं उनमें अनंत गुण पड़े हुए हैं। उन अनंते गुणोंका कौन बखान करे ? भले ही कोई उन अनंते गुणोंका निरीक्षण अनुभव कर ले, स्वयं वैसा बनकर उस रूप प्राप्ति कर ले, पर कोई चाहे यह कि हम उन अनंतगुणोंका नाम पूरा बतायें, उनका वर्णन करें, उनका मिलान बतायें, यह हम आप लोगोंके शक्य नहीं है। सो गणनातीत गुणरत्नोंके जो महान समुद्र हैं ऐसे प्रभुको यह ज्ञानी अपने उपयोगमें बसा रहा है, ऐसे देवदेव स्वयंबुद्ध आद्य जिनसूर्यका स्मरण करो, स्वयं बुद्ध हैं प्रभु। आखिर ज्ञान रूप ही तो है यह आत्मा। ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वयं अपने आप अपने ही ज्ञानके द्वारा ज्ञात हो जाय और फिर उस ही ज्ञानकी स्थिरता बनाये, यह कोई स्वयं करे अर्थात् किसी गुरु आदिक के उपदेश बिना भी करे तो इसमें आश्चर्य क्या है ? तीर्थंकरोंको स्वयं बुद्ध कहा ही है, ऐसे ये आदिम तीर्थंकर हैं। लोग कहते आदम बाबा। तो आदिम शब्द बिगड़कर आदम रह गया। वह आदिम कौन हुए ? ऋषभदेव, कैलाशपति। ऋषभदेवका कैलाश पर्वत पर निवास था, कैलाशसे ही निर्वाण प्राप्त किया। तो कैलाश पर्वतपर कुछ बसनेके कारण वे कैलाशपति हैं। वे ऋषभदेव ब्रह्मा ही तो थे। जब भोगभूमि नष्ट हुई, कर्मभूमि प्रारम्भ हुई उस समय तो सब नया युग था, नया संसार था, लोगोंको कुछ पता न था। कैसे रहना, कैसे खाना, कैसे जीना, अनेक भय भी सता रहे थे तो उस समय ऋषभदेवने सबको मार्ग बताया, इस कारण भी वे विधाता हैं और फिर सकल संन्यास करके मोक्षमार्गकी विधि बतायी है इसलिये वे विधता हैं। ऐसे आदिनाथ जिनसूर्यको हे आत्मन् ! स्मरण करो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वयंकी प्रभुताकी आंशिक झांकी होनेपर प्रभुकी प्रभुताका अंदाजा—भैया ! ये सब यत्न हैं अपने आपको निष्कषाय और विशुद्ध बनानेके लिए। जहाँ भ्रमका कोई आवरण न रहे, भ्रमरहित अपने आपके स्वरूपका दर्शन करनेके लिए यह सब प्रभुस्तवन चल रहा है। प्रभुकी प्रभुता भी तभी जानी जा सकती है जब अपने अन्तरङ्गमें उस प्रभुताका कुछ प्रयोग करें। प्रभुता मुझमें है, उस प्रभुताका आंशिकरूपसे अनुभवन हो तो प्रभुकी प्रभुता जानी जा सकती है कि क्या वैभव है प्रभुका ? विषयोंमें रत रहने वाले लोग उस निर्विषय निर्विकल्प ज्ञानानंद प्रभुके वैभवको क्या जान सकते हैं ? नहीं जान सकते।

रूपस्थधर्म्यध्यानवर्णन प्रकरण ३९

विषयवासित चित्तमें प्रभुताकी परखकी अपात्रतापर एक दृष्टान्त—एक छोटी सी कथा है कि एक मालिनकी लड़की और एक ढीमरकी लड़की, वे दोनों सहेलियां थीं। मालिन की लड़कीका काम था फूलोंका हार बनाना और ढीमरकी लड़कीका काम था मछली पकड़-कर बेचना। ढीमरकी लड़की तो एक गाँवमें ब्याही गई और मालिनकी लड़की एक शहरमें। एक दिन ढीमरकी लड़की उसी शहरमें मछली बेचने ले गई जहाँपर कि उसकी सहेली रहती थी। मछलियां बेचते-बेचते शाम हो गई। सोचा कि आज अपनी सहेलीके घर रह जायेंगी जो कि यहींपर रहती है। सो मछलियोंका टोकना लेकर चली गई अपनी सहेलीके घर। सहेलीने खिलाया पिलाया। सोनेके लिए बड़ा अच्छा बिस्तर बिछाया, कुछ फूलोंकी पंखुड़ियां भी डाल दीं। वह ढीमरकी लड़की लेटी तो उस बिस्तरपर, पर उसे उसपर नींद न आये, करवटें बदले। तो मालिनकी लड़की पूछती है—क्यों सहेली क्या बात है ? नींद क्यों नहीं आ रही है ? तो ढीमरकी लड़की कहती है कि यह तुमने क्या कर रखा है कि इस बिस्तरपर फूलोंकी पंखुड़ियां डाल दी हैं, इनकी गंधके मारे नींद नहीं आ रही है। तो मालिनकी लड़की बोली—अरे ये पंखुड़ियां तो बड़े-बड़े राजा महाराजावोंके बिस्तरमें पड़ती हैं। ढीमरकी लड़की कहती है—नहीं नहीं इन्हें हटावो। वह बेचारी उन पंखुड़ियोंको हटा लेती है। इतनेपर भी उसे नींद नहीं आती है। फिर मालिनकी लड़की पूछती है—सहेली अब क्यों नींद नहीं आ रही है ? तो ढीमरकी लड़की कहती है—अरे नींद कहाँसे आये। वह जो हमारा मछलियों का टोकना रखा है ना, उसे उठाकर लावो, उसमें पानीके कुछ छींटे मारकर इस बिस्तरके सिरहाने धरो तब नींद आयगी। उसने वैसा ही किया तब बेचारी ढीमरकी लड़कीको नींद आयी। तो मछलियोंकी गंधमें रहने वाली ढीमरनीको जैसे पुष्पोंकी सेजपर नींद नहीं आती इसी प्रकार विषयोंके दुर्गन्धमें बसने वाले संसारी जीवोंको प्रभुके ज्ञानानंदका क्या परिचय ? पहिले अपना उपयोग कुछ उस रूप ढालना होगा तब हम प्रभुके गुणोंका परिज्ञान कर सकेंगे। तो यों प्रयोग करें और प्रभुका परिचय करें और प्रभुको अपने चित्तमें बसायें जिससे पवित्रता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बढ़ेगी और हमारा जन्म सफल होगा।

जन्ममृत्युजराक्रान्तं रागादिविषमूर्च्छितम्।
सर्वसाधारणैर्दोषैरष्टादशभिरावृतम् ॥२०१९॥
अनेकव्यसनोच्छिष्टं संयमज्ञानविच्युतम्।
संज्ञामात्रेण केचिच्च सर्वज्ञं प्रतिपेदिरे ॥२०२०॥

निर्दोष प्रभुकी उपासनामें कल्याण—प्रभु जन्म जरा मरणसे रहित होते हैं, किन्तु कोई मोहीजन जिनके चारित्रमें जन्मकी बात बतायी हो, मरण और बुढ़ापेकी बात बतायी हो, फिर भी उन्हें देव अथवा भगवानके रूपमें पूजा करते हैं। भला जन्म जरा मरण ही तो सबसे बड़ा दोष है। इन तीनों बातोंको ज्ञानीजन उपादेय नहीं समझते हैं। मोही जन जन्ममें खुशी मानते हैं, बुढ़ापा और मरणको वे भी अच्छा नहीं समझते, लेकिन ये दोनों दोष महादोष हैं। हम आप आत्मा हैं, ज्ञानानंदस्वरूपमय हैं, सबसे निराले हैं, कोई कष्ट है क्या ? किसीको भी कष्ट नहीं है। सभी कष्टसे बरी हैं, लेकिन कष्ट पसंद करते हैं और सहते रहते हैं। रागद्वेष आदिक परिणाम करना, उनको अपनाना इसकी आवश्यकता है क्या जीवोंको ? और कदाचित् किसी प्रसंगमें रहना भी पड़ रहा है संसर्गमें, पर भीतर तो ऐसी श्रद्धा बना लें कि मैं सबसे निराला हूं, लो यह मैं ज्ञानानंदमात्र हूं तो इसमें कोई जबरदस्ती करता है क्या कि तुम ऐसा विश्वास न रखो। ये खुद ही अपने सही विश्वाससे गिर गये और व्यर्थके इन बाह्यपदार्थोंमें लग गये, इनमें आसक्त हो गये। लो अब जन्ममरण कर रहे हैं, दुःखी हो रहे हैं। तो जिन बातोंसे हम विडम्बनायें पाते हैं अथवा जन्म जरा मरणसे दबे हुए हैं उन्हीं बातोंमें दबे हुए पुरुषोंको कोई भगवान मानें, प्रभु मानें तो क्या उनके संकट दूर होंगे ? न दूर होंगे।

प्रभुभक्तिका प्रयोजन—अहो, उन मोही जनोंने यह निर्णय ही नहीं किया कि प्रभु-भक्ति करके हमें चाहिए क्या ? सही निर्णय नहीं किया। बस धन, वैभव, स्त्री पुत्रादिककी बात चाही, मुकदमाकी जीत चाही, जिन सांसारिक कार्योंको इष्ट मान रखा है उनकी सिद्धि चाही। जो स्वयं दुःखी हैं उन्होंने अपने लिए दुःख मांगा। जो जन्म जरा मरणसे दबे हुए हैं ऐसे पुरुषोंको मोहियोंने अपना प्रभु माना, देव माना। उनसे दुःखकी चाह की है। तो सही है बात। उनके मनोरथ अवश्य सिद्ध होंगे। उन्होंने दुःख माँगा है तो दुःख मिलते जायेंगे। वे अपनी कल्पनामें तो नहीं समझते दुःख, परन्तु वास्तवमें वे सांसारिक समस्त समागम दुःखरूप है, सो जन्म जरा मरणसे व्याप्त प्रभुसे कुछ सिद्धि नहीं है। जन्ममें इस जीवके दुःखको उस ही भांतिसे कहा है जितना कि मरणमें कहा है। जैसे मरते समय इस जीवको वेदना होती है, शरीरसे कुछ खिंचा हुआसा होता है, इसी प्रकार जन्मके समयमें भी किस प्रकारसे संकुचित होता है, किस ढंगसे पेटके अन्दर रहता है ? वह कष्ट वहाँ भी है, और जन्म तो कहलाता है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तब जब शरीर धारण किया, गर्भमें आया। अब गर्भसे निकलते समयके कष्ट देखिये, गर्भमें रहनेके कष्ट देखिये, किस तरहसे गोल बनकर नीचे मुख रखकर और हाथ पैर सब संकुचित होकर लिपटा हुआ-सा रहता है। वहाँ बाहरकी हवा भी नहीं मिलती है। यों गर्भमें कितने कष्ट हैं ?

संकटमोचन उपाय— देखिये संसारके संकट सदाके लिए मिट जायें इसका उपाय बड़ा सुगम है। इतना स्वाधीन है कि आप अपने ही अंदर सच्चा प्रकाश पायें और मान जायें कि प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र हैं, एक दूसरेसे अत्यंत जुदे हैं। किसीका किसीसे सम्बंध नहीं है, मैं स्वयं ज्ञानानंदरूप हूं, अपने आपको ऐसा मान जायें तो इसमें क्या कष्ट हो रहा है ? कोई भी तो कष्ट नहीं है, आनंद ही आनंद है। यदि यह कहो कि हम तो गृहस्थीमें हैं, सारी बातें ख्यालमें रखनी पड़ती हैं, सब सम्हालना है, आजीविका है, समाजमें रहना है, देशमें रहना है, ये सब बातें हैं। अरे जो सत्य श्रद्धानसे उन सब बातोंमें कुछ विरोध आता है क्या ? वे भी बातें रहेंगी और कदाचित् विकल्प उनसे हट जाय और उनकी चिन्ता तनिक भी न रहे और आत्मस्वरूपमें मग्न होनेकी बात बन जाय तो यह तो सर्वोत्तम बात है। न भी आत्ममग्नता बन सके तो भी अपने आपकी सही श्रद्धामें निराकुलता तो अन्तः रहती है।

निर्दोष प्रभुभक्तिमें स्वतः समृद्धिलाभ— प्रभु वह है जो जन्म जरा मरणसे परे है और जन्म जरा मरणसे परे होनेसे ही उनका कल्याण है। मेरा भी कल्याण जन्म जरा मरण से परे होनेमें है, यह श्रद्धा ज्ञानी उपासक संतके रहती है। विषयव्यामुग्ध जन मोहवश जन्म जरा मरणसे आक्रान्त पुरुषको भी प्रभु मानते हैं। किन्तु सोचिये तो सही जिसके रागादिक विषकी प्रीति है, जो स्त्री पुत्रोंमें राग करे, भोगनेकी कामना करे और अनेक प्रकारकी घटनाओंमें भी अपना दिल लगाये, ऐसे रागादिक विषसे मूर्छित स्वरूप क्या प्रभुका हो सकता है ? कदापि नहीं। प्रभु तो रागसे परे हैं। प्रभुकी जो भक्ति करता है वह स्वयं अपने आप सम्पन्न बन जाता है। प्रभु उसे सम्पन्न बनाने नहीं आते जो प्रभुसे विमुख रहता है वह स्वयं ही अपने आप क्लेश पाता है। प्रभु तो परम उपेक्षक हैं, अपने विशुद्ध ज्ञानानन्दरसमें लीन हैं। जीवोंकी आदत कुछ स्नेह करनेकी पड़ी हुई है तो स्नेह करें प्रभुसे। मगर रागकी प्रकृति नहीं छूट रही है, तो हम रागका प्रयोग करें उस प्रभुस्वरूपपर, उसके अनुरागी बनें। जैसे यहाँ लोग बाह्य वचन बोलकर अनुराग दिखाते यों नहीं, पर प्रभुस्वरूपसे अन्तः वचन बोलकर उसमें अनुराग बनायें वहाँ कुछ अपने आपको मिलेगा। तो प्रभु रागादिक विषसे अत्यन्त दूर हैं। मोही पुरुष तो ऐसे चारित्र वालोंको जिनके रागकी प्रकट वेदना नजर आती है उन्हें भगवान मानते हैं, पर जो अपने आपको संसारसंकटोंसे छूटनेका लक्ष्य बनाये हैं वे तो रागादिकसे रहित ही प्रभु हैं, ऐसी अपनी दृढ़ प्रतीति रखते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मोहियोंकी उपासना विडम्बना—देख लो भैया ! संसारी जीव जन्म जरा मरण आदिक १८ दोषोंसे लिपटे हैं—क्षुधा, तृषा, विस्मय, अरति, खेद, रोग, शोक, अभिमान, मोह, चिंता आदिक अनेक दोष हैं जिन दोषोंसे ये संसारी जीव आक्रान्त हैं। और कोई मोही जन ऐसे ही दोष वालेको अपना देव मानें, आदर्श मानें तो वे अपना उत्थान कैसे कर सकते हैं ? अरे जो स्वयं इन दोषोंसे व्याकुल है उसकी भक्तिसे सिद्धि क्या प्राप्त होगी ? जिन रागमय चितावोंसे हम परेशान हैं उन ही घटनाओंमें, उन ही चर्याओंमें जो चल रहा हो, बस रहा हो उसे देव मानकर, भगवान मानकर, उसकी भक्ति करनेसे क्या लाभ ? मोही अज्ञानी जीव ही इस प्रकारके कलुषित पुरुषकी भक्तिमें लग सकते हैं। मोहियोंकी तो बात क्या करें—किसी पत्थरका, किसी पेड़का, किसी भी बिरादरीके साधारण गृहस्थका अथवा कोई पागल भी फिर रहा हो तो उस तकका भी शरण मान लेते हैं। कितनी ही जगह लोग पागलका भी बड़ा सम्मान करते हैं और यह प्रतीक्षा करते हैं कि यह मुझे कुछ गाली दे दे, कुछ एक आध बात कह दे तो इससे हमारे कार्यकी सिद्धि होगी। कुछ लोग तो यहाँ तक अपना मंतव्य बनाये रहते हैं। ये सब मोहियोंकी चेष्टायें हैं।

विशुद्ध मुमुक्षुका आदर्श—जिन्हें सांसारिक समस्त संकटोंसे छूटनेकी अभिलाषा है वे पुरुष उस आदर्श प्रभुकी खोज करते हैं। उनके चित्तमें यह बात रहती है कि अपना यह मस्तिष्क नारियलकी तरह किसी भी जगह फोड़ दिया जाय अर्थात् मस्तिष्क झुका दिया जाय यह कोई विवेककी बात नहीं है। कौन मेरे लिए आदर्श है ? देव कहो, भगवान कहो या आदर्श कहो, एक ही बात है। मुझे क्या बनना है, मैं क्या होना चाहता हूं, मैं क्या अनुभवना चाहता हूं इस प्रश्नके उत्तरमें जिसपर अंगुली उठ जाय कि मैं यह बनना चाहता हूं, उसीका नाम देव है। तो प्रभु क्षुधा आदिक अठारह दोषोंसे रहित हैं, अनेक विपदावोंसे दूर हैं, भले ही मोही जन ऐसे चारित्र वाले पुरुषोंको अपना आदर्श मानकर उनके प्रति भक्ति प्रदर्शित करें पर ज्ञानी पुरुष ऐसे चारित्र वालोंके प्रति अपनी भक्ति नहीं प्रदर्शित करते हैं। वे तो ऐसे प्रभुके प्रति श्रद्धासे अपना शीश झुकाते हैं जो इन समस्त दोषोंसे रहित हैं, जो सर्व आपदावों से रहित हैं, समतापरिणाममें धारी हैं, जो पूर्ण संयमरूप हैं, जिनमें अब कोई व्यसन आपत्ति आ ही नहीं सकती, ऐसे प्रभुके वे ज्ञानी ध्यानी भक्तजन परम उपासक हैं। प्रभुके तो अब परम संयम और परम ज्ञान हैं। संयम क्या है ? उनका आत्मा, उनका उपयोग उनमें ऐसा संयत हो गया है कि जो अब अनंतकाल तक भी अपने आपके स्वरूपसे हट नहीं सकता है। वे सदाके लिए सुखी हैं।

अशुद्ध दशाकी विपदा—अशुद्धता ही विपदा है और शुद्धता ही परमवैभव है। अपने आपके बारेमें विचार करें, हम किस बातपर इतरायें, किस बातपर घमंड करें, किस बातपर

अपना बड़प्पन मानें। जब हम अशुद्ध बनते हैं तो हम अपने स्वरूपमें रम नहीं सकते और परपदार्थोंके प्रति हमारा आकर्षण होने लगता है। किसीसे भी स्नेह अथवा द्वेष करके हम आप अपने आपको गंदा बना लेते हैं। ऐसी गंदगीमें रहने वाले हम आप किस बातपर अपना बड़प्पन मानें ? एक अपने आपके आनंदस्वरूपपर दृष्टि डालिये तो एक ऐसा साहस होता है कि नहीं, कायर बननेकी आवश्यकता नहीं। मैं स्वरूपतः केवल ज्ञानानंदमात्र हूं। यह शरीर ऊपर लदा है, ये रागादिक विकार भी मेरे ज्ञानस्वभावके ऊपर आ आकर जुड़ जाया करते हैं। हम उस समयमें विचलित हो जाते हैं तो संसारमें परिभ्रमण करते हैं, और जब हम अपने स्वभावकी सुधि लेते हैं तो एक साहस जगता है और अन्दरमें आवाज उठती है— जो मैं हूं वह हैं भगवान। कितना इन ज्ञानी पुरुषोंका अपने विचारोंमें हितकारी परिवर्तन चल रहा है ? पर्यायपर दृष्टि करते हैं तो इस अशुद्धतापर उन्हें विषाद होता है, कदाचित् पर-दृष्टि करते हैं तो उसपर भी वे पछतावा करते हैं। वे ज्ञानी ध्यानी पुरुष तो मुक्त होनेका सुगम उपाय जानकर, स्वयं अपनेको आनन्दमय मानकर अपने आपमें प्रसन्नताका अनुभव करते हैं।

संसारपाराभिलाषीके संसारपारगकी अनुकरणीयता—संसारसे पार होनेकी अन्तर्वृत्ति रखने वाले ज्ञानी पुरुषोंको प्रभुके संयम और ज्ञानकी पराकाष्ठा ईश्वर रूपमें दिखती है। जो किसी नदीको पार करके किनारे पहुंच जाता है उसीको यह अधिकार है कि दूसरे किनारे खड़े होनेपर दूसरोंसे कहे कि देखो इस रास्तेसे आवो, इसमें कोई खतरा नहीं है, और कोई किसी लहरोंमें डूब रहे पुरुषको अपना हितू मानकर उसको ही आदर्श मानकर उसके निकट जाय तो वह तो डूबेगा। हमें संयत बनना है, अपने आपमें गुप्त बनना है, निर्विकल्प होना है, ज्ञाना-नुभव करना है तो हमको हो इस दिशामें प्रगति करना है, तो प्रभु भी तो इस प्रकारका ही निरखेंगे। तो प्रभु संयम और ज्ञानकी पराकाष्ठारूप हैं। मोही जन ज्ञानसे रहित, सर्व दोषोंसे पूर्ण व्यक्तिको भी प्रभु मानकर उसकी भक्ति करते हैं। अरे जिसका जैसा उपादान है उसका वैसा ही परिणमन है। कहीं परमात्मा मान लेनेसे वे परमात्मा बन गये हों, यह बात नहीं है। तो प्रभु सर्व दोषोंसे रहित और गुणोंके उत्कृष्ट विकासरूप होते हैं।

इतरोऽपि नरः षड्भिः प्रमाणैर्वस्तुसंचयम्।
परिच्छिन्दन्मतः कैश्चित्सर्वज्ञः सोऽपि नेष्यते ॥२०२१॥

अनेक प्रमाणों और युक्तियोंसे ज्ञानसंग्रह करके सर्वज्ञताकी अनुत्पत्ति—कुछ लोग अनेक विद्यावोंका माध्यम करके अपनी युक्तियोंमें ही विश्वास रखते हुए सर्वज्ञके सम्बंधमें ऐसी कल्पना करते हैं कि कहीं केवल अपने ज्ञानस्वभावसे ही बिना कोई विचार किये, बिना कोई तर्क उठाये समस्त विश्वको जान ले यह बात तो संभव नहीं है। उनका मन्तव्य है कि सर्वज्ञ यों नहीं जानता, किन्तु जितने प्रमाण हैं, जितने ज्ञानके उपाय हैं, जितने ज्ञानके प्रकार हैं—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम, अर्थापत्ति आदिक सभी प्रमाणोंसे सभी युक्तियोंसे ज्ञानका अर्जन कर करके सर्वज्ञ बन जाते हैं। पर सोचिये तो सही कि विश्वके इतने पदार्थ उनको प्रत्यक्षसे, अनुमानसे या किसी भी प्रकारसे जान-जानकर कोई कब स्पष्ट समझ सकेगा ? तथ्य तो यह है कि ज्ञानको ज्ञानस्वरूपमें लेनेके परम निर्णय व पुरुषार्थसे परम प्रतपनमें ऐसा एक प्रभाव होता है कि उसका आवरण ध्वस्त होता है और सम्पूर्ण ज्ञान एक साथ प्रकट हो जाता है। ज्ञानका अर्जन कर करके कोई सर्वज्ञ बन जाय यह बात सम्भव नहीं है। लिख पढ़कर, याद करके, विद्या सीखकर अनेक तर्क बना करके सर्वज्ञ बनाना, यह बात बन ही नहीं सकती है। जो सर्व तर्क वितर्कोंको छोड़कर अपने आपके ज्ञानस्वरूपमें केन्द्रित हो जाय तो सबका ज्ञानार्जन छोड़कर अपने आपके स्वरूपमें रत होनेसे वह सर्वज्ञ बनता है।

विकल्पप्रसार रोककर अपने कैवल्यस्वरूपमें उपयोगके नियंत्रणसे सर्वज्ञताकी सिद्धि—सर्वज्ञ होनेका मार्ग यही है कि हम फैले हुए यहाँ वहाँके विज्ञानोंको छोड़कर अपने आपमें समा जायें। जैसे कोई पुरुष यहाँसे विलायत गया। बहुत दिन हो गए। जब वह अपने घर आना चाहता है तो जिस विदेशसे रवाना हुआ वहाँ कोई पूछता है कि भाई कहाँ जावोगे ? तो वह कहता है भारत देश जायेंगे, हिन्दुस्तान जायेंगे। जब हिन्दुस्तानके किसी बन्दरगाहपर आया मानो बम्बई आता है और कोई पूछता है कि भाई कहाँ जावोगे ? तो वह कहता है कि उत्तर प्रदेश जायेंगे। जब उत्तर प्रदेशकी सीमामें पहुंचा और किसीने पूछा कि कहाँ जावोगे ? तो वह कहता है कि सहारनपुर जायेंगे। जब वह सहारनपुर स्टेशनपर आ गया तो रिक्शा वालों ने पूछा कि कहाँ जावोगे ? तो वह कहता है कि अमुक मुहल्ला जायेंगे। यों वह अपने घर पहुंचकर अपने विश्रामके कमरेमें आकर विश्राम करता है। यों ही हम आपका यह उपयोग अपने निजी गृहको छोड़कर बहुत दूर चला गया है पुद्गलोंमें, मित्रोंमें, जड़ पदार्थोंमें, वहाँसे कहाँ गया ? अपने चेतन अचेतनमें, परिवारजनोंमें। वहाँसे कहाँ जायगा ? अपने आपमें। अपने ही निकट जायगा। पर इसमें तो अभी बहुत पर भरे हैं रागद्वेष मोह आदिकके। अब कहाँ जायगा ? अपने आपके ध्रुव निजी गृहमें। वहाँ जाकर आरामका स्थान मिलेगा, वहीं रम जाय तो वह परमशान्ति पायगा।

बाह्य ज्ञानार्जनमें क्षोभकारणताकी संभवता—इन परपदार्थोंका ज्ञानार्जन करते रहनेसे भी इसको क्या सिद्धि होगी ? कदाचित् कुछ परिचित लोग मान लें कि ये बड़े वैज्ञानिक हैं, बड़े चतुर हैं, समझदार हैं, तो इतना कहकर वे तो अपना कर्तव्य पूरा कर गए, पर इन बातों को सुनकर वह मोहमें जकड़कर उनके लिए और कदम बढ़ाता है। उन सबको खुश करनेके लिए वह रात दिन बेचैन रहता है। प्रशंसा करने वाले तो अपनी चक्की चलाकर चले गए पर पिसना पड़ा खुद अकेलेको, और दोष कहने वाला क्या छुड़ा ले गया ? बल्कि वह तो बड़ा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपकारी है, क्योंकि हमें सतर्क कर गया। तो इन बाहरी बातोंमें क्या फंसना है ? एक अपने आपके ज्ञानाद्वैतमें संगत हो जाय तो सर्वज्ञता प्रकट होगी। प्रमाणोंसे ज्ञान जोड़-जोड़ करके सर्वज्ञ नहीं हुआ जा सकता।

अतः सम्यक्त्स विज्ञेयः परित्यज्यान्यशासनम् ।
युक्त्यागमविभागेन ध्यातुकामैर्मनीषिभः ॥२०२२॥

विशुद्धध्यानार्थीकी देव, शास्त्र, गुरु व तत्त्वके निर्णयकी प्रथम आवश्यकता—जो मुक्तिकी अभिलाषा रखता है, जो परमध्यानकी कामना रखता है, जो उत्कृष्ट तत्त्व है, शरणभूत है उसकी उपासनाकी इच्छा रखता है उस पुरुषको तो मोहियोंके शासनको छोड़कर, मोहियोंकी उस रागवर्द्धक प्रणालीको तजकर वीतरागमार्ग अंगीकार करके शुद्ध बनना चाहिए। वे वीतराग सर्वज्ञ प्रभु ही हम आपके आदर्श हैं। देव, शास्त्र, गुरु—इन तीनोंका आलम्बन लिए बिना हमारी प्रगति नहीं हो सकती। हम अपना देव किसे मानें, यह तो निर्णय करें ? जो रागद्वेष जन्म मरण आदिक विडम्बनाओंसे मुक्त हुए हैं वे हमारे देव हैं, स्वयं ज्ञानानंद हो, केवल रह जाय तो बस जो केवल हो, जो निरन्तर ज्ञानानंदमें लीन हो वह हमारा आदर्श है। वहीं दृष्टि दें कि मुझे यह बनना है, वह तो है देव, और ऐसा बननेकी जो प्रेरणा देते हैं ऐसे सद्वचन, वे हैं शास्त्र। इस प्रकार बननेमें जो लग रहे हैं वीतराग होनेकी जो अपनी साधना बना रहे हैं ऐसे निर्ग्रन्थ तपस्वी ज्ञानध्यानरत महापुरुष वे हमारे गुरु हैं। तो सच्चे देव, शास्त्र गुरुका निर्णय करिये आत्माके नाते। अपने आपको किसी मजहब वाला मत मानो। आत्महितके नाते ही सारा निर्णय किया जाय तो उस पथका हमें दर्शन होगा और हम वहाँ अपना निभाव कर सकेंगे। इस आत्महितकी इच्छा रखने वाले भव्य जन अपने आदर्शका सही निर्णय करें कि हमें क्या बनना है ? वीतराग सर्वज्ञ सकलपरमात्मा जैसे हुए हैं उस मार्गसे चलें। उस ज्ञानानंदस्वरूपका ध्यान करें तो हममें भी शुद्धि होगी, और यह शुद्धि बढ़-बढ़कर उतनी ही वीतराग अवस्था बन सकेगी जो वीतराग सिद्ध प्रभुकी है। जैसे सर्व संकटोसे छुटकारा सिद्ध प्रभुका है वैसे ही सर्व संकटोंसे छूटकारा हम आप भी प्राप्त कर सकेंगे।

युक्त्या वृषभसेनाद्यैर्निर्धूयासाधुवल्गितम् ।
यस्य सिद्धिः सतां मध्ये लिखिता चन्द्रमण्डले ॥२०२३॥

उच्च योगमें सर्वज्ञताका निरूपण—प्रभुमें वीतरागता और सर्वज्ञता मुख्य गुण हैं, जिनका महत्त्व आंककर तीनों लोकोंके इन्द्र और विद्वत् जन, योगी जन प्रभुके चरणोंमें आकर परमतत्त्वकी उपासना किया करते हैं। ऐसे महत्त्वपूर्ण वीतरागताके सम्बंधमें भी बहुत कहा गया और सर्वज्ञताके सम्बंधमें भी कहा गया। किन्तु एक याद दिलायी गई है इस प्रसंगमें कि उस सर्वज्ञकी सिद्धि वृषभसेन आदिक गणधरोंने एक निर्मल चन्द्रमण्डलमें, शुद्ध वातावरणमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिखा है। जो कुनयके पक्षपाती हैं उनके द्वारा कहे गये विचारोंका खण्डन करके अथवा उन्हें समझा करके उन गणधरोंने सर्वज्ञकी सिद्धि लिखी है। यहाँ बताया है कि चंद्रमण्डलमें लिखा है। इसका क्या अर्थ हो सकता है? रात्रिमें लिखा है यह बात तो कुछ फबती नहीं है। ज्योतिषके हिसाबसे जिन दिनोंमें कुछ चंद्रकी महिमा आंकी जाती हो उन दिनोंमें लिखा अथवा चंद्र स्वरमें लिखा है। मनुष्यकी नासिकामें दोनों छिद्रोंसे जो वायु निकलती है तो दाहिने छिद्रसे श्वास निकालनेको कहते हैं सूर्य स्वर और बांई ओरके छिद्रसे श्वास निकलनेको कहते हैं चंद्रस्वर। यही चंद्रमण्डल कहलाता है जो शान्तिका प्रतिपादन होता है। जो साम्य भावका वर्णन होता है, धीर और शान्त तत्त्वका दर्शन होता है ऐसी स्थितिको एक सौम्य शान्त स्थिति कहा जाता है। ऐसी सौम्य स्थिति चंद्रस्वरमें हुआ करती है। तीव्र एवं चर कार्य तो सूर्यस्वरमें करना चाहिए और शान्त एवं स्थिर कार्य चंद्रस्वरमें करना चाहिए। आचार्यदेव उस सर्वज्ञ सिद्धिकी निर्दोषताको जानकर यह कह रहे हैं कि उस पावन प्रतिपादन से मालूम होता है कि यह सब निरूपण चंद्रमण्डलमें किया है जबकि एक सौम्य स्थिति थी। इससे यह जाहिर किया कि प्रभुको सर्वज्ञ मानना, यह कपोलकल्पित बात नहीं है। बड़े अनुभवों और उच्च सांसारिक वैभवोंको भोगकर त्यागने वाले योगीश्वरोंने निर्मल तपश्चरणके वातावरणमें अनुभव करके लिखा है।

अनेकवस्तुसम्पूर्णं जगद्यस्य चराचरम्।
स्फुरत्यविकलं बोधविशुद्धादर्शमण्डले ॥२०२४॥

सर्व चराचर पदार्थोंका प्रभुके ज्ञानमें स्फुरण—वे प्रभु जो हमारे लिए उपासनीय हैं, जिनके निकट, जिस स्वरूपको हम अपने आत्माका समर्पण कर सकें जिससे हमारा प्रगतिशील भविष्य बने, वे प्रभु कैसे हैं? उन्हें आदर्शरूप निर्मल ज्ञान प्राप्त हुआ है, उनके ज्ञान दर्पणमें यह चराचर जीवाजीव, सारा विश्व सम्पूर्ण स्फुरायमान होता है। देखिये अपने ज्ञानकी ओर दृष्टि करके इस ज्ञानमें स्वयं ऐसी महिमा है कि ज्ञानस्वरूपके कारण, अपने स्वभावके कारण यह जानता है। यदि इन इन्द्रियोंको भी बंद कर दें, इनसे भी काम न लें और अपने आपको भीतरमें एक समाया हुआसा बनायें तो भी वहाँ कुछ ज्ञान होता ही रहता है बल्कि वह विशुद्ध ज्ञानका रूप लेगा। यदि एक शांति सौम्य स्थिति है तो स्वका अवलोकन होता है और इन्द्रियज ज्ञान है तो यहाँ वहाँके बाह्य पदार्थोंको जानते रहते हैं। ज्ञानमें जाननेका स्वभाव है, कषायें आत्माका स्वभाव नहीं हैं क्योंकि कषायें यदि आत्माकी होतीं तो चिरकाल तक रहतीं। उनमें अदल-बदल चलता रहता है। किसीसे कहा जाय कि तुम जरा १० मिनट तक लगातार क्रोध करते रहो, तो नहीं कर सकता। इन कषायोंका अदल-बदल होता रहता है। चाहे कोई जीव कषाय कर रहा हो, चाहे कषाय दूर कर रहा हो, सर्वस्थितियोंमें यह ज्ञान चलता रहता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। जाननके बिना यह ज्ञान कभी भी नहीं रहता है।

ज्ञानस्वभावके कारण विकसित ज्ञानका असीम प्रकाश—यह ज्ञान एकस्वभावी है और स्वभावसे यह जाननहार है। लोग तो समझते हैं कि ये इन्द्रियां हमारे ज्ञानमें साधक हैं, पर एक दृष्टिसे देखो तो ये इन्द्रियां हमारे ज्ञानमें साधक नहीं हैं, किन्तु हमारे इस सम्पूर्ण विकासमें बाधक हैं। दृष्टांतमें ले लो। जैसे एक कमरे में ४-५ खिड़कियां हैं, उस कमरेमें रहने वाले पुरुषको बाहरकी चीजें देखना है तो वह उन खिड़कियोंसे देखना चहता है, देख लेता है। लोग तो कहते हैं कि देखो इन खिड़कियोंसे जाना, और क्यों जी यदि वे खिड़कियां न रहें, दीवार ही ढा दी जायें तो कहाँसे देखेगा ? अरे फिर खिड़कियोंकी जरूरत न रहेगी। फिर तो वह चारों ओरकी चीजोंको बराबर जानता रहेगा। इसी तरहसे ये ५ इन्द्रियां इस शरीर भींतकी ५ खिड़कियां हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र। यहाँ तो हम इन खिड़कियोंके द्वारसे जानते हैं, पर आत्मा क्या इन खिड़कियोंसे जानता है ? इन्द्रियोंसे क्या जानता है ? अरे वह इन इन्द्रियखिड़कियोंसे नहीं जानता है, यदि यह शरीर भींत न रहे, ये इंद्रिय खिड़कियां न रहें तो यह आत्मा सर्व ओरका सर्व कुछ जानता रहता है। आत्मामें ऐसे महत्त्वका ज्ञान गुण है जिसकी मोहमें लोग कदर नहीं रख रहे हैं। लोग तो बाहरकी बातोंसे स्नेह रख रहे हैं, अपने चित्तमें उन बाहरी बातोंका भार लादे रहते हैं, पर इस जीव को यह सुध नहीं है कि मैं तो सम्पूर्ण ज्ञान कर लूं, ऐसा ज्ञानमय पदार्थ हूं और इस ही में विशुद्ध आनंद बसा हुआ है।

कारणपरमात्मतत्त्वके आलम्बनसे समृद्धि लाभ—अहो इस कारणपरमात्मतत्त्वकी सुधि न होनेसे कितनी दयनीय स्थितिमें पहुंच गया है यह जीव ? इस स्वप्नवत् संसारमें चार लोगों में यह अपनी शान बगराता है और कदाचित् शानमें फर्क आ जाय तो उसमें बड़ा खेद अनुभव करता है। अरे क्यों इन चार जीवोंमें सम्मानकी चाह करते ? जीव तो अनंतानंत हैं। यदि तू इन अनंतानंत जीवोंमें अपनी नामवरीकी चाहकी कोशिश करे तो हम तो तेरी प्रशंसा करेंगे और कहेंगे कि तू धन्य है जो तूने इन अनंतानंत जीवोंमें अपनी नामवरीकी कोशिश कर ली। नहीं कर सकता ऐसा तो इन अनंतानंत जीवोंके सामने ये हजार, लाख, करोड़ जीव कुछ गिनती भी रखते हैं क्या ? अरे इस अटकने तो आत्माके सम्पूर्ण ज्ञानको रोक रखा है। तो वह प्रभु कैसा है ? विशुद्ध ज्ञानानंदपुञ्ज है। उनकी ज्ञानसाधनाके बलसे ये कषायें अब नजर भी उठा सकतीं, इन्द्रियविषय उन्हें कोई बाधा नहीं पहुंचा सकते, इन्द्रियविषयका यहाँ उपादान ही नहीं रहा, उन प्रभुने ऐसी सर्वज्ञता प्राप्त की है कि जिनके उस ज्ञानरूप दर्पण-मण्डलमें यह सारा जगत सम्पूर्ण रूपसे प्रकाशित होता है, अर्थात् समस्त विश्वके जाननहार हैं वे प्रभु।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वभावजमसंदिग्धं निर्दोषं सर्वदोदितम् ।
यस्य विज्ञानमत्यक्षं लोकालोकं विसर्पति ॥२०२५॥

प्रभुके ज्ञानकी स्वभावजता—प्रभुका ज्ञान स्वभावज है, स्वभावसे उत्पन्न होता है। यहाँ हम आप लोगोंके ज्ञान अनेक घटनाओंमें कितने पराश्रयज हैं, लो प्रकाश चाहिए बिजली का तब देख सकें, चश्मा चाहिए तब देख सकें, अथवा चक्षुकी निर्दोषता चाहिए तब निरख सकें, सामर्थ्य चाहिए। कितनी आधीनतायें हैं यह तो देखनेके विषयकी बात है, और खाने पीने में जो सुख होता और उन समयोंमें जो ज्ञान विचलित होते उनकी कथा तो इनसे भी कठिन है। इनमें पराधीनता है, लेकिन थोड़ासा ज्ञान पाकर लोग तो यों समझते हैं कि मैं तो अब सबका सिरताज हूं। अरे क्या ज्ञान पाया है? प्रथम तो बात यह है कि यदि उस शुद्ध अंतस्तत्त्वका अनुभव नहीं कर पाया है तो वह सारा बाहरी ज्ञान, वह सब पुस्तकोंका बोध एक बोझ है, और उस बोझसे इतना यह दब गया है कि इतने विकल्प मचने लगते हैं कि अपने उस शुद्ध तत्त्वके दर्शनका वह पात्र नहीं रहता है। ऐसे ज्ञानको भगवती आराधना सारमें कहा है कि वह तो गधेपर चंदन लदा है उस समान बोझ है। जैसे गधा चंदनकी लकड़ी लादे हुए किसी बाजारसे निकल जाय तो दूकानदार लोग तो उसकी सुगंधका आनंद पा जाते हैं पर वह गधा उस सुगंधका आनंद नहीं पा सकता, यह है हमारे इन्द्रियज ज्ञानका नमूना, और किन्तु प्रभुका ज्ञान स्वभावज है, स्वभावसे उत्पन्न होता है।

प्रभुज्ञानकी आदर्श निर्दोषता—प्रभुका ज्ञान असंदिग्ध है, जिसमें संदेहका कोई स्थान नहीं, सम्पूर्ण प्रकाशमान है, निर्दोष है। जहाँ किसी प्रकारका राग होगा, किसी प्रकारका स्वार्थ होगा, मायाचार होगा वहाँ ज्ञान सदोष होगा। उस ज्ञानसे धोखा भी मिल सकता है। उस ज्ञानसे दूसरे लोग विश्वासपूर्वक निर्बाध नहीं रह पाते हैं। प्रभुका ज्ञान निर्दोष है। देखिये ये सब चमत्कार किस बलपर प्रकट हुए हैं प्रभुके? प्रभुने मोह रागद्वेष नष्ट कर दिया है उसके बलसे आत्मामें वे समस्त गुण प्रकट हुए हैं। यहाँ लोग मोहमें धन वैभव परिजन मित्रजन आदिकको अपना रहे हैं, अपना मान रहे हैं, पर इस थोड़ीसी विभूतिमें या पाये हुए टुकड़ोंमें जो विश्वास बन रहा है इसके कारण नुक्सान कितना हो रहा है? नुक्सान कौनसा? अनंत आनंदका घात हो गया, अनंत ज्ञानका आवरण हो गया, आकुलता सवार हो गयी, अनाकुलता का दर्शन नहीं हो रहा। कितना बिगाड़ हो गया, और है व्यर्थका मोह। कितने दिन करोगे यह मोह? आखिर मरण तो सभीका होगा। यदि सभी मनुष्य आज तक जीवित होते तो इस भूमिमें किसीको खड़े होनेकी जगह ही न मिलती। तो यह भव अवश्य छोड़ना पड़ेगा। फिर यहाँकी कुछ खबर भी रहेगी कि कहाँसे आये, क्या थे? अभी ही बतावो—अपने पूर्वभवकी बातें, कहाँसे आये थे, क्या थे, और उसका कुछ सुख भी ले रहे हैं क्या? यही दशा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस भवकी है। तो रहे सहे जीवनके इतनेसे थोड़े दिनों भी यदि अपनेपर संयम कर लिया जाय, अपने मनको समझा लिया जाय, तत्त्वज्ञानसे प्रेम कर लिया जाय, अपने परमतत्त्वकी धुनि बना ली जाय, कितने दिनोंके लिए ? इन १०-५ वर्षोंके लिए, जितना कि शेष जीवन रह गया है, अरे इस अनंत कालके सामने यह थोड़ासा समय कुछ गिनती भी रखता है क्या ? इतने थोड़ेसे समयके लिए यदि अपना अंतःसंयम बना लिया जाय तो संसारके संकट सदाके लिए छूट सकते हैं।

ज्ञानावगाहनके साहसका लाभ—जाड़ेके दिनोंमें तालाबके किनारे खड़े हुए बालक यह हिम्मत जाड़ेके मारे नहीं कर पाते हैं कि शरीरमें पानीका स्पर्श करें, पर यदि कोई उन्हें धक्का दे दे अथवा वे स्वयं साहस करके उस तालाबमें कूद पड़ें तो एकदम सारा जाड़ा दूर भाग जाता है। आप भी जब जाड़ेके दिनोंमें बाल्टीभर पानी रखकर नहानेके लिए बैठते हैं तो उस समय जाड़ेके मारे एक गिलास पानी भी ऊपर नहीं डाला जाता है, और जरा हिम्मत बनाकर सारा बाल्टीभरका पानी अपने ऊपर डाल लेते हैं तो उसी समय सारी ठंड दूर हो जाती है। इसी तरह हम आप ये संसारके प्राणी डरे हुए तो क्या, देखा भी नहीं है कि उस ज्ञानसमुद्रमें अवगाहन करनेका कितना आनंद है ? कुछ डर भी रहे हों, यों समझ लीजिए कि परिजनोंके मोहवश वहाँ ही हम सुख मान रहे हों तो यहाँ पग नहीं रखना चाहते हैं। कुछ डर भी रहे हों तो एक बार हिम्मत बनाकर उस मोहके बंधको काटकर एक ज्ञानदृष्टिके संकुचित गलीसे चलकर एक बार उस ज्ञानसमुद्रमें अवगाहन तो कर लें, लो सारी आकुलतायें एकदम दूर भाग जायेंगी। इतना साहस करनेकी जरूरत है।

प्रभुज्ञानकी निर्दोषता और नित्योदितता—भैया ! यहाँ कोई साथी न रहेंगे, कोई शरण न देगा, पर अपने आपमें साहस बन जाय, अपनी दृष्टि अपनी ओर लग जाय, यहाँ ही निरखने लगें तो परम आनंद बढ़ेगा, तृप्ति होगी और संसारके संकटोंसे सदाके लिए बच जायेंगे और ऐसा ही अपना परिणमन बना लेंगे। यह सब मार्ग प्रभुस्वरूपके परिचयसे स्पष्ट विदित हो गया है। देखो तभी तो प्रभुका ज्ञान निर्दोष है और सदाकाल उदित है। यहाँ तो हम आप लोगोंकी बुद्धि किसी जगह बहुत अच्छी लग रही है और वह जगह छोड़ दें, दूसरी जगह पहुंचें तो उसमें फर्क आ जाता है। पर प्रभुका ज्ञान जैसा उदित हुआ है, जैसा विकासमें है वैसा ही सदाकाल उदित रहता है। वहाँ किस वजहसे घटे ज्ञान ? राग नहीं, दोष नहीं, इन्हींके कारण ज्ञानपर आवरण रहा करता है। तो प्रभु भगवानका ज्ञान सदाकाल उदित है। जिसका ऐसा इन्द्रियरहित ज्ञान है, केवल अपने ज्ञानस्वभावसे ही विकसित हुआ वह ज्ञान समस्त लोकालोकमें फैल जाता है।

प्रभुके विशाल सूक्ष्म ज्ञानमें लोकालोककी समाई—अच्छा यही बतावो कि मोटी चीज

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बारीक चीजमें समाती है या बारीक चीज मोटी चीजमें समाती है ? यह एक प्रश्न रखा है। देखो—प्रायः यह उत्तर आ रहा है कि बारीक चीज मोटीमें समा जाती है, किन्तु देखिये—आजका विज्ञान भी यह कह रहा है और मध्य लोकका जो वर्णन शास्त्रोंमें है वे भी कहते हैं कि पृथ्वी मोटी चीज है, पानी पतला है, पर यह पृथ्वी इस पानीमें समायी हुई है। स्वयंभूरमण समुद्र देखो कितना विस्तार रख रहा है। उससे कुछ कम अन्य समस्त समस्त द्वीप समुद्रों का विस्तार है। तो पानी पृथ्वीसे सूक्ष्म है, इस पानीके बीचमें पृथ्वी बनी हुई है, और पानी से बारीक है हवा, सो उसका विस्तार देख लो, पानीसे अधिक जगह हवा फैली हुई है, उस हवामें यह पानी समाया हुआ है, और हवासे भी बारीक क्या है ? आकाश। सो हवासे बड़ा है ना आकाश ? जहाँ हवा नहीं वहाँ भी आकाश है। तो इस आकाशके बीच हवा भी समायी हुई है, और इस आकाशसे भी पतला है ज्ञान। तो यह ज्ञान इतना फैला है कि जिसमें लोक और अलोक सारा समाया हुआ है। यह एक अलंकारिक ज्ञान पद्धतिकी बात है, और वहाँ भी देखो—अन्तरङ्गमें तो ज्ञानका क्या स्वरूप मिलेगा ? बहुत सूक्ष्म चीज है ज्ञान, जानन-मात्र। उस जाननमात्र ज्ञानमें सारा लोक समा जाता है, और वह भी ऐसा समा जाता है कि प्रभु सर्वज्ञके ज्ञानके एक कोनेमें समस्त लोक पड़ा है। ऐसे ऐसे और भी कितने ही लोक अलोक होते तो उन्हें भी जान लेता।

यस्य विज्ञानघर्मांशुप्रभाप्रसरपीडिताः।
क्षणादेव क्षयं यांति खद्योता इव दुर्नयाः ॥२०२६॥

प्रभुकी ज्ञानप्रभासे दुर्नयोंका क्षय—एक सर्वज्ञके ज्ञानसे और सर्वज्ञके ज्ञानके होते हुए भव्य जीवोंके भाग्योदयसे निकली दिव्यध्वनिसे जो ज्ञान प्रसृत हुआ है उससे भी समझ लीजिए। जिसका विज्ञानरूपी सूर्यकी प्रभाके प्रसारसे ताडित हुआ कुनय इस प्रकार क्षणभरमें क्षयको प्राप्त हो जाता है जैसे कि तेज धूपमें पटबीजनाओंका प्रकाश क्षयको प्राप्त हो जाता है। रातमें तो पटबीजनायें चमकती हैं, पर दिनमें जब कि तेज घाम हो तब क्या किसीने पटबीजनाओंको चमकते हुए देखा है ? इसी प्रकार उस विज्ञानमें जो स्याद्वाद कलासे पूरित है, यथार्थ वस्तुके स्वरूपका जिसमें प्रतिपादन है उस ज्ञानसे विपरीत होकर कोई खोटे आशय, ये एकान्तके अभिप्राय क्षयको प्राप्त हो जाते हैं।

ज्ञानीका कर्तव्य—क्या कर्तव्य होता है ज्ञानी जीवका ? पहिले तो इस जगतका व अपना यथार्थ निर्णय करे। यथार्थ निर्णय होता है एकान्तसे। मैं क्या हूं ? द्रव्यदृष्टिसे नित्य हूं क्योंकि मैं सदा रहता हूं, परिणमन दृष्टिके अनित्य हूं, क्योंकि परिणमन क्षण-क्षणमें नष्ट होता रहता है। मैं क्या हूँ ? जब स्वरूपदृष्टि करता हूं तब वह स्वरूप तो एक है, समस्त जीवोंका एक है, समस्त पर्यायोंका एक है। स्वरूपकी बात कही जा रही है, और जब हम

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिणमनकी दृष्टिसे देखते हैं तो जीव अनंत हैं और यह मैं भी प्रतिसमयके परिणमन जब जब जो जो होते हैं तब तब वे वे हैं। यों मैं भी अनेक हूं। मैं किसीसे राग रख रहा होऊँ और बादमें विरोध करने लगूं तो वह कहता है कि बस आप तो वह नहीं रहे, आप तो दूसरे हो गए। तो यों स्याद्वादके द्वारा, अनेकान्तके द्वारा वस्तुके तत्त्वका निर्णय होता है। यह बहुत महान है, इसके समझनेके लिए बहुत समय चाहिए, पर इतना ही यहाँ भी ध्यानमें लाइये कि अनेकांतसे हम वस्तुका निर्णय करते हैं तब हमें अनेकांत सहायक हुआ। फिर निर्णय करके हम क्या करें ? सो सुनिये—

अनेकान्तसे परम अनेकान्तमें पहुंच—अनोखे अनेकांतमें अब पहुंचिये, पहिले अनेकांत तो था—अनेके धर्माः यस्मिन् स अनेकांतः। जिसमें अनेक धर्म पाये जा रहे हैं वह अनेकांत है। यह आत्मा नित्य है अनित्य है आदि निर्णय कर लिया और निर्णय करके जो हेय चीज है उसको उपयोगसे हटा लिया, जो उपादेय है उसमें उपयोगको लगा दिया। अब क्या करना ? अब उस अनेकांतमें घुसिये जहाँ एक भी अंत याने धर्म नहीं। धर्म मायने गुण ज्ञान, दर्शन आदिक, सो न एकः अपि अन्तः यस्मिन् स अनेकान्तः। जिसमें एक भी धर्म भेद प्रतीत नहीं होता। अनेकांतसे वस्तुका निर्णय करके हमें उस अनुभवमें पहुंचना है जहाँ हमें गुण पर्याय आदिक कोई विकल्प न आये, उसको ही बनायें। अस्ति नास्ति एकः अनेकः नित्यः, एक भी धर्म उपयोगमें न रहे, केवल एक विशुद्ध ज्ञानमात्रका अनुभव रहे, ऐसी साधना बतायी है प्रभुशासनमें।

पादपीठीकृताशेषत्रिदशेन्द्रसमाजिरम्।
योगिगम्यं जगन्नाथं गुणरत्नमहार्णवम् ॥२०२७॥

प्रभुका त्रिलोकाधिपतित्व—ऐसे प्रभु जिसने समस्त त्रिदशेन्द्रोंकी सभाको सिंहासन रूप कर दिया है अर्थात् सबके पूज्य, सबमें एक शिरोमणि जो योगियोंके द्वारा गम्य है, योगी ही जिसको स्पष्टरूपसे जानते हैं, हम भी जब योगियोंकी तरह कुछ-कुछ योग अपनाते हैं ज्ञान योग विशुद्ध आशय रखकर उस सहज ज्ञानस्वभावकी दृष्टि अपनी शक्ति पद माफिक जब हम अपनाते हैं तो हमें भी उस परमात्मस्वरूपका कुछ प्रतिभास होता है, पर योगी जन तो अपने उस विशुद्ध आशयके कारण अभीष्ट परमात्मतत्त्वके दर्शन कर सकते हैं। यह प्रभु जगन्नाथ हैं, जगतके नाथ हैं। वे प्रभु नाथ जो वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं, और हम आप भी नाथ हैं। नाथ का मतलब = न अथ, जिसका आदि नहीं, हम आप सबका स्वरूप कैसा है ? आदि है, हम भी नाथ हैं। वे प्रभु जगन्नाथ हैं क्योंकि वे वीतराग हुए हैं, सर्वज्ञ हुए हैं, उनकी कला सातिशय प्राप्त है।

प्रभुकी गुणरत्नमहार्णवता—प्रभु गुणरूपी रत्नोंके महान समुद्र हैं। समुद्रमें कैसे-कैसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रत्न पड़े हैं, कितने रत्न पड़े हैं ? इसी प्रकार इस ज्ञान महार्णवमें, जो मात्र ज्ञानपुञ्ज है, बड़े रत्न पड़े हैं, जहाँ परमशान्ति है, विशुद्ध आनन्द है वहाँ तो सब कुछ है। चाह तो केवल सबकी आनन्दकी ही है, चाहे वह किसी तरहका है। पर किसी तरह क्या, आनन्दके प्रकट होनेका रास्ता एक ही है, और वह है अपने आपको जानना और अपने आपमें रमना। यही एक रास्ता है उस विशुद्ध आनन्दके प्रकट करनेका। वह प्रभु ज्ञानानन्दके परमविकासके कारण गुणरत्न महार्णव हैं, ऐसे प्रभुकी ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुष रूपस्थ ध्यानमें उपासना कर रहा है।

पवित्रितधरापृष्ठं समुद्धृतजगत्त्रयम् ।
मोक्षमार्गप्रणेतारमनंतं पुण्यशासनम् ॥२०२८॥

प्रभुकी पूतविश्वता—जब कि यहाँ ही किसी निष्पक्ष पुरुषका सन्निधान मिलता है, किसी ग्रामको ऐसा सौभाग्य मिलता है तो उस ग्रामके वासी उस उदारचेता गम्भीर निःस्वार्थ पुरुषके प्रति महान आदर होता है और उसके प्रति वे ग्रामवासी अपनेको पवित्र मानते हैं, फिर तो जो इन पुरुषोंमें से आत्मज्ञानी होकर परम नैर्ग्रन्थ्य अवस्थाको अपने जीवनको धारकर आन्तरिक उस विशुद्धिसे पवित्र होकर जो वीतराग हुए हैं, सर्वज्ञ हुए हैं, परमात्मा हुए हैं, ऐसे परमात्मा जहाँ विराजे हैं वहाँके आसपासके सौ सौ दो दो सौ योजनके चारों तरफके लोग अपनेको पवित्र मानते हैं। और इतना ही नहीं स्वर्गवासी, भवनेन्द्र आदि भी अपनेको पवित्र मानते हैं, सो ठीक ही विशेषण दिया है कि जिसने इस धरापृष्ठको पवित्र किया है। यह लोक, यह संसार, ये प्राणी मोहांधकारसे पीड़ित हैं। जो चित्तमें आता है उसकी ही कषाय बनाते हैं और उसके अनुरूप करनेको अंध होकर तैयार हो जाते हैं। जिसके फलको इतिहासमें सुना, अब भी सुन रहे हैं। युद्धकी तैयारी होती रहती है, किसीने किसीपर चढ़ाई कर दी, कितने ही प्रकारके लोगोंको भय रहा करते हैं, पर है क्या उनका ? जिन्होंने इस लोकमें शासन किया, बड़ा चैन माना, न्याय अन्याय न गिना, ऐसे भी बादशाह हुए हैं, उनका भी अब कोई नाम लेता है क्या ? उनकी भी अब कोई बात पूछने वाला है क्या ? केवल उनके कुकर्मोंसे रंगे हुए इतिहासके पृष्ठ मात्र शेष हैं। तो किनके लिए अन्याय किया जा रहा है ? लेकिन इन मोहियोंको कुछ भी सुध नहीं है। ऐसे मोहांधसे पीड़ित इस लोकमें यदि कोई आत्मज्ञानी है, वीतराग सर्वज्ञ है तो समझिये कि वह धरापृष्ठ उनसे पवित्र हो जाता है।

पतितोद्धारक प्रभुका स्मरण—ऐसे प्रभुका स्मरण करो जिसने तीनों लोकोंका उद्धार कर दिया है। हम जिन परिवार जनोंमें बसते हैं, जिनसे रागभरी वाणी सुना करते हैं वे क्या हमारा उद्धार कर सकनेमें समर्थ हैं ? जो वास्तविक बंधु हैं, परमार्थ मित्र हैं ऐसे साधु संतोंसे मोहियोंका अनुराग नहीं जगता। जिनका राग करनेसे नरक निगोदका पात्र बनना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पड़ता उनको ही अपना सर्वस्व समझते हैं, ये ही हैं मेरे सब कुछ। जिन साधु संत पुरुषोंकी वाणी सुनकर अपने आपमें अपने आपका अवलोकन कर परमशान्ति प्राप्त होती है वे ही हम आपके निरपेक्ष बंधु हैं किन्तु उन्हें ये मोही जन मित्र और हितकारी नहीं मानते हैं। वे तो जो राग बढ़ानेके कारण हो रहे हों उन्हींमें प्रेम करते हैं। देखिये मनुष्योंका राग होता है चेतन अचेतन पदार्थोंसे। कोई अचेतन पदार्थ भी यदि सुन्दर है तो उसमें भी प्रेम जगता है, मगर इसमें यह गनीमत है कि ये अचेतन पदार्थ (कपड़ा घड़ी, आदिक) अपनी ओरसे राग नहीं दिखाते हैं, पर हम ही अपनी तरफसे इन अचेतन पदार्थोंमें राग करके मूढ़ बन गए, बेवकूफ बन गए। अब चेतनके रागकी बात देखो, हम राग करते हैं तो वे रागभरे वचन बोलते हैं, ऐसे मूढ़ और बेवकूफ तो अपनी तरफसे हम थे ही, अब वे जीव भी रागकी बात सुनाते हैं—तुम ही मेरे सब कुछ हो, तुम्हारे बिना हमारा जीवन नहीं, मरण हो जायगा, यों अनेक बातें ऐसी राग और स्नेहकी करते हैं तो इसे यों समझिये कि यह जीवन दुहरा आक्रमण है। अब फिर उनसे तो वे अचेतन भले कि जहाँ हम अपनी ही ओरसे ख्याल बनाकर अपनेपर आक्रमण करें। वे बेचारे कुछ चेष्टा नहीं करते हैं हमको मूढ़ बनानेके लिए। तब देखिये कि यहाँ इस चराचर जगतमें मोह करनेसे इस जीवको फल क्या मिलता है, पर मोही इस ही में राजी हैं। जो दुःखका हेतु है उस ही में ये अपना सर्वस्व मानते हैं।

उदाहरणपूर्वक प्रीतिकी असारताका दिग्दर्शन—हुआ है एक देवरति राजा। पुरानी कथा है। वह अपनी रानीमें बड़ा मुग्ध था, दोनों ही एक दूसरेसे बड़ी प्रेमभरी बातें करते थे। रानी सदा यही कहा करती थी कि हे राजन्! जिस दिन आप नहीं होंगे तो उस दिन मेरे लिए सारा संसार सूना हो जायगा। यों बड़ा प्यार जताती थी वह रानी। यों रानीमें आसक्त होनेके कारण राज्यका काम ढीला पड़ गया, सो मंत्री लोग आकर राजासे कहते हैं कि हे राजन्! या तो आप राज्यको ठीक-ठीक चलाइये या आप अपनी रानीको लेकर राज्यसे बाहर चले जाइये। हम मंत्री लोग राज्यका काम सम्हाल लेंगे। तो राजाने अपनी रानीको लेकर राज्यसे बाहर ही जाना स्वीकार कर लिया। राज्यसे बाहर जाकर किसी गांवके निकट बसे। राजा तो चला गया भोजन सामग्री लेने, वहाँ क्या हुआ कि एक कुबड़ा जो कि एक खेतकी मेड़पर पड़ा हुआ गीत गा रहा था, उसका स्वर मधुर था, रानी उसपर आसक्त हो गई। कुबड़ेके पास जाकर उससे कुछ कहती है तो कुबड़ा कहता है कि अरे यदि राजाको विदित हो गया तो वह हमें भी मार डालेगा और तुम्हें भी। तो रानी कहती है कि कुछ भी हो, आप हमें अपने संग रख लीजिए, इस कामको हम बना लेंगी। अब वह राजा जब भोजन सामग्री लेकर आया तो उस रानीको उदास देखा अब वे राजा और रानी तो न रहे, अब तो भिखारी हो गए। खैर, वह राजा अपनी रानीसे उदासीका कारण पूछता है, तो उस रानीने बताया कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पतिदेव आज आपका जन्म दिन है, यदि महलोंमें होते तो मैं बहुत बहुत आपका स्वागत करती।····तो क्या करें अब ?····बहुतसे फूल लावो, मैं माला गूथूँगी, हार बनाऊँगी और यहीं पर आपका स्वागत करूँगी। वह राजा बहुतसे फूल ला देता है। वह रानी बड़ा लम्बा एक हार बनाती है, उस राजाको एक बड़ी ऊँची पहाड़ीपर ले गई, वहीं पर उस हारसे उसे कसकर बाँध दिया, और बादमें एक ऐसा धक्का दिया कि वह राजा लुढ़कता-लुढ़कता उस पहाड़ीके किनारेकी नदीमें जा गिरा, बह गया। कुछ दूरपर जाकर किसी पेड़की डालोंमें टकराकर रुक गया। बाहर निकला। पासके शहरमें गया। उन्हीं दिनों उस शहरका राजा मर गया था, सो मंत्रियोंने यह तय किया था कि यह हाथी जिस किसीके गलेमें यह माला डाल देगा और अपनी सूंडसे उठाकर अपनी पीठपर बैठा लेगा उसे राजा बनाया जायगा। सो हाथी ने उसी राजाके गलेमें माला डालकर सूंडसे उठाकर अपनी पीठपर बैठाल लिया जो कि नदी में से निकलकर किनारे लगा था। लो वह पुनः राजा हो गया। इधर क्या होता है कि वह रानी उस कुबड़ेके संग हो गई थी। उसे एक डलियामें बिठाकर अपने सिरपर वह डलिया रखकर सभी जगह जाती, वह कुबड़ा गाता, वह नाचती, और जो पैसे मिल जाते उससे पेट भरते। सभीसे यह भी कहती कि मैं पतिभक्ता हूं, अपने पतिको अपने सिरपर बैठाकर चलती हूं। खैर, इस तरह नाचते गाते, मांगते खाते एक बार उस जगह भी पहुंची जहाँ कि राजा देवरति राज्य करता था। पता लगा कि कोई नाचने गाने वाले आज इस नगरीमें आये हैं, सो राजदरबारमें बुलाया गया। वहाँपर उस राजाने जब उस स्त्रीको देखा तो पहिचान गया। उसे देखकर उसके संसारसे वैराग्य जगा। ओह ! यह हालत है इस संसारकी। कैसी अपनी वेदना, कैसा अपना मोह और कषाय। ओह ! इसने अपनी क्या हालत कर ली ? तो किसीसे कुछ न कहा, दूसरोंको राज्य देकर वह राजा दीक्षित हो गया। अब आप देखिये कि कैसे कर्मोंका प्रेरा यह जीवलोक है ? यहाँ किसकी शरण गहें, किसे अपना मानें ? ये कोई भी हमारा हित न कर देंगे।

प्रभुका मोक्षमार्ग प्रणेतृत्व—हमारे निरपेक्षबंधु परममित्र जो सच्चे देव शास्त्र गुरु हैं उनकी शरण गहें, अन्यसे अपना लगाव छोड़ें। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और धर्म ये चार ही हमारे शरण हैं। व्यवहारमें सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और परमार्थसे धर्म ये ही हमारे शरण हैं। तो जिनकी वाणीने हमें इस प्रकारका ज्ञान प्रकाश दिया उन्होंने तो तीनों लोकोंका उद्धार कर दिया। सो ये मोक्षमार्गके प्रणेता हैं, नेता हैं, अर्थात् ले जाने वाले हैं। कहाँ मोक्षमें ? खुद मोक्ष जायेंगे और दूसरोंको भी उसी मार्गका उपदेश करने वाले हैं। जो स्वयं उत्कृष्ट हो और उसी उत्कृष्ट पथमें ले जाय उसे कहते हैं प्रणेता। तो ये प्रभु मोक्षमार्गके प्रणेता हैं अर्थात् संसारके संकटोंसे छुटकारा कराने वाले हैं। जो उनके उपदेशको मानता है, उनके आदर्शको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तकता है और उसपर चलता है वह संसारके संकटोंसे छूट जाता है। ये प्रभु अनंत हैं, अविनाशी हैं, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनंद और अनन्त शक्ति ऐसे अनंत चतुष्टयसे संपन्न हैं, जिसके कारण सर्व प्रकार वे अमीर ही कहे जाते हैं। देखिये अमीर हैं प्रभु और गरीब हैं मिथ्यादृष्टि। और जिनके तारतम्य पड़े जो कुछ मध्यम दर्जेके लोग हैं वे हैं बीचके गुणस्थान। चौथेसे १२ वें तकके ज्ञानियोंमें चारित्रका तारतम्य है, ये छोटे अमीर हैं, ये बड़े अमीर हैं, ये और अधिक अमीर हैं और जो सबसे अधिक अमीर हैं वे प्रभु हैं, जिनमें तारतम्य नहीं है और गरीब हैं वे हैं मिथ्यादृष्टि। गरीब कौन ? जिसको आशायें सताती हों। धर्मपंथकी दृष्टिसे विचारो तो प्रभु अनंत चतुष्टयसे सम्पन्न हैं। सर्वके अधिपति हैं, देवाधिदेव हैं, ऐसे उस परमानन्दमय प्रभुका स्मरण करो।

प्रभुकी पुण्यशासनता—प्रभु पुण्यशासन हैं, जिनका शासन पवित्र है। देखो कितना शान्तिका स्थान है ? थोड़ेसे लोगोका समूह हो तो उनको सही ढंगसे चलाना कठिन हो जाता है, शान्तिके वातावरणमें रखना कठिन हो जाता है। लेकिन प्रभुके शासनका जिन्होंने आलम्बन लिया है उनकी शान्ति तो देखिये। हजार मुनि आचार्यके संघमें रहा करते थे, लेकिन आचार्यको शासन करनेकी जरूरत न रहती थी, वे सब साधु अपने हितकी अभिलाषाके कारण स्वयं शासित रहा करते थे। क्रोध न करना यह समस्त मुनियोंका संकल्प था क्योंकि क्रोधमें जरा भी आ गए तो हमारा आत्मा पतित हो जायगा, हम अपना उद्धार न कर सकेंगे। तो वहाँ कौन कहने वाला कि शान्त रहो, गुस्सा न करो ? किसीको कुछ कहनेकी जरूरत न थी, सभीके सभी हजारों मुनि आत्महितके अभिलाषी थे, स्वयं शांत रहते थे, नम्र रहते थे, किसी दूसरेसे अप्रेम न करते थे, वात्सल्यभाव उनके बहुत रहता था, वे दूसरोंका आदर करना अपना योग्य व्यवहार समझते थे। सभीके सभी मुनि अपने आप अपना कर्तव्य जानकर स्वयं उस प्रकार चलते थे, सो वे हजारों मुनि प्रभुके शासनसे शासित होकर शान्त रहा करते थे। यह तो है मुनियोकी कथा। यही बात श्रावकोंमें न होना चाहिए क्या ? यदि प्रभुके शासनमें शासित हैं श्रावक तो उनमें भी यही वातावरण होना चाहिए। यदि परस्परमें विरोध है, अप्रेम है, द्वेषको भावनायें हैं तो समझो कि वे प्रभुके शासनमें शासित ही नहीं हैं। हजारों मुनियोंमें यदि परमशांतिका वातावरण मिलता तो यहाँ कुछ तो मिले। परस्परमें इतना विरोध तो न जगे तो प्रभुका तो शासन पुण्य ही है, और जो उस शासनका अवलम्बन लेते हैं वे पवित्र बन जाते हैं। प्रभु पुण्यशासन है।

भामण्डलनिरुद्धार्कचन्द्रकोटिसमप्रभम्।
शरण्यं सर्वगं शांतं दिव्यवाणीविशारदम् ॥२०२६॥

प्रभुकी चन्द्रसूर्यातिशायिनी प्रभा—जिस धाममें प्रभु बसे हैं सोचो तो सही कि वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परम ज्योति रागद्वेषकी कालिमासे सर्वथा रहित अपने दिव्यज्ञानसे लोकालोकको प्रकाशित करने वाला है ऐसे प्रभु जिस कायमें बसे हैं उस कायने भी बड़ा परिवर्तन कर लिया। दिव्य-काय हो गया, परमौदायिक शरीर हो गया, उनके शरीरसे प्रभा निकली, भामंडल बना, उस भामण्डलके द्वारा निरुद्ध कर दिया है सूर्य चंद्रकी प्रभा जिसने ऐसे वे प्रभु हैं। देखो कुछ तो यह बाह्य अतिशय है और अन्दरमें देखो तो एक वह प्रभा उत्पन्न है जो कि मध्यलोककी सभी ज्योतियाँ एकत्रित होकर भी उस प्रभाको नहीं उत्पन्न कर सकतीं। वह प्रभा प्रभुके पवित्र आत्मामें है, उस ज्ञानप्रकाशमें है। जिसके द्वारा समस्त लोकालोकको वे हस्त तलपर रखे हुए आँवलेकी तरह जानते हैं। जैसे आँवलेका अवलोकन बहुत अंशोंमें शीघ्र ही हो जाता है ऐसे ही प्रभुको लोकालोकका ज्ञान शीघ्र ही हो जाता है।

प्रभुकी शरणभूतताका संदेश––आचार्योंके वचन सुननेमें कोई बातें बड़ी सीधी लगती हैं, पर उनके अन्दर क्या क्या बातें छिपी हैं, चाहे वे आचार्य प्रयोग करते समय उतना विचार रख भी न रहे हों, किन्तु उनके सहज ही ऐसी कला है, उनका ऐसा पांडित्य है कि ऐसी शब्दरचना हो जाती है। एक बहुत सीधा शब्द है चत्तारिमंगलं। इसका अर्थ क्या है ? चार मंगल हैं, पर चत्तारि शब्दके दो भाग करें––चत्ता (त्यक्ता) अरि। चत्ताका अर्थ है त्यागना व अरिका अर्थ है कर्म बैरी। तो अब चत्तारिके चार अर्थ करें। दूर हो गये हैं दुश्मन जिससे, दूर हो चुके हैं समस्त दुश्मन जिससे, दूर कर रहे हैं दुश्मनोंको जो, त्यागे जाते दुश्मन जिसके द्वारा ऐसे वे मंगल हैं। इसी प्रकार ये चार लोकोत्तम हैं और शरणभूत हैं। वे चार हैं–– अरहंत, सिद्ध, साधु और धर्म। सो इससे विदित है कि प्रभुस्वरूपस्मरण हम आपको शरण-भूत है, तो जिनका वह दिव्य ज्ञान समस्त विश्वको स्पष्ट जानता है। ऐसे सर्वज्ञ परमात्माका स्मरण करो। जो शरण है, जिसका शरण ग्रहण करनेपर आत्माको शरण मिलता है, बिना राग किये, बिना भक्तोंको पुकारे, बिना उन्हें अपनाये, जिनका दर्शनमात्र ही भक्तोंको शरण हो जाता है।

बाह्यमें संग्रह विग्रह करके दुःखविनाश किये जानेकी असंभवता––भैया ! लोकमें क्या दुःख है, एक उस तरहकी दृष्टि बना लिया जिससे दुःखी हो रहे। किसीका धन गिर गया तो वह क्यों दुःखी हो रहा ? एक दृष्टि ही तो कर रहा जिससे दुःखी हो रहा। किसी महा-पुरुषका दर्शन हुआ, उसकी वैराग्य मुद्रा, शांत मुद्राको निरखकर दृष्टि पलट जाय, लो सारे दुःख मिट गए। बतावो किसने दुःख मिटा दिया ? अरे उस पवित्र आत्माके दर्शनने ही दुःख मिटा दिया। हुआ क्या कि उस समय स्वयं उसने अपनी दृष्टि बदल ली और वे सब दुःख विश्रान्त हो गए। कोई बड़ा दुःखी है, भला बतलावो उसका दुःख एक मिनटमें ही मिट सकता है या नहीं ? मिट सकता है। कैसे ? जिन कल्पनाओंके आधारपर वह दुःखी हो रहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

था उन कल्पनाओंको अपनी दृष्टि बदलकर मेट दे, लो शीघ्र ही वह सारा दुःख मिट जायगा। नहीं तो यहाँ किस किसकी सम्हाल करके अपने दुःख मेटोगे ? एककी सम्हाल करोगे तो दूसरा बिगड़ जायगा, उसकी सम्हाल करोगे तो दूसरा बिगड़ जायगा, उसकी सम्हाल करोगे तो तीसरा बिगड़ जायगा। जैसे किसीसे कहा जाय कि जरा एक किलो जिन्दा मेढक तौलकर दिखा दो तो क्या वह दिखा सकता है ? नहीं दिखा सकता। क्योंकि एक चढ़ायेगा तराजूपर तो दूसरा उछल जायगा, ऐसे ही यहाँकी व्यवस्थायें बना बनाकर भी ये सारे संकट नहीं मेटे जा सकते हैं। कल्पनाओंके अनुसार काम करके, श्रम करके, संकटोंको मिटाना चाहें तो सारा जीवन लगा दिया जाय फिर भी संकट न मिट सकेंगे। अनेक धर्मात्मा लोगोंके मुखसे सुना होगा कि हम तो केवल साल दो साल ही इन झंझटोंमें पड़े हैं, फिर इन सब झंझटोंसे मुक्त होकर एक धर्मके कार्यमें ही लगेंगे। पर होता क्या है कि वह समय भी निकल जाता है, और भी बहुतसा समय बीत जाता है, पर जैसेके तैसे ही वे अपने आपको पाते हैं। तो बात क्या है ? वे अपने आत्मबलको बढ़ाना नहीं चाहते, ज्ञानकी सुधि नहीं लेते, अपने आपके परमात्म तत्त्वकी शरण नहीं गहते, सो यह स्थिति हो जाती है। तो बाहरी समागमोंमें रहकर उनका संग्रह विग्रह करके उससे सुखकी आशा करना यह तो जिन्दा मेंढक तौलनेकी तरह है।

व्यापक शान्त दिव्यवाणीश्वर प्रभुकी शरण्यता—ऐसे प्रभु जो सर्वत्र व्यापक हैं, सब जगह हैं, ज्ञान सब जगह है ना, इनका सभक्तिस्मरण करो। ज्ञान यद्यपि सबका अपने आपके प्रदेशोंमें है, पर ज्ञान जितने पदार्थोंमें है उन समस्त पदार्थोंमें व्यापक है। लोकाकाशके बाहर आकाश ही आकाश है किन्तु ये प्रभु अलोकाकाशमें भी जा धमके, प्रदेशोंसे नहीं, किन्तु ज्ञान से। उनका ज्ञान अलोकको भी जानता है, उस दृष्टिसे प्रभु सर्वज्ञ हैं, शान्त हैं और दिव्यवाणी में विशारद हैं। जिनकी दिव्यध्वनि कितने ही अर्थोंसे भरी है, कितने ही मर्मोंसे भरी है, जिसका विस्तार इतना महाशास्त्र है कि जब द्वादशांगकी पूर्वोंकी रचना विस्तारको सुनें तो अंदाजा होता है कि यह कितना बड़ा अंग है, यह कितना बड़ा पूर्व है, उनके पदोंको देखें तो इतना विशाल जंचता है कि जिसे कोई बोल नहीं सकता, पढ़ नहीं सकता। परन्तु सामर्थ्य है ऋद्धिके प्रतापसे उन ऋषिजनोंमें कि इतने बड़े भी द्वादशांगोंको अन्तर्मुहूर्तमें भी पढ़ लेते हैं, मनसे चिन्तन कर लेते हैं, ऐसे अलौकिक अर्थोंसे भरे, दिव्यवाणीमें वे प्रभु विशारद हैं, ऐसे प्रभुका शरण प्राप्त हो, यही अपने आपके उद्धारकी बात है। हम आपका चित्त बस दो जगह ही तो लगना चाहिए—प्रभुके गुणोंकी ओर और अपने आपमें बसे हुए उस विशुद्ध स्वरूपकी ओर। व्यवहारसे वे प्रभु शरण हैं, परमार्थसे अपने स्वभावका आलम्बन शरण है।

अक्षोरगशकुन्तेशं सर्वाभ्युदयमन्दिरम् ।
दुःखार्णवपतत्सत्त्वदत्तहस्तावलम्बनम् ॥२०३०॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

संस्थानविचय धर्मध्यानकी पात्रता—प्रभुकी आज्ञानुसार तत्त्वोंकी श्रद्धा करके ध्यान करता रहने वाला पुरुष, और रागादिक भाव मेरे कैसे नष्ट हों, कैसे मुझे उस आत्मतत्त्वका उपाय प्राप्त हो, ऐसे चिन्तवनसे अपने परिणामोंको विशुद्ध करने वाले ज्ञानी पुरुष और कर्मोंके उदयकी विचित्रताको निरखकर कर्मोदयवश होकर कैसे कैसे बड़े बड़े पुरुषोंपर इतने उपसर्ग आये, इन सबको निरखकर अपने चित्तमें वैराग्यकी वृद्धि करने वाला पुरुष इस समस्त लोकके आकारका चिन्तन चिर-समय तक कर सकता है और तीन कालोंका विचार चिर-समय तक कर सकता है, उस समय यह संस्थानविचय नामक धर्मध्यानका विशेष पात्र होता है।

पार्थिवी धारणासे संस्थानविचय ध्यानका अभ्यास—इसमें इस इस योगीने सर्वप्रथम अपने आपमें चिन्तन किया। यह मैं एक धरातलसे अछूता विराजमान हूं, जम्बूद्वीपके बराबर कोई क्षीर समुद्र है, जिसके चारों ओर दुग्धवत् धवल समुद्र फैला हुआ है, उसके बीच मेरुवत् उच्च बहुत बड़ी कर्णिकाका एक कमल है, जो बहुत देदीप्यमान है। उसके ऊपर सिंहासनके आधारपर मैं विराजमान हूं, ऐसा ध्यानमें लायें कि अगल-बगल कहीं कुछ भी नहीं दिख रहा। सोचिये तो सही—ऐसी कोई कल्पना करके बैठे कि मैं ऐसे क्षीर समुद्रके बीच कमल पर विराजमान हूं, बहुत ऊँचेपर विराजमान हूं, ऐसा कल्पनामें आते ही कितना उसका भार दूर हो जाता है और अपनेमें हल्कापन अनुभव करने लगता है।

आग्नेयी मारुती वारुणी धारणासे रूपस्थ ध्यानका उद्यम—वहाँ पद्मासनसे विराजमान अपने आपके देहमें यों चिन्तन कर रहो है, नाभिकमल अर्थात् जहाँ नाभि है वहाँपर १६ पत्रिकाओंका कमल है और हृदयपर औंधा हुआ ८ पांखुड़ीका कमल है, ऐसे मानो हृदयपर ८ कर्मोंका आवरण है सो ८ पंखुड़ियोंका कमल है जो नाभिकमलकी कांतिको रोके हुए है। नाभिकमलके सोलह पत्रोंपर सोलह स्वर चिन्तन करिये। स्वर तो हैं अ आ इ ई उ ऊ आदि और व्यञ्जन हैं क ख ग घ आदि। व्यञ्जन तो बिना स्वरकी सहायताके नहीं बोले जा सकते, और स्वरका उच्चारण बिना अन्य वर्णकी सहायताके किया ही जा सकता है। अर्द्ध व्यञ्जनका उच्चारण भी बिना स्वरकी सहायताके नहीं किया जा सकता। उसमें लगे हुए अन्य व्यञ्जनमें लगे हुए स्वरकी सहायता होती है, जिनका उच्चारण सीधे किया जा सकता है वे स्वर हैं। तो वे स्वर एक समस्त श्रुतज्ञानके प्रतीक हैं। उसके बीच कर्णिकापर एक ह्रँ शब्दका चिन्तन कर रहा है। ऐसा माना कि वहाँ तेज धुवाँ चला, फिर एक ज्वाला निकली, उसके बढ़नेसे ज्ञान प्रतीक वाले षोडषदल कमलपर जो अधोमुख कर्मवाला अष्टकमल आवरक था वह जल गया और वह ज्वाला सर्व ओर फैल गई। मानो यह देह भी भस्म हो गया। देहकी भी उसे सुधि न रही, और ऐसा उस समय वायुका जोर हुआ जो बड़ा भयंकर तीव्र वेगमें हो सकता हो, वह वायु सारी भस्म उड़ा ले गई, ऐसे कि यह पता न पड़े कि यहाँ भस्म भी है, ऐसी स्थितिमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फिर बड़ी घनघोर जलवर्षा हुई। जो थोड़ी बहुत कालिमा बची थी वह सब साफ हो गई। अब तो रहा कुछ नहीं। केवल एक ज्ञानपुञ्ज रहा, ऐसी स्थितिमें यह रूपस्थ ध्यानका चिंतन चल रहा है जहाँ प्रभुका ध्यान हो रहा है।

विशुद्धहृदय हुए बिना प्रभुगुणका हृदयमें अनवतार—यहाँ यह समझने योग्य बात है कि उस प्रभुके गुणोंको हृदयमें अवतरित करनेके लिए हमें अपने हृदयकी शुद्धिकी कितनी बड़ी तैयारी करना चाहिए? नहीं समझमें आता प्रभुका गुणगान, ध्यानमें मन नहीं लगता है उसका कारण यह है कि हमारा हृदय विशुद्ध नहीं है, यहाँ वहाँके राग समाये हुए हैं। यहाँ है किसीका कोई नहीं, पर राग लगाये हुए है नाता। हैं अत्यन्त भिन्न परिजनादिक स्त्री अथवा पुत्र अथवा कोई भी हो, पर राग बड़ा विकट लग बैठता है। यहाँ है किसीका कुछ नहीं, देखो यहाँ आये हैं आप लोग तो आपके साथ कुछ भी तो चिपटा हुआ नहीं आया। आप यहाँ भी अकेले ही हैं, पर रागका बोझ ऐसा लाद रखा है कि उतारा नहीं उतर पाता। बोझ भी किसीपर कुछ नहीं लदा है, पर कल्पनायें बनाकर अपने आपपर बहुत बड़ा बोझ बना लिया है। तो ये संसारी प्राणी इस बोझसे दबे चले जा रहे हैं जिसके कारण इनका उपयोग उठ ही नहीं पाता। प्रभुके गुणस्मरणकी उत्सुकता नहीं जगती। जरा भी यह बात चित्तमें नहीं आती कि यह सब है क्या? यह विषयकषायोंकी गंदगी इन मोही अज्ञानी प्राणियोंमें भरी है जिसके कारण ये अपने हृदयमें प्रभुको विराजमान नहीं कर सकते।

संस्थानविचयधर्मध्यानमें पार्थिवी, आग्नेयी, मारुती व वारुणी व तत्त्वरूपवती धारणायें हैं, उसके पश्चात् जब अपने आपको इतना विशुद्ध तक सकें कि वहाँ रूपस्थ ध्यान चल रहा है, तो जो अपने आपके सर्वविभावोंसे सर्वसमागमोंसे न्यारा केवल ज्ञानपुञ्ज निरखता है वह है प्रभुकी भक्तिका वास्तविक पात्र। तो ऐसा ज्ञानी यहाँ प्रभुके ध्यानमें गुणोंका चिन्तन कर रहा है। प्रभु कैसे हैं कि इन्द्रियविषयरूपी सर्पके लिए गरुड़की तरह हैं। सर्प गरुड़का बैरी होता है। जहाँ गरुड़ रहे वहाँ सर्प नहीं रह सकते हैं, वे सब अपने-अपने बिलोंमें छिप जाया करते हैं, उन सर्पोंका पता नहीं रहता। तो हे प्रभो! जहाँ आप हैं वहाँ इन्द्रियविषयों का कहाँ प्रवेश हो सकता है?

कविकी भाषामें एक बार कामदेव और स्त्री रति दोनों चले जा रहे थे। कामदेव कहते हैं कामके संस्कारको, विकारको। इस काममें देव क्यों लगा दिया? 'काम नाममें देव लगाया किसने? यह तो प्रधान उनमें हिंसक हैं जितने।' जितने हिंसक जगतमें हैं उन सबका प्रधान मुखिया हत्यारा यह काम विकार है। इसको लोग कामदेव कहते हैं। यह एक अलंकार है, और उसीका, स्त्रीविषयक काम हो तो नाम रति है। तो ये रति और कामदेव दोनों घूमने चले जा रहे थे तो एक प्रभु जिनेन्द्रदेव ध्यानमें लीन विराजमान थे। तो प्रभुके बारेमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

रति और कामदेवकी बातचीत चलती है—कोऽयं नाथ जिनो भवेत्तव वशी, ऊं हूं प्रतापी प्रिये ! ऊं हूं तर्हि विमुञ्च कातरमते, शौर्यावलेपक्रियां । मोहोऽनेन विनिर्जितः प्रभुरसौ तत्किंकराः के वयं, इत्येवं रतिकामजल्पविषयो देवो जिनः पातु वः ।। रति पूछती है—नाथ ! यह कौन है ? तो कामदेव कहता है कि ये जिन हैं, जिनेन्द्र हैं ।....अच्छा यह भी तुम्हारे वश हैं या नहीं ?....ऊं हूं, नहीं हैं वशमें ।...ऊं हूं, तो हे कामदेव ! अब तू अपनी वीरताकी शानको छोड़ दे, अब मुझसे न कहा कर कि मैंने सारे जगतको वश कर लिया है । तो काम शिथिल होकर, अपनी गल्तीसी मानकर बहुत नम्र वचनोंमें कहता है—क्या करूँ ? जिनेन्द्रने जब मोह को जीत लिया है तब हम किंकर लोग इनका क्या करें ? जब मोहभाव आता है तो कुरूप भी हो अपने घरका कोई तो भी उसके प्रति रागभाव होनेके कारण वह उसे सुन्दर जंचता है, और जब उससे राग हटता है तो वह संकल्प करनेको तैयार हो जाता है कि अब तो इसका मुख देखना भी पाप है । तो इस मोहकी बड़ी विचित्र लीला है । हे प्रिये रति ! इन जिनेन्द्रने इस मोहको जीत लिया है फिर हम किंकर इनका क्या करें ? ऐसी बातचीत रति और काम जिसके विषयमें कर रहे हों ऐसे जिनेन्द्र प्रभु हम आप सबकी रक्षा करें । गुणियोंके गुणोंका स्मरण हमारी रक्षा करता है । तो ये प्रभु विषयरूपी सर्पके लिए गरुड़के समान हैं ।

ये प्रभुसमस्त अभ्युदयके मंदिर हैं, समस्त अभ्युदयके ये घर हैं । अरहंत प्रभुके अब कौनसा वैभव बाकी रहा ? आप कहेंगे कि उनके पास मकान नहीं, मोटरकार नहीं । हाँ न हों, लेकिन ये तीनों लोकोंके इन्द्र नौकरसे बनकर इनके चरणोंमें जो गिर रहे हैं यह क्या उस वैभवसे कम वैभव है ? और उनके क्षुधा तृषा भी नहीं है तो उनके साधन क्या बनायें ? जिसके कोई फोड़ा फुंसी ही न हो वह मलहम पट्टी करता फिरे ऐसा भी कोई करता है क्या ? यदि कोई ऐसा करे तो उसे तो लोग बेवकूफ (पागल) कहेंगे । तो जब प्रभुके क्षुधा तृषा आदिक रोग ही नहीं हैं तो उनको उनके साधन बनानेकी जरूरत ही क्या है ? तो प्रभुका कुछ कम वैभव है क्या ? अरे उनके पास बाह्य वैभव तो लोकोत्तम है ही, किन्तु अन्तरङ्ग भी असीम ज्ञानका वैभव है । यहाँ तो लोग थोड़ी दूर भी जायें तो कितनी ही चीजें लादकर ले जानी पड़ती हैं, कुछ छूट जाती हैं, कुछ चिन्ता उत्पन्न कर देती हैं, पर प्रभुका अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्दका वैभव सदा उनके साथ रहता है । तो वे प्रभु सर्व अभ्युदयोंके मंदिर हैं ।

दुःखी प्राणियोंके लिए प्रभुका हस्तावलम्बन—प्रभु दुःखरूपी समुद्रमें गिरने वाले प्राणियोंको हस्तावलम्बन देने वाले हैं । अब भी बहुतसे समझदार लोग जब किसी बातसे दुःखी हो जाते हैं तो देवालयमें प्रभुके समक्ष बैठकर उनका स्तवन करनेमें रत हो जाते हैं, ऐसी श्रद्धा वाले लोग अब भी देखे जाते हैं । जिस समय उनके गुणोंके स्मरणमें उपयोग है उस समय तो उनको शान्ति है, निराकुलता है । जो पुरुष अनेक कल्पनाओंसे व्याप्त है, जिस

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर कुछ संकट छाये हैं ऐसे पुरुषको आप कहाँ बैठलवा देंगे कि उसको शान्ति मिले ? जहाँ बैठालोगे वहीं और कुछ न होगा अधिकसे अधिक कृपा होगी तो कोई उसको सहानुभूति प्रकट कर देगा—हाय बड़ा दुःख है, कैसा था अमुक और छोड़कर चला गया। ये बेचारे यहाँ रह गए। बाहरी सहानुभूति, न भी कुछ ख्याल आता हो तो ख्याल कराकर लोग उसके दुःखको कहो और भी बढ़ा दें, तो उस दुःखी पुरुषको आप कहाँ बैठालोगे, जगह तो बतावो ? वह स्थान है प्रभुके चरणोंका अथवा ज्ञानी गुरु संतोंके चरणोंका स्थान है। इसके सिवाय अन्यत्र कहाँ बैठावोगे जो उसे शान्ति मिले ? ये प्रभु तो सर्वोत्कृष्ट हैं। दुःखसमुद्रमें गिरने वाले प्राणियोंको हस्तावलंबन देने वाले हैं। वे प्रभु हम आपसे कुछ भी नहीं बोलते, फिर भी उनका बड़ा सहारा है, उनके गुणस्मरण कर हम आप भी अपने आप ही गद्‍गद हो जाते हैं।

मृगेन्द्रविष्टरारूढं मारमातङ्गघातकम्।
इन्दुत्रयसमोद्दामच्छत्रत्रयविराजितम् ॥२०३१॥

प्रभुका मूलरूप---यह प्रभु सिंहासनपर आरूढ़ हैं। प्रभुका ध्यान करनेके लिए कुछ आकार प्रकारकी कल्पनाएँ आ जाना स्वाभाविक बात है। प्रभुको रूपस्थध्यानमें लानेके लिये हम कहाँ चित्त ले जायें ? तो समवशरणमें चलिये, उसके बीच गंधकुटी हैं, उसपर सिंहासन है। उस सिंहासनपर विराजमान हैं ये प्रभु। सिंहासन नाम है श्रेष्ठ आसनका। यहाँ सिंहका अर्थ उस हिंसक महापातकी सिंहसे नहीं लेना है, किन्तु सिंहका अर्थ श्रेष्ठसे लेना है। अब वह श्रेष्ठ आसन कैसा है ? चमकती हुई मणिरत्नोंसे खचित बड़े सुन्दर आकारका वह श्रेष्ठ आसन है उसे सिंहासन बोलते हैं, उसपर आरूढ़ हैं, यों निरखो प्रभुको। वे प्रभु कामहस्तीके घात करने वाले हैं। अथवा कामरूप चाण्डालके वे घातक हैं, पूर्ण निष्काम हैं, और जिनके ऊपर चंद्रमाके समान तीन छत्र विराज रहे, जो दुनियामें यह भासित कर रहे हैं कि ये प्रभु तीन लोकके अधिपति हैं। यहाँ सोचा जा रहा है प्रभुका स्वरूप। कहीं धोती लंगोटी पहिने हो, चद्दर लटकाये हुए यहाँ वहाँ आता जाता हो, घर घर फिरता हो, भक्तोंसे कुछ पूछता हो, यह स्वरूप प्रभुका नहीं है। आकाशमें सिंहासनपर आरूढ़ हैं, तीन छत्र जिनके सिरपर शोभायमान हो रहे हैं, जो सर्वसे विरक्त निष्काम हैं। फिर भी जो कोई लोग उन प्रभुकी भक्तिमें पढ़ते हैं वे सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं और जो उनकी भक्तिसे विमुख रहते हैं वे इन दुःखोंमें ही पड़े रहते हैं। इस प्रकार प्रभुके स्वरूपका यह ध्यान कर रहा है।

हंसालीपात लीलाढ्यचामरव्रजवीजितम्।
वीततृष्णं जगन्नाथं वरदं विश्वरूपिणम् ॥२०३२॥

मूर्त कायमें विराजमान प्रभु के आन्तरिक गुणोंका स्मरण—सिंहासनपर आरूढ़ तीन छत्र जिसके सिरपर शोभायमान हैं और जिसके चारों ओर यक्ष चमर ढोल रहे हैं, ऐसे मुद्रा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मंडलमें विराजमान प्रभुके गुणोंका स्मरण करो। वे चमर बड़े स्वच्छ हैं और वे दुनियाको यह बता रहे हैं कि देखो जैसे कि हम भगवानके चरणोंमें गिरते हैं तो हम बहुत जल्दी उत्थान कर लेते हैं, चमर ढोले जाते हैं ना, इसी प्रकार तो वे चमर दुनियाको यह बताते हैं कि जो भगवानके चरणोंमें आयगा उसका उद्धार होगा, वह ऊँचे बढ़ेगा। इस प्रकार दुनियाको प्रभु शासनका उपदेश देते हुए ये शुद्ध चमर प्रभुके अगल-बगल ढोले जा रहे हैं। उन चमरोंके बीच वे प्रभु शोभायमान हैं जिनके कोई तृष्णा नहीं रही, जगतके जो स्वामी हैं, जो कुछ भी जो चाहता है उस सबके वे देनहार हैं। देते वे किसीको कुछ नहीं हैं पर उनकी जो भक्ति करता है उसके पुण्यरस बढ़ता है और स्वयं ही उसके समस्त रस सिद्ध होते हैं। वे प्रभु विश्वरूपी हैं और अपने आपके प्रदेशोंमें विराजमान हैं, लेकिन उनका ज्ञान देखिये तो कितने आकारोंसे चित्रित है, जितना कि सारा विश्व है वह सब उनके ज्ञानमें ज्ञेयाकार है तो वे विश्वरूपी बन गए हैं। ऐसे प्रभुका यहाँ ज्ञानी भक्त रूपस्थध्यानमें ध्यान कर रहा है।

दिव्यपुष्पानकाशोकराजितं रागवर्जितम्।
प्रातिहार्यमहालक्ष्मीलक्षितं परमेश्वरम् ॥२०३३॥

प्रभुके निकट दिव्यपुष्पवर्षा व दुंदुभिनादका अभिचार—सर्व संकल्प विकल्परूपी संकटोंसे मुक्त हुआ परमात्मा कहाँ विराजमान रहता है, किस प्रकार रहता है? उसका कुछ वर्णन इस प्रसंगमें चल रहा है। ये भगवान कुछ ऊपर आकाशमें विराजमान रहते हैं, जहाँ देवेन्द्रोंके द्वारा बड़ी भारी शोभा बनायी जाती है और वहाँ दिव्य पुष्पोंकी वर्षा देव लोग किया करते हैं। फूलोंको जो लोग बरसाते हैं तो किस तरह बरसाते हैं? फूलके ऊपर जो बन्धन होता है जिसमें फूल लगता है, वह फूल बरसाते समय पहिले तो ऊपर रहता है, फूल नीचे रहता है, किन्तु ऊपरसे नीचे आने तक वह फूलका बन्धन नीचे हो जाला और फूलका विकास ऊपर हो जाता। तो यह फूल जब भगवानके चरणोंके निकट गिरा तो फूलके बन्धन नीचे हो गए। ये गिरते हुए फूल लोगोंको यह शिक्षा दे रहे हैं कि जो भगवानके चरणोंके निकट आयगा उसके बन्धन नीचे हो जायेंगे, शिथिल हो जायेंगे, टूट जायेंगे। ऐसी शिक्षा देते हुए फूल जहाँ बरस रहे हैं ऐसे प्रभुके स्थानपर समय-समयपर दुंदुभिकी ध्वनि निकलती है। ढोल से भी बहुत बड़ी ध्वनि वाली वह दुंदुभि है जिसमें बड़ी गम्भीर ध्वनि निकलती है। जैसे कि कहीं कहीं मंदिरके दरवाजेपर नगाड़े रखे होते हैं, उन नगाड़ोंकी ध्वनिसे भी अधिक व्यापक व गम्भीर ध्वनि उन दुंदुभियोंकी होती है। तो वे दुंदुभि बजकर लोगोंको यह सम्बोध रही हैं कि अरे संसारके दुःखी प्राणियों! तुम कहाँ भटक रहे हो? समस्त संक्लेश जहाँ दूर हो सकते हैं, जहाँ आत्माकी अनुपम लक्ष्मी प्रकट हो सकती है वे प्रभु जहाँ विराजे हैं वहाँपर यहाँ आवो, यहाँ आवो—इस प्रकारका सम्बोधन करते हुए मानो वह दुंदुभि बज रही है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

दिव्य अशोक तरुके निकट विराजमान वीतराग परमेश्वरका ध्यान—जहाँपर वे प्रभु विराजे हैं वहाँ बहुत सुन्दर अशोक वृक्ष होते हैं। यहाँ ही अशोक वृक्षोंके निकट पहुंचते ही उपयोग बदल जाता है, मन बहल जाता है तो फिर जिन अशोक वृक्षोंके पास प्रभु विराजे हैं वहाँ की महिमाका तो कहना ही क्या है ? जो प्रभु अशोक वृक्षोंके निकट विराजे हैं उनके चरणोंके निकट जो आयगा वह अशोक बन जायगा। वे प्रभु वीतराग हैं। जैसे बच्चे लोग कहानी सुनाते हैं तो दूसरे बच्चे हूंका देते हैं। उसमें उन हूंका देने वालोंके राग सिद्ध होता है, पर वे प्रभु किसीकी भी बात नहीं सुनते, किसीसे बोलते भी नहीं, इससे उनमें राग नहीं है, वे तो अपने ज्ञानानंदमें विराजमान होते हैं। हाँ जो कभी प्रश्न करता है प्रभुकी एक दिव्य-ध्वनि सुनकर अपने आप शंकाका समाधान पा जाता है, अथवा वहां विराजे जो उच्च गणेश हैं, उन गणेशोंसे वह अपनी शंकाका समाधान कर लेता है। प्रभ वीतराग हैं ऐसे प्रतिहार्य महालक्ष्मीसे शोभानमान परमेश्वरका बन्दन कीजिए। वे परमेश्वर हैं। जिसे लोग अपना रक्षक समझते हैं उसे ही तो ईश्वर मानते हैं। ये प्रभु संसारके सर्वजीवोंके रक्षक हैं। यह परमात्मा प्रभु अरहंतदेव परमईश्वर हैं। परम कहते हैं—उत्कृष्टको। जहाँ उत्कृष्ट लक्ष्मी अर्थात् ज्ञान विराजमान हो उसे परम कहते हैं और जो परम अर्थात् उत्कृष्ट ज्ञान सम्पन्न आत्मा है उसे परमात्मा कहते हैं। ऐसे उन परमेश्वरका ध्यान करो। यह रूपस्थ ध्यानमें ध्यानी अपने लिए चिन्तन कर रहा है।

नवकेवललब्धिश्रीसंभवं स्वात्मसंभवम्।
तुर्यध्यानमहावह्नौ हुतकर्मेन्धनोत्करम् ॥२०३४॥

स्वतःसिद्ध, परमश्रीशोभित निष्कलङ्क प्रभुका ध्यान—प्रभु केवल लब्धियोंकी श्री की उत्पत्तिके स्रोत हैं। प्रभुका ज्ञान समस्त लोकालोकका जाननहार है और उस समस्त लोकालोकके जाननहार आत्माको जो झलकमें लिए रहते हैं ऐसे प्रभुके निर्मल सम्यक्त्व उत्पन्न हुआ है, उस सम्यक्त्वका कभी विनाश न होगा। वे प्रभु आत्मामें लीन हो चुके हैं, एक रस निष्काम हो चुके हैं ऐसे वे सदा काल रहेंगे, तभी तो भक्तजनोंके वे आदर्श कहलाते हैं। कितना महादान है प्रभुका। जो पुरुष उनका स्मरण करते हैं उनको सर्व सुख समृद्धियां प्राप्त होती हैं। लाभ भोग उपभोग समस्त उन्हें अपने आपमें उत्कृष्ट हैं, ऐसे अनन्त शक्तिमान प्रभु हैं और उन प्रभुसे इन सब गुणोंकी उत्पत्ति हुई है। अच्छा बतावो—कहाँसे उत्पन्न हुए ये प्रभु ? अच्छा, यह बतावो कि किसी पाषाणका टुकड़ा है और कारीगरको उसमेंसे कोई प्रतिमा बनानी है तो कारीगरने उस प्रतिमाको कहाँसे बनाया है ? कौनसी चीज लाकर जोड़ा ? कारीगरने तो उस प्रतिबिम्बको ढांकने वाले जो अगल-बगलके पाषाण थे उनको दूर किया। प्रतिबिम्ब जो वहाँ विराजमान था, प्रकट हो गया। प्रतिबिम्ब रूपमें तो न था विराजमान,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर जो अवयव प्रतिमाके प्रकट हुए हैं वे सब वहाँ थे या नहीं। तो जैसे वह प्रतिबिम्ब अपने आपमें उत्पन्न है इसी प्रकार वह भगवान भी जो निर्दोष चैतन्यके परमविकास हैं, वे अपने आपमें उत्पन्न हुए हैं। किसी दूसरेसे कुछ आया नहीं है। शुक्लध्यान रूपी महान अग्निमें ये कर्मईंधन भस्म हो जाया करते हैं। एतदर्थ ध्यान क्या था उनके ? अपना जो एक विशुद्ध स्वरूप है उस स्वरूपका आश्रय किया था उन्होंने। यह ध्यान था उनका उत्कृष्ट। जहाँ पापकी तो बात क्या, पुण्यकी भी जहाँ प्रवृत्ति नहीं है ऐसे परमध्यानके द्वारा उन्होंने कर्मईंधनको जला डाला। ऐसे प्रभुका यह ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुष ध्यान करता है।

रत्नत्रयसुधास्यन्दमन्दीकृतभवश्रमम्।
वीतसंगं जितद्वैतं शिवं शान्तं सनातनम् ॥२०३५॥

परम तीन रत्न—रत्नत्रयकी मूर्तिरूप अमृतके स्यंदनसे, उस अमृतकी धाराके स्वादसे जिसने भवके श्रमको मंद कर दिया है ऐसे वे प्रभु हैं। तो रत्नत्रय क्या चीज है ? आत्माकी सच्ची श्रद्धा एक रत्न, आत्माका शुद्ध ज्ञान दूसरा रत्न और आत्मामें रमण करना, मग्न होना यह तीसरा रत्न। रत्न नाम काहेका ? सारका। सारको भी रत्न कहते हैं। यहाँ रत्न-त्रयका सारमय रत्न लेना, कहीं पत्थरके हीरा, जवाहरात रत्नकी बात न लेना। इनका नाम रत्न कैसे पड़ा ? तो रत्न तो यह ही कहलाता था, जो सारभूत हो उसे रत्नत्रय कहते हैं, यही रत्न कहा जाता रहा, पश्चात् इस श्रद्धान ज्ञान और चारित्र रत्नत्रयको तो लोग भूल गये पर रत्न शब्दको न भूले। तो जो उन्हें सार लगा संसारमें उसका नाम रख दिया रत्न। लेकिन यह रत्न सार है कहाँ ? जहाँ भी ये रत्न पाषाण जाते वहाँ ही मनुष्योंके चित्तको मलिन कर देते।

दो भाई थे। वे परदेश गये धन कमाने। खूब धन कमाया। और जब घर आने लगे तो करीब एक एक लाखके दो रत्न खरीद लिए। रत्न बड़े भाईके हाथमें थे। समुद्रका रास्ता था। जब नौकामें बैठे तो बड़ा भाई सोचता है कि सारा परिश्रम तो मैंने किया, घर जाकर एक रत्न भाईको भी देना पड़ेगा, सो यहाँ एक धक्केका ही तो काम है, समुद्रमें गिर जायगा फिर तो ये दोनों रत्न हमींको मिल जायेंगे। फिर वह झट सम्हला, अरे क्या मैंने अनर्थका काम सोच डाला, उसने अपने छोटे भाईसे कहा कि हम तो ये रत्न अपने पास न रखेंगे, इन्हें तुम अपने पास रख लो। जब छोटे भाईने अपने पास रख लिया तो उसने भी वही बात सोची जो बड़े भाईने सोचा था। उसने भी उन्हें अपने पास रखनेसे इन्कार कर दिया। खैर, किसी तरह घर पहुंचे तो मां को वे दोनों रत्न दे दिये। अब माँ सोचती है कि इन रत्नोंको तो ये लड़के हमसे छुड़ा लेंगे, हैं ये बड़े कीमती हैं, सो ऐसा करें कि भोजनके साथ जहर मिलाकर इन्हें खिला दें, ये मर जावेंगे तो ये दोनों रत्न हमें मिल जायेंगे। फिर वह मां सम्हलती है और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विचार कहती है—ओह ! मैंने यह क्या सोच डाला, उसने भी अपने पास उन रत्नोंका रखना स्वीकार नहीं किया। बादमें दोनों भाइयोंने उन रत्नोंको बहिनके पास रखवा दिया। अब बहिनके मनमें भी वैसा ही खोटा विचार आया। बादमें वह बहिन भी सम्हली, उसने भी उन रत्नोंको अपने पास रखना स्वीकार नहीं किया। चारोंने अपने मनमें आयी हुई बात रखी, बादमें सबने यही सलाह की कि इन रत्नोंको समुद्रमें फेंक दिया जाय, इस अमीरीसे तो वह गरीबी ही भली है। उन्होंने वैसा ही किया तब शान्ति मिली। तो इन पाषाण रत्नोंको लोग विपरीत बुद्धिके कारण रत्न कहने लगे, रत्न तो दर्शन ज्ञान और चारित्रको कहते हैं, जिसमें आत्माको बड़ा सन्तोष होता है, जहाँ आकुलताका लेश नहीं रहता ऐसे आत्मदर्शन, आत्मज्ञान और आत्मामें मग्न होना यही है सार। इस कर्तव्यके बलसे प्रभुने कर्मईंधन नष्ट किया और सारे संसारके खेदको दूर कर दिया।

ये प्रभु निःसंग हैं, कैसे हो किसी भी चीजका संग। दूसरी कोई वस्तु उनसे छुई हुई नहीं है। केवल ज्ञानपुञ्ज हैं, रागद्वेषका भी संग नहीं है, कर्मोंका भी संग नहीं है, ऐसे प्रभु असंग हैं। उनके कोई बाह्य परिग्रह तो है ही नहीं, और देखो तो कितना वैभव है प्रभुके निकट ? कैसा सिंहासन, कैसे चमर, कैसी शोभा, बड़ा वैभव। वे प्रभु उस वैभवके बीच सिंहासनसे ४ अंगुल ऊपर विराजे हैं, वे प्रभु इस वैभवसे अछूते हैं। प्रभु तो उस वैभवको छूते भी नहीं हैं। वह वैभव मानो प्रभुको छूनेके लिए ऊपरसे गिर रहा है। तीन जो छत्र प्रभुपर ढोले जा रहे हैं वे मानो लक्ष्मी रूप हैं जो कि प्रभुको छूनेके लिए गिरे, पर ऊपर ही अटक गए, प्रभुको छू न सके, ऐसे निःसंग हैं वे प्रभु। जिन्होंने द्वैतके विकल्पोंको जीत डाला है ऐसे शिव शान्त प्रभुका ध्यान भक्तजन करते हैं।

प्रभुचर्चाकी उमंग—आप सोचते होंगे कि यह चर्चा बहुत दिनोंसे चली आ रही है, अब तो इसमें रुचि नहीं रही। तो ठीक है, आप बड़ी अच्छी बात सोचते हैं। जो बात पुरानी हो जाय, बहुत दिनोंकी हो जाय उसमें प्रीति न करना चाहिए, उसमें रुचि भी न जगना चाहिए। यदि पुरानी बात जानकर कोई रुचि हटा रहा हो तो हम तो उसकी तारीफ करेंगे, समर्थन करेंगे कि तुम बहुत अच्छा कर रहे हो। मगर जो बहुत पुरानी चीज है यह शरीर और उससे भी पुराना है यह कर्मजाल, कर्मफल परंपरा, जो कार्माण रूपमें अनादिसे परम्परा से चल रहा है। उससे रुचि हट जाय, अच्छी बात होगी, वह तो वंदनीय होगा। ऐसा भाव बनता है कि पुरानी बातमें प्रीति न करना चाहिए, यह तो उत्तम है, पर इस बातपर अमल आ जाय तो बहुत बढ़िया बात होगी। इस चर्चाके प्रसंगमें यह भी तो ध्यानमें लायें कि हम रोज-रोज कितने अपराध करते हैं, कितना विषय कषायोंमें रत रहते हैं, कितनी परिणामोंमें मलिनता रखते हैं, तो उसकी औषधि तो ये प्रभु भगवान हैं। यदि रोज-रोज मलिनताके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

परिणाम रखते हैं तो यह प्रभुभक्तिकी ही औषधि हमें रोज चाहिये या नहीं ? तो इसमें अरुचि करनेका कोई प्रसंग नहीं है। हम जिस किसी भी प्रकार उस ज्ञानपुञ्ज प्रभुस्वरूपको निरखें या अपने आपमें बसे हुए उस विशुद्ध ज्ञानस्वरूपको निरखें, बस करनेके लिए, उद्धारके लिए काम तो यही पड़ा है। जिस प्रकारसे बन सके ये ही तो दो काम किए जाने हैं।

अर्हन्तमजमव्यक्तं कामदं कामनाशकम्।
पुराणपुरुषं देवं देवदेवं जिनेश्वरम् ।।२०३६।।

प्रभुकी अजस्वरूपता—वे प्रभु अज हैं, किसीसे जन्मे नहीं हैं, स्वयंभू हैं। अज तो हम आप भी हैं, किसीसे जन्मे नहीं हैं। जितने भी पदार्थ हैं वे सब पदार्थ अज हैं। लेकिन हमारी तो यहां गप्प ही गप्प है और प्रभुमें चूँकि वह विशुद्ध पर्याय प्रकट हो गई है, इसलिए वहाँ अजकी तारीफ की जा रही है। वे प्रभु धन्य हैं जो इस धर्मकी बातपर चलनेका, इसे अमलमें लानेका प्रयत्न करते हैं, और जिन्हें आत्मकल्याणकी भावना दृढ़तासे हो गई वे ऐसा करते ही हैं। घरमें रहकर भी वे उदासीन चित्तसे काम करते हैं। जरा-जरासी देरमें गुरुवोंके संगमें रहना, गुरुके निकट पहुंचना, पूजन आदिकमें लगना, यही बातें उसके चित्तमें रहती हैं। ज्ञानी पुरुषोंके कार्योंको देखकर अज्ञानी अचरज करते हैं, सो ठीक ही है। उन्हें अपना बदला तो चुकाना ही चाहिए, क्योंकि ज्ञानियोंको भी तो अज्ञानियोंके कार्योंको देखकर अचरज होता है। वेदान्तकी टीकामें एक दृष्टान्त दिया है—एक पुरुष गुरुके पास पहुंचा, बोला—महाराज ! मुझे आत्माका ज्ञान दे दीजिए। गुरुने कहा—जावो उस नदीके किनारेपर मगर रहता है, उससे आत्माका ज्ञान लेना, वह बहुत ज्ञानी है। पहुंचा वह उस मगरके पास। तो कहा—हे मगर-राज ! मुझे आत्मज्ञान दीजिए। तो मगर बोला—ठहरो ठहरो भाई, तुम्हें हम अभी ज्ञान देंगे। मैं बहुत प्यासा हूं, तुम्हारे पास लोटा डोर है, तुम उस कुवेंसे जल भर लावो, मैं अपनी प्यास पहिले बुझा लूं फिर तुम्हें आत्माका ज्ञान दूँगा। तो इस बातको सुनकर वह पुरुष बोला—अरे मुझे तो गुरुने आपको समझदार समझकर आपके पास भेजा था, पर आप तो बड़े मूढ़ हो। अरे आप स्वयं अथाह जलमें डूबे हुए हैं और फिर भी कहते हैं कि मुझे उस कुवेंसे एक लोटा जल भरकर ला दो, उसे पीकर हम अपनी प्यास बुझावें। तो मगर बोला—बस ऐसी ही मूढ़ता तो तुम्हारी है। तुम स्वयं ज्ञानस्वरूप हो, अथाह ज्ञानमें डूबे हुए हो, फिर भी ज्ञानकी भीख मांगते हो।

अपनेमें अजस्वरूपकी खोज—अहा कितना सुगम है निज आत्मतत्त्व, पर उसे ये मोही नहीं जान पा रहे। ये मोही जीव कैसे भ्रममें पड़े हुए हैं कि ये अपने आपके स्वरूपको नहीं निरख पाते। तो अपना ही स्वरूप जब अपनी दृष्टिसे ओझल है तो हम कहां अज हैं ? कल्पना तो किए हुए हैं कि हमने जन्म लिया, अब हम मरण करेंगे। मरनेकी बात कुछ

http://sahjanandvarnishastra.org/

समझमें आ जाय, शरीरके सुन्न-सा हो जाय तो दिल कांपने लगता है, घबड़ाने लगते हैं— ओह कहीं मेरा मरण न हो जाय ? तो फिर कहाँ अज रहे ? वह तो इस देहमें दृष्टि रखकर इस बातसे घबड़ा जाता है कि कहीं मेरा मरण न हो जाय, जिसके चित्तमें ऐसी बात आ रही हो कि लो यह तो मैं पूरा ज्ञानमय पुञ्ज ही हूं। यहाँसे जहाँ जाऊँगा वहीं रहूंगा, मेरा तो कुछ छूटता ही नहीं है। जो मेरा स्वरूप है, मेरा धन है वह सबका सब मेरे साथ जायगा। यहाँ दुःख किस बातका ? ऐसी बात आती है तो समझो कि हम अज हैं।

अव्यक्त, कामद, कामनाशक प्रभुका ध्यान—ये प्रभु अव्यक्त हैं, किसी अन्य पुरुषके लिए व्यक्त नहीं हैं। कामद हैं अर्थात् भक्ति करने वाले पुरुष जो कुछ चाहते हैं उन सबकी सिद्धि होती है। भक्तिमें पुण्यरस बढ़ता है, पापरस घटता है, उससे सब चाही हुई बातें प्राप्त हो जाती हैं और शुद्ध भक्तिमें सर्व अभीष्ट शांत हो जाते हैं, प्रभु वहाँ कुछ देते नहीं। यह सब अपने आपके ही प्रभुका झुकाव है। ये प्रभु कामनाशक हैं, कामविकारके ही विनाशक क्या, सभी विकारोंके विनाशक हैं। यह काम तो जितने हिंसक हैं उन सबमें प्रधान हिंसक है। यह काम मुझे इस तत्त्वज्ञानरूपी समुद्रसे निकालकर बाहर फेंक देता है। ढीमर लोग क्या करते हैं ? समुद्रसे मछली बाहर निकालकर फेंक देते हैं। तो यह काम ढीमरसे भी अधिक हिंसक है। इसी प्रकारसे यह कामविकार हमें इस तत्त्वज्ञानरूपी समुद्रसे निकालकर बाहर फेंक देता है। और वे हिंसक मछलियोंको भाड़में भून दें तो यहाँ यह काम संतापमय है जिससे तृप्त होकर इसे कुछ सुध बुध भी नहीं रहती। ऐसे संतापमें फेंक दे, ऐसे भी विकट कामविकारको ये नष्ट करने वाले हैं। जब सीताका चित्र नारदने भामण्डलके आगे डाल दिया, भामंडल भाई था सीताका, पर उसे पता न था, जन्मसे ही वह बाहर गया था। यह तो विद्याधरोंके यहाँ पले थे, पर चित्रको निरखकर भामण्डल इतना बेसुध हो गया कि भूख प्यास की भी परवाह नहीं, पागलसा फिरने लगा। आखिर अभिभावकोंको विवश होकर इतना तक कहना पड़ा कि जावो तुम सीताके पास और उससे विवाह करो। वह जब चला इस लक्ष्यको लेकर और जब वह किसी पूर्वभवके स्थानपर पहुंचा तो एकदम स्मरण हो गया, अहो वह तो पवित्र आत्मा मेरी बहिन है, सो ही विरक्त हो जाता है। पर एक बात यह तो देखो कि ऐसे ऐसे पवित्र आत्मावोंको भी इस कामने विह्वल कर दिया। ऐसा यह प्रधान विकारी है। उस कामविकारके भी नष्ट करने वाले ये प्रभु हैं। किया नष्ट पहिले तब यह प्रभुता उन्होंने पायी। ऐसे पुराणपुरुष देवाधिदेव रागद्वेष जीतने वाले उस सर्वप्रमुख ऐसे भगवानको, परमात्माको हमारा वंदन हो। बारबार यह ज्ञानी उस शुद्ध आत्मापर दृष्टि देता है जो संसारके संकटोंसे परे हैं। रूपस्थध्यानमें उस ही पवित्र रूपका, ज्ञानरूपका ध्यान किया जा रहा है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विश्वनेत्रं जगद्वन्द्यं योगिनाथं महेश्वरम् ।
ज्योतिर्मयमनाद्यनन्तं त्रातारं भुवनेश्वरम् ॥२०३७॥

विश्वनेत्र जगद्वन्द्य प्रभुकी उपासना—संसारके समस्त क्लेशोंसे पार हो जाने वाले परमात्म प्रभु समस्त विश्वके नेत्र हैं अर्थात् यह जगत उनके स्वरूपके दर्शनसे अपनी शिवयात्रा को कर लेता है अर्थात् अशान्तिसे हटकर शान्तिके पदमें पहुंच जाता है, अतएव वह प्रभु समस्त जगतकी आँख हैं। जैसे कोई अंधा पुरुष किसी बालकके साथ पैदल चले तो वह कहता है कि मेरी आँख तो यह बालक है, स्वयं इतना आसक्त है कि चल नहीं सकता। उसे जो दिशा बतलाने लगे वही उसका नेत्र है, इसी प्रकार यह विश्व जो अनेक संकटोंसे फंसा हुआ है इसकी इस असार बुद्धिको निखारनेमें कारण प्रभुकी वाणी है। यदि वस्तुस्वरूपका निर्णय न हो पाता जो कि प्रभुकी दिव्यध्वनिकी परम्पराकी देन है, तो निर्णय बिना ये प्राणी कहाँ अविनश्वर आनन्दमय आत्मस्वभावकी ओर लग पाते। तो प्रभु विश्वनेत्र हैं और समस्त जगतके द्वारा वंदनीय हैं। तीनों लोकके प्राणी, वही हुआ जगत। उस समस्त जगतके द्वारा वंदनीय हैं। जब देव लोकके देवेन्द्रोंने आकर प्रभुकी वंदना की तो उसमें सारा देवलोक आ गया। जब मनुष्योंके इन्द्र चक्रवर्तियोंने प्रभुकी वन्दना की तो उसमें सारा मनुष्यलोक आ गया, इसी प्रकार जब तिर्यञ्चोंके इन्द्रने प्रभुकी वन्दना की तो उसमें सारे तिर्यञ्च भी आ गए। जब अधोलोकके इन्द्र भवनेन्द्र व्यंतरेन्द्रोंने वंदना की तो पातालवासी आ गये। यों तीनों लोकोंके द्वारा ये प्रभु वंदनीय हैं। जैसे किसी देशमें राष्ट्रपतिका चुनाव जनता द्वारा नहीं किया जाता, किन्तु जनता द्वारा भेजे गए जो सदस्य हैं वे राष्ट्रपतिका चुनाव करते हैं। तो उन सदस्यों द्वारा चुना हुआ राष्ट्रपति जनता द्वारा चुना हुआ माना जाता है, इसी प्रकार जब तीनों लोकके इन्द्रोंने प्रभुकी वन्दना की तो उसमें तीनों लोकोंके समस्त प्राणी आ गए। तो ये प्रभु समस्त जगतके द्वारा वन्दनीय हैं।

योगिनाथ, महेश्वर प्रभुकी उपासना—ये प्रभु योगियोंके नाथ हैं, आत्मकल्याणके चाहने वाले लोग योगसाधना करते हैं और इस योगके अधिकारी योगी जनोंके ये प्रभु आदर्श हैं। उनका ही ध्यान करके उनके बताये हुए उस ज्ञानपथपर चलकर, उस ज्ञानदृष्टिका आनन्द पा पाकर ये योगी पुरुष आत्मकल्याण करते हैं। ये योगियोंके नाथ है। समस्त ऋषियोंमें सबसे बड़े ऋषिनाथ अप्रकम्प अद्भुत केवलज्ञानीको बताया गया है, सो उन ऋषियोंके भी ये नाथ हैं, और लोकमें ये महेश्वर हैं, महान ईश्वर हैं। जिसको अपने किसी कामके लिए दूसरे की अपेक्षा न करनी पड़ती हो वह ईश्वर कहलाता है। प्रभुका काम क्या ? निरन्तर विशुद्ध ज्ञानरूप परिणमन और निराकुलता रूप परम आनन्दका स्वाद लेते रहना। बस यही काम एक सर्वोत्कृष्ट काम है। तो उस कार्यके लिए प्रभुको किसी दूसरेकी अपेक्षा नहीं करनी पड़ती

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। सांसारिक सुख तो कर्माधीन हैं, विनाशीक सत् हैं, इनके बीचमें तो अनेक दुःख भरे पड़े हुए हैं और ये दुःखके मूल हैं, पापके कारण हैं। ऐसे इन सांसारिक सुखोंसे क्या बड़प्पन है ? प्रभुका आनन्द कैसा है ? जिसमें कोई आकुलता नहीं, कोई क्षोभ नहीं, और परम आल्हादमय है, ऐसे आनन्दको प्रभुने अपने ही द्वारा अपनेमें, अपनेसे, अपने लिए और अपने ही उस अभिन्न परिणमनसे किया, उसमें किसी परकी अपेक्षा नहीं है, अतएव ये प्रभु महेश्वर हैं, ज्योतिर्मय हैं।

अनाद्यनन्त त्वकी प्रभु उपासना—देखिये हम प्रभुको किस शकलमें निरखें जो हमें प्रभुके दर्शन हों ? हम हाथ पैरके रूपमें देखते हैं तो प्रभुके दर्शन नहीं होते। समवशरणमें भी जो लोग प्रभुकी हाथ पैर मुद्राको देखते हैं वे प्रभुके दर्शनको नहीं पहुंचते हैं। वहाँ पर जो ज्ञानज्योतिर्मय रूपसे उनका चिन्तन करता है वही प्रभुदर्शन करता है। वह प्रभु केवलज्ञानपुञ्ज है, विशुद्ध आत्मा है, ज्ञानज्योतिर्मय है। प्रभु अनादि हैं। न उन प्रभुकी कोई आदि है और न अन्त है। यहाँ पर तो जैसे किसीसे झगड़ा शुरू हो गया तो कहते कि देखो अभी झगड़ेकी आदि थी, अब झगड़ेका अन्त हो गया। ऐसे ही यहाँ की सभी बातोंमें आदि बताते हैं और अन्त बताते हैं, पर प्रभुका जो परिणमन है उसकी हम आदि क्या बतावें और अन्त क्या बतावें ? यद्यपि हम आदि बता सकते हैं कि जबसे कर्मक्षय हुए हैं प्रभु मुक्त हुए हैं तबसे उनके आनन्दकी आदि है किन्तु यहाँ तो बहुत लम्बा बताया और जो अनन्तकाल पहिले सिद्ध हुए हैं अबसे उनकी आदिकी कल्पना कौन कर सकता है ? यों भी वे आदि अन्त रहित हैं और परम्परा दृष्टिसे देखो तो यह प्रभुता अनादिसे है और अनन्तकाल तक है। पर जो उनका वर्तमान विशुद्ध परिणमन है उस परिणमनपर दृष्टि दें तो वहाँ क्या आदि अन्तकी कल्पना है ? जो चीज एक समान है उसमें हम कहाँसे आदि और कहाँ अन्त खोजें ? जैसे एक गोल शून्य है ० उसमें कहाँ तो आदि है और कहाँ अन्त है ? इसी प्रकार जो वर्तमान परिणमन विशुद्ध चलता है प्रभुके, हम उसमें आदि क्या खोजें ? आदि तो नये कामका खोजा जाता है। ये प्रभु अनादि अनन्त हैं और परम्परासे अनादि अनन्त हैं।

विश्वरक्षक प्रभुकी उपासना—ये प्रभु सबके रक्षक हैं। जब किसी के कोई चिंता, शोक, संकट आदि होते हैं तो वह प्रभुके निकट पहुंचता है और प्रभुकी बिनती स्तवन करके वह अपने बोझको कम करता है और वहाँ शान्ति प्राप्त होती है, पापरस घटता है, पुण्यरसकी वृद्धि होती है, रक्षा होती है। एक मनुष्य अपने घरमें प्रभुकी मूर्ति विराजमान कर रोज उपासना, आरती किया करता था। यों उसके बीस वर्ष गुजर गए। वह बड़ा धनाढ्य भी हो गया। एक बार चार चोरोंने सोचा कि उसका धन लूटना चाहिए और जान भी लेना चाहिए। जब उसके घर चोरी करने पहुंचे तो उस पुरुषको चोरोंने पकड़ लिया और कहा कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हम लोग चोर हैं, तुम्हारे पास जितना धन है वह सब लेंगे और तुम्हारी जान भी लेंगे। तो उसने कहा कि ठीक है यह सब धन भी ले जावो और जान भी हाजिर है, किन्तु एक प्रार्थना है कि हमने इस प्रभुमूर्तिको २० वर्षोंसे पूजा है, अब हमारा अंत समय आया है, हमें थोड़ा अवकाश दीजिए कि हम इस मूर्तिको विधिपूर्वक इस पासकी नदीमें सिरा दें। उन चोरोंने विचार किया कि क्या हर्ज है। दो आदमी साथ चले जायेंगे, यह मूर्तिको सिरा देगा, इसे फिर साथ लिए आयेंगे। फिर धन जान तो लेना ही है। सो ले गये नदीके पास। जब मूर्तिको वह पुरुष सिराता है तो क्या कहता है कि हे प्रभो! मुझे जान जानेकी फिक्र नहीं है, जान जावे, पर एक इस बातका खेद है कि जिन हाथोंसे हमने आपको पूजा उन्हीं हाथोंसे अखण्डित दशामें आपको हम सिरा रहे हैं, और दूसरा शल्य यह लग रहा है कि दुनियाके लोग क्या कहेंगे कि खूब तो पूजा प्रभुको और आखिर गति क्या हुई, मारे गए और उस मूर्तिको नदीमें सिराना पड़ा, यह लोकमें अपवाद होगा। तो आकाशवाणी हुई कि हे भक्त! देख तेरी प्रभुपूजा व्यर्थ नहीं गई। इन चार चोरोंको तूने पूर्वभवमें मारा था, सो ये बदला लेने आये हैं। ये चार बार एक एक करके तुझको मारते, पर इस प्रभुभक्तिके प्रसादसे तुझे चार बार न मारकर केवल एक ही बार सभी मारने आये हैं। इस प्रभुभक्तिके प्रसादसे ही तेरी तीन बारकी मौत कट गई। इतनी बात उन चोरोंने भी सुनी। तो सिराते समय उन चोरोंने कहा—ठहरो, अभी इस मूर्तिको मत सिरावो, वहाँ चलो, वहीं चलकर हम सब इसका निर्णय करेंगे। सो उस मूर्तिको लिए हुए उस व्यक्तिको लेकर वे चारों ओर उसके घर गए। वहाँ चारों चोरोंने परस्परमें उस विषयमें सलाह की और कहा कि यदि प्रभुभक्तिके प्रसादसे प्रभुने इसके तीन मौत काट दिये तो क्या हम चारों मिलकर इसकी एक मौत भी नहीं काट सकते? सो उसको यों ही छोड़कर वे चारों चोर चले गए।

त्रिलोकाधिपति भुवनेश्वरके गुणानुरागमें रक्षाके सुयोग—भैया! जो प्रभुके गुणोंसे अनुराग रखते हैं उनको कोई न कोई ऐसा प्रसंग मिल जाता है कि उनकी रक्षा होती है। एक श्रद्धापूर्वक णमोकार मंत्रका स्मरण करनेसे ही कितने ही विघ्न शांत हो जाते हैं, यह कुछ अनुभवी लोगोंने परखा होगा। तो यह प्रभुका स्मरण मात्र ही हमारा रक्षक है। वे प्रभु भुवनेश्वर हैं। ये प्रभु इस लोकके अन्तमें विराजमान हैं, तो ये लोकाधिपति हैं। प्रभु विराजे हैं ऊपर। लोगोंकी प्रकृतिसे ही सिद्ध है कि प्रभु ऊपर विराजे हैं। जब कोई प्रभुका स्मरण करता है तो अपना मुंह ऊपर उठाकर करता है, किसीको नीचे मुँह गड़ाकर प्रभुभक्ति करते हुए न देखा होगा अथवा न सुना होगा। तो ये प्रभु भुवनेश्वर हैं।

योगीश्वरं तमीशानमादिदेवं जगद्गुरुम्।
अनंतमच्युतं शांतं भास्वन्तं भूतनायकम् ॥२०३८॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अच्युत अनन्त जगद्गुरु योगीश्वर आदिदेवकी उपासना— योगियोंके ईश्वर, सबके नायक, जगतके गुरु ऐसे आदि देव हैं। जब इस लोकमें बहुत पहिले अनगिनते वर्षों पहिले जब कि भोगभूमि नष्ट हो गई थी और कर्मभूमिका आरम्भ हुआ था उस समय लोग सब अपरिचित थे कि किस तरहसे भूख शांत करें, किस तरहसे साधन जुटायें, और किस तरहसे सिंहादिक क्रूर जानवरोंसे अपनी रक्षा करें, यों अनेक बाधावोंसे व्याकुल थे। उस समय आदिनाथ प्रभु ऋषभदेवने सबको सब युक्तियां सिखायीं, सभीको सुखसे जीनेकी विधि बतायी, इससे वे आदिनाथ कहे जाते हैं, कुछ लोग ब्रह्मा कहते हैं, कुछ लोग आदम कहते हैं, कुछ लोग उन्हें योगीश्वरके रूपमें निरखते हैं। ऋषभदेवकी कितनी परमकरुणा थी कि लोग निर्विघ्न जी सकें और फिर मोक्षमार्गमें भी लग सकें। इसलिए ये प्रभु सबके ईशान हैं, जगतके गुरु हैं, अविनाशी हैं। जो पद पाया है, जो ज्ञानानंदका स्वाद लिया है अब उससे वे नहीं गिर सकते। वे समस्त प्राणियोंके अधिपति हैं। प्रभुके गुणोंके वर्णनमें इस प्रसंगमें अब तीन श्लोक और शेष है जिनमेंसे एक श्लोकमें आचार्यदेव कहते हैं कि—

सन्मतिं सुगतं सिद्धं जगज्ज्येष्ठं पितामहम्।
महावीरं मुनिश्रेष्ठं पवित्रं परमाक्षरम् ॥२०३९॥

सन्मति महावीर प्रभुका स्मरण--वे प्रभु सन्मति हैं, सम्यग्ज्ञानमय हैं और संमति नाम चौबीसवें तीर्थंकरका भी है। देखो प्रायः अनेक लोगोंने अपने प्रभुको २४ संख्यामें माना, २४ तीर्थंकर हुए। तो ऐसा नियोग है और फिर थोड़ा अक्षरोंमें परखिये कि परमात्मा लिखते हैं ना, तो उसमें मूर्छा न लगायें, अक्षरोंके ऊपर जो लाइन खींचते हैं वह न खींचें और परमात्मा लिख दें—जैसे "परमात्मा"। तो इसमें पहिला प ५ की तरह है, र २ की तरह है, फिर दूसरा म ४॥ की तरह है, फिर आधा त ८ की तरह है, फिर बड़ा मा ४॥ की तरह है। तो ५ + २ + ४॥ + ८ + ४॥ = २४। तो २४ तीर्थंकर होते हैं। यह बात परमात्मा शब्दमें आकारसे निकलती है। २४ वें तीर्थंकरका नाम सन्मति है। प्रभुका नाम सुगत भी है। जिसकी उत्तम गति हुई है, उत्तम अवस्था प्राप्त हुई है ऐसे आत्माको वे सुगत कहते हैं, ये प्रभु सिद्ध हैं। जो कार्य उत्कृष्ट है वह उनके सिद्ध हैं। जगतमें तो फिर उनसे बड़ा कौन ? यहाँ बड़ेके मुकाबलेसे दृष्टि की जाती है—यह बड़ा है, उनसे बड़ा यह है, और जो समस्त रागादिक विकारोंसे रहित हैं, अपने ज्ञानादिक गुणोंके पूर्ण विकासमय हैं, ऐसे प्रभुसे बड़ा और किसे कहा जाय ? प्रभु महावीर हैं। ये शब्द विशेषण भी हैं और प्रभुके नाममें भी दिये जा रहे हैं। वीर किसे कहते हैं—वि-विशिष्टां, ई-ईं राति ददाति इति वीरः अर्थात् जो मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं, पवित्र हैं वे वीर हैं, और परम अक्षररूप हैं। एक एक अक्षरों प्रभुके स्वरूपकी धुनि बन सकती है। और इसी कारण पहिले समयमें लोग लिखकर कोई भी पत्र नीचे नहीं डालते थे। वे अक्षरको भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वंदनीय समझते थे। फिर कुछ समय बाद जो लौकिक समाचार हैं वे नीचे रहने लगे, पर जिसमें कुछ अच्छा उपदेश होता उसे नीचे न डालते थे, फिर उनकी भी उपेक्षा हो गई, पर जो आगमके नामसे प्रसिद्ध हैं, जो शास्त्र कहे जाते हैं उनके अक्षर, अब भी नहीं लोग नीचे डालते। बहुत पहिले तो कैसे ही अक्षर हों, उन्हें लोग नीचे न डालते थे। ये पृथ्वीपर फर्श पर जो नाम लिखे जाते हैं जो पैरोंके नीचे भी पड़ जाते हैं। शायद कुछ पहिले इस तरहसे नाम न लिखे जाते थे, अगर लिखना हुआ तो भींतपर लिखते थे। तो जो प्रभुके नाम हुए वे अक्षर-अक्षर वंदनीय हैं। वे प्रभु अविनाशी हैं। ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुष उस प्रभुका ध्यान कर रहा है।

सर्वज्ञं सर्वदं सार्वं वर्द्धमानं निरामयम्।
नित्यमव्ययमव्यक्तं परिपूर्णं पुरातनम् ॥२०४०॥

सर्वज्ञ प्रभुका स्मरण—ये प्रभु सर्वके ज्ञाता हैं और सर्व कुछ देने वाले हैं। प्रभुके गुणोंका कोई भक्त यथार्थ रूपमें अवलोकन कर ले, ध्यान कर ले तो उसे सब कुछ तो मिल गया। उसके कुछ चाह ही न रही तो सब मिल गया। चाहके न रहनेका नाम है सर्व अर्थों की सिद्धि होना। तो प्रभुकी भक्ति जो लोग करते हैं उन्हें सर्व कुछ प्राप्त होता है। ये प्रभु सबके हितकारी हैं। उन प्रभु के किसी भी प्रकारका रागद्वेष नहीं है। वे तो सदा निर्दोष ज्ञानानंदका ही अनुभव किया करते हैं। ये प्रभु वर्द्धमान हैं, अर्थात् बढ़ते हुए हैं। इसमें चौबीस तीर्थंकर आ जाते हैं और सभी अर्हंत आ जाते हैं, वे सभी वर्द्धमान हैं, ये सर्वरागोंसे रहित हैं, अविनाशी हैं, और सबको अव्यक्त हैं। जो पुरुष ज्ञानी हैं, आत्माके स्वरूपके ज्ञाता हैं उनको तो प्रभु का स्वरूप कुछ व्यक्त होता है, पर अज्ञानी जनोंको रंचमात्र भी व्यक्त नहीं होता। वे परिपूर्ण हैं और पुरातन हैं, परम हैं, ये अनादिसे चले आये हुए हैं।

इत्यादिसान्वयानेक पुण्यनामोपलक्षितम्।
स्मर सर्वगतं देवं वीरममरनायकम् ॥२०४१॥

पुण्यनामोपलक्षित वीर देवका स्मरण—इस रूपस्थध्यानमें के विशेषणोंको कहकर अन्तिम श्लोकमें आचार्यदेव आदेश कर रहे हैं कि हे भव्यजनो! अनेक पवित्र नामोंसे सहित वीर प्रभु का स्मरण करो। भगवानके जितने नाम हैं वे सब नाम एक पुण्यरूप हो गए। क्यों हो गए? यों कि अक्षरोंमें प्रभु वाचकता होनेसे पुण्यरूपता आ गई। जो महापुरुष पवित्र हुए हैं, वीतराग सर्वज्ञ हुए हैं, उनके साथ जुटे हुए नाम भी पुण्य हो गए हैं। तीर्थंकरोंके नामोंमें भी तो एक साधारण शब्द ही हैं, पर इन नामों वाले तीर्थंकरोंने अपने आत्माको पवित्र किया। सर्व दोषोंसे मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त किया। तो ऐसे पवित्र आत्मा जिस देहमें बस रहे उस देहका नाम भी पवित्र हो गया। प्रभु अनेक पवित्र नामोंसे सहित हैं। लोग भी तो अपने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बच्चोंके नाम महापुरुषोंके नामपर रखनेकी उत्सुकता रखते हैं, और जब नामकरणको विधि होतो है तो अनेक नाम वे ही रखे जाते हैं जो महापुरुषके हुए, उनमेंसे जो एक नाम आ जाय, कोई उठा ले, या जिस किसी भी विधिसे वह नाम उनका रख दिया जाय। तो जिस नामके रखनेमें भी लोग बड़ा गौरव समझते हैं उस नामधारी तीर्थंकर कितने विशुद्ध प्रभु थे, इसका भी अंदाज कर सकते हैं। अनेक पुण्य नामोंसे सहित वे शरणागत देव, जो देवोंके नायक हैं, सर्व जगतके नेता हैं ऐसे वीर प्रभुको हे भव्य पुरुषो! स्मरण करो।

स्वपरप्रभुतास्मरण—भैया! काम दो ही तो करनेके मुख्य हैं—एक तो भजन और एक आत्मस्मरण। और तीसरी बात कहाँसे लायें ? सारभूत बात इतनी ही है। अन्यत्र सभी जगह शरण सोच सोचकर, शरणकी आशायें कर करके बहुत-बहुत धक्के खाये। उन सभी अनुभवोंसे भी इसी निर्णयपर आना पड़ता है कि जगतमें शरण बाहरमें कहीं कुछ नहीं है। अपना शरण तो एक प्रभु भजन और अपने ही आत्मगुणोंका स्मरण है। जिस क्षण अपना उपयोग आत्मस्वरूपके स्मरणमें लगे वह क्षण धन्य है। यहाँसे हटकर बाहरमें, विषयों में, पापोंमें, मौजोंमें जानेसे तो कुछ भी लाभ न होगा। तो यह ही अपना निर्णय रखो कि कर्तव्य तो हमारे ये दो ही हैं—व्यवहार और निश्चय, बाह्य और अन्तरङ्ग, प्रभु भजन और आत्मस्मरण।

अनन्यशरणं साक्षात्तत्संलीनैकमानसः।
तत्वस्वरूपमवाप्नोति ध्यानी तन्मयतां गतः ॥२०४२॥

ज्ञानपुञ्ज प्रभुकी अनन्यशरणतासे प्रभुत्वलीनता—भगवानका स्वरूप एकदम सीधे ज्ञानपुञ्ज रूपमें निहारना चाहिए। एक दृष्टिसे निहारें तो उस दृष्टिसे कि जहाँ ज्ञानको निहारा जा रहा है और ज्ञानरूपमें ही देखा जा रहा है तो प्रभुके ध्यानमें फिर यह भक्त तल्लीन हो जायगा, अन्य रूपोंमें ध्यान करनेपर ऐसी लीनता न आयगी। मानो प्रभुको यों देखा एक विशिष्ट मनुष्यकी भांति हाथ पैर, उन मुद्रावोंमें चलना, विहार करते हुए, वैसा आमान माड़-कर योगमुद्रामें, किसी भी रूपमें प्रभुको देखा, तो इस बाह्य निरखनमें प्रभुत्वलीनता न आवेगी। उस प्रभुके जो और गुण हैं आनन्द शक्ति आदिक उनको भी अगर हम देखें तो भी उसमें वह लीनता न आयगी जैसी लीनता हम भगवानको मात्र ज्ञानस्वरूप देखें, ज्ञानका पुतला, ज्ञानपुञ्ज, ज्ञान ही ज्ञानका जहाँ प्रसार है, मात्र वह शुद्ध ज्ञान, वह प्रभु है, ऐसा जब हम उस ज्ञानस्वरूप प्रभुको निरखेंगे, तो प्रभुत्वमें लीनता आवेगी। जो योगी उसमें ही एक लीन चित्तवाला हो जाता है, फिर वह अनन्य शरण होकर तन्मयताको प्राप्त होता है।

परमज्ञानज्योतिकी अनन्यशरणताका औचित्य—जब संसारके सारे नटखट देख लिए जाते हैं, यहाँ सार कुछ नहीं, शरण कुछ नहीं, सब विडम्बनायें हैं, सब मोहांधकार है, सब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मोहकी नींदका स्वप्न है, यों जब इस स्पष्टताका परिचय होता है तो फिर यह भव्य पुरुष या तो अपने आपमें बसे हुए ज्ञानमय पदार्थका सहारा लेता है या प्रभुको अपना अनन्य शरण बनाता है। तो जो योगी इस ज्ञानज्योति प्रभुके चित्तमें एक चित्त होकर लीन होता है वह अनन्य शरण होता हुआ ध्यानसे परमात्मस्वरूपको प्राप्त कर लेता है। आत्माका हित परमात्म-स्वरूपमें है, अन्यत्र नहीं है। भोगविषयोंमें प्रीति है, नामवरीमें, विषयसाधनोंमें चित्त लगता है, इनमें ही मौज माना जाता है सो ठीक है, उदय है पुण्यका, मान लें मौज, किन्तु यह न भूलना चाहिए कि ये भोगसाधन जिनमें अभी मौज माना जा रहा है, बड़े महंगे पड़ेंगे। ये भोगनेमें तो बड़े आसान लग रहे हैं पर इनका फल बड़ा कटुक है। यहाँ कोई भी पदार्थ प्रीति के लायक नहीं। एक स्वरूपको ही अपना शरण मानकर उसमें ही लीन हों तो उससे लाभ मिलता है।

यमाराध्यशिवं प्राप्ता योगिनो जन्मनिस्पृहाः।
यं स्मरन्त्यनिशं भव्याः शिवश्रीसंगमोत्सुकाः ॥२०४३॥
यस्य वागमृतस्यैकामासाद्य कणिकामपि।
शाश्वते पथि तिष्ठन्ति प्राणिनः प्रास्तकल्मषाः ॥२०४४॥
देवदेव स ईशानो भव्याम्भोजैकभास्कर :।
ध्येयः सर्वात्मना वीरः निश्चलीकृत्य मानसम् ॥१०४५॥

प्रभुमें कृतकृत्यताका महत्त्वशाली योग—वीरप्रभुका ध्यान करो, जिसकी आराधना करके योगीजन मुक्तिको प्राप्त हुए हैं। किसी भी प्रसंगमें प्रश्न करते जाइये, उत्तर देते जाइये। फिर क्या होगा ? तो एक समाधान रूपमें उस तत्त्वका निर्णय कर सकते हैं। अच्छा, अब जन्म हुआ है, फिर क्या होगा ? बड़े होंगे, पढ़ेंगे। फिर क्या होगा ? डिग्रियां पायेंगे। फिर क्या होगा ? धनार्जन करेंगे, गृहस्थी बसायेंगे। फिर क्या होगा ? बूढ़े होंगे, शरीर शिथिल होगा। फिर क्या होगा ? बस इसी तरह किसी दिन मरण हो जायगा। फिर क्या होगा ? फिर अगले भवोंमें कीट, मकोड़ा, पशु पक्षी आदिक जिस किसी भी योनिमें पहुंचेंगे वहांके दुःख भोगने होंगे। फिर क्या होगा ? तो इस चर्चाका कोई अन्त ही नहीं। इसका समाधान कहाँ खत्म होगा ? हाँ, यदि कोई ऐसा यत्न करे—जो आत्मसाधनाका, रत्नत्रयकी साधनाका, आत्म-विश्वास, अध्यात्मयोग इनकी साधनाका यत्न करे तो फिर क्या होगा ? यह बात पूछ लो, चर्चा का अंत हो जायगा। अच्छा, क्या होगा ? कर्मनष्ट होंगे। फिर क्या होगा ? सिद्ध होंगे, फिर होगा ? अनन्त आनन्दका अनुभव करते रहेंगे। फिर क्या होगा ? बस उसी अनंत आनंदका अनुभव करते रहेंगे। अब इसके आगे प्रश्नकी गुंजाइश नहीं। कृतकृत्य हो गये, फिर होगा ? यह प्रश्न खड़ा ही नहीं हो सकता। तो यह संसार रमने योग्य नहीं है, इसे तजकर जिन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

योगियोंने प्रभुस्वरूपकी आराधना की। उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया। जो भव्य जीव इस मोक्ष-लक्ष्मीके अभिलाषी हैं वे निरंतर जिस प्रभुका स्मरण करते हैं उस प्रभुका हे भव्यजनो! ध्यान करो। जिसके वचनरूपी अमृतकी एक कणिकाको भी पा करके शाश्वत आनंदमय पदको प्राप्त किया जाता है, ऐसी वीरप्रभुका ध्यान करो।

वीर प्रभुका आदर—इस चतुर्थ कालके अन्तमें २४ वें तीर्थंकर वर्द्धमान (महावीर) स्वामी हुए हैं, उनकी उपदेशपरम्परासे जो आज हमें उपदेश मिला है उस उपदेशको पाकर यथार्थ निर्णय करके हम अपनेको कृतार्थ समझते हैं। इस सम्बंधमें हम कितना आभार मानें वीरप्रभुका ? है तो सभीका आभार, किन्तु एक उनके शासनमें, उनकी वाणीकी परम्परामें हमने अपने कल्याणका मार्ग जान पाया है। तो उनके वचनामृतकी कणिका भी इस जीवका भला कर देगी। किसीके हृदयमें कहो कोई बात ऐसी लग जाय कि वह उसके आधारपर ही सम्यक्त्व पैदा कर ले। और फिर उन वचनोंकी उपासना करनेसे जो पुण्यरस बढ़ता है, उससे लौकिक समृद्धियाँ मिलती हैं। एक भाईको जैनशासनके उपदेशसे इतना विरोध था कि जब वह बाजारकी गलीसे निकले तो अपने कानोंको बंद करके निकले इसलिए कि कहीं कोई शब्द हमारे कानमें न पड़ जाय। एक बार निकल रहा था और उसी समय पैरमें काँटा लग गया तो तुरन्त कान खुल गये। काँटा निकालने लगा। इतनेमें कुछ शब्द उसके कानोंमें पड़ गए—देवोंके छाया नहीं होती है। उनका वैक्रियक शरीर होता है और उनके शरीरकी छाया भूमि पर नहीं पड़ती। इतना शब्द उसने कानोंसे सुन लिया और चल पिया। योग ऐसा हुआ कि उसी दिन दो तीन पुरुष भूत जैसा भेष बनाकर (जैसा कि नाटकोंमें चेहरा लगाकर लोग अपना भेष बदल देते हैं) उसके घर पहुंचे। वे चोर तो यह समझते थे कि घरके लोग हमें भूत समझकर डरकर भाग जायेंगे और हम लोग मनमाना धन लूट लेंगे। सो वह पुरुष पहिले तो डरा, पर बादमें देखा कि इनके शरीरकी छाया तो जमीनमें पड़ रही है, ये भूत नहीं हैं ये तो मनुष्य हैं, भूतका भेष बनाकर आये हैं, सो उसने डटकर उनका मुकाबिला किया, वे भाग गए, सारा धन भी बच गया। तो उसने सोचा कि देखो—जैनधर्मके एक छोटेसे वाक्यको सुन लिया तो उससे इतना लाभ हुआ, फिर और अगर जैन धर्मके सारे उपदेशको सुना जाय तो न जाने कितना लाभ होगा ? उसे जैनधर्मसे श्रद्धा हुई।

संकटमोचक मूल उपाय—जैनधर्ममें संकटमोचकका मूल उपाय बताया है वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान करना। एक एक चीज एक एक परमाणु प्रत्येक पदार्थ अपने आपके स्वरूपमें परिपूर्ण हैं, अधूरा पदार्थ कोई नहीं है। किसीसे कुछ निकलता नहीं है, सभी पदार्थ पूरेके पूरे बने हुए हैं। कभी जीव राग करता है तो, द्वेष करता है तो वह अपना पूराका पूरा परिणमन करता है, अधूरा परिणमन नहीं करता। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। इस उपदेशने ऐसा प्रकाश दिया कि जिससे मोह नष्ट हो जाता। मोह नष्ट हो जाय यह सबसे महान वैभव है, और आनन्दका घात करने वाला जो मोह था, मोह दूर हो गया तो उसे शांति ही समझिये। किसी आदमीको अपने ही घरमें कुछ अंधेरे उजेलेमें किसी जगह पड़ी हुई रस्सीमें यह भ्रम हो जाय कि यह तो साँप है तो उसे देखकर वह पुरुष बहुत घबड़ाता है, लोगोंको भी बुलाता है, बड़ा बेचैन होता है। पर कुछ थोड़ी हिम्मत करके उसके निकट जाय, देखें तो सही कि कौनसा साँप है, उसे देखकर कुछ अंदाज हुआ कि यह तो चल भी नहीं रहा है, जरासा हिलडुल भी नहीं रहा है, थोड़ासा और निकट जाकर देखा तो मालूम पड़ा कि यह साँप नहीं है। जरा और हिम्मत बनाकर पास गया तो ज्ञात हो गया—ओह! यह तो रस्सी है। लो इतना ज्ञान होते ही उसकी सारी घबड़ाहट, सारी व्याकुलता, सारी विह्वलता मिट गई। अब उसे कोई कितना ही घबड़वाये तो वह नहीं घबड़ा सकता। कोई कहे कि मैं इतने रुपये इनाम दूंगा, उसी तरह घबड़ाकर दिखा दो ,तो वह नहीं दिखा सकता। भले ही धनके लोभसे वह कुछ बनावटी घबड़ाहट बनाये, पर वह घबड़ाहट नहीं अपनेमें ला सकता। तो इसी तरह समझिये कि जब चित्तमें यह भली भांति निर्णय हो जाता है कि जीव सब अपने अपने स्वरूपमें पूरे हैं, किसीका कुछ किसी दूसरे जीवमें नहीं जाता, तब इस सत्य निर्णयके होनेपर फिर मोह कहाँ ठहर सकता है? जिनमें जब भी जितना मोह है उन्हें यह सोचना चाहिए कि हमारे निर्णयमें कमी है, उस भेदविज्ञानको उतारनेमें कमी है। वस्तुस्वरूपका जिसे यथार्थ निर्णय हुआ है उसके मोह नहीं ठहर सकता है।

ज्ञानज्योतिर्मय वीर प्रभुकी उपास्यता—जिनप्रभुके उपदेशकी रंच भी कणिका प्राप्त कर भव्यजन मुक्त हो जाते हैं ऐसे वे वीर प्रभु हम आप सबके ध्यानके योग्य हैं। ऐसे जगतके नाथ, भव्यरूपी कमलको प्रफुल्लित करनेके लिए सूर्यके समान हैं। वे प्रभु सोमनाथ हैं, जगत के स्वामी हैं। चन्द्रप्रभु कहो अथवा चंद्रकी तरह अमृत बरसानेमें कुशल वे नाथ हैं। किन्हीं भी शब्दोंमें कहो, वे प्रभु सांवरियां हैं। पार्श्वनाथका साँवला रूप कहा ही जाता है। किन्हीं भी शब्द कहो, यदि ज्ञानपुञ्ज रूपमें उसे निहार सकते हैं तो हम प्रभुके सत्य गुण तक पहुंच सकते हैं और एक ज्ञान मूलको यदि न जाना और कुछ भी जानते रहे प्रभुके बारेमें तो वहां तत्त्व नहीं प्राप्त कर सकते, जिसके ध्यानसे हम प्रभुमें एकरस लीन हो सकें। ऐसे ज्ञानपुञ्ज प्रभु वीर नाथ हैं, जिनकी आराधना करके प्राणी ममत्वको दूर करके विशुद्ध निर्णय बनानेका परिणाम करते हैं, वे वीर प्रभु ऐसे ध्यान करने योग्य हैं कि जहाँ चित्तको पूर्ण स्थिर कर लिया जाय। एक मन होकर उन प्रभुका ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुष ध्यान करते हैं।

तस्मिन्निरन्तराभ्यासवशात्संजातनिश्चलाः।
सर्वावस्थासु पश्यन्ति तमेव परमेष्ठिनम् ॥२०४६॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभ्यस्त तत्त्वका सतत अवलोकन—सर्वज्ञदेवके ध्यानमें अभ्यास करनेके प्रभावसे जो निश्चल हुए हैं ऐसे योगीजन समस्त अवस्थाओंमें उसी परमेष्ठीको, उसी ज्ञानको देखते हैं। जिसकी जहाँ श्रद्धा है उसका चित्त वहीं लीन रहता है। जिसका जहाँ चित्त लगा है उसे उस ही के दर्शन होते हैं। एक दृष्टान्त दिया है कि—एक पंडितजी पगड़ी बाँधे हुए कहीं शास्त्र पढ़ रहे थे। एक बजाज सेठ भी पंडित जी के पीछे बैठा हुआ शास्त्र सुन रहा था। शास्त्र सुनते हुएमें उस सेठके निद्रासी आ गई, कुछ स्वप्नसा भी आ गया। स्वप्नमें क्या देखता है कि मैं दूकान पर बैठा हूं, कपड़ा खरीदने वाले लोग आ रहे हैं। किसी खरीददारने पूछा कि यह कपड़ा क्या भावमें दोगे ? सो उसने कहा ३ रुपया गज। उसने १॥) रु० गज माँगा। आखिर तय न होनेपर खरीददार चलने लगा। तो वह सेठ उस पंडितजी की पगड़ी खींचकर फाड़कर कहता है अच्छा १॥) रु० गजमें ही ले जावो। तो कोई एक ही बात नहीं, सभी कामोमें यही बात है, जिसका चित्त जहाँ लगा होता है उसे स्वप्नमें भी वही बात दीखती है। कभी आपने स्वप्न में देखा होगा कि हम तीर्थयात्रामें गए हुए हैं, एक टोंकसे दूसरी टोंकमें झट पहुंचकर बन्दना कर रहे हैं, कभी बड़े-बड़े पर्वतोंपर जरा-जरासी बातमें लाँघकर जा रहे हैं और कहीं एकदम उड़ते हुए चले जा रहे हैं। तो ऐसे स्वप्न उन्हें आते हैं जिन्हें उन तीर्थक्षेत्रोंके प्रति श्रद्धा है, उनके प्रति ध्यान बनाते हैं।

चित्तप्रासादमें हितसम्बन्धित स्वप्न—जिनके चित्तमें जो बात बसी है स्वप्नमें भी वही बात दीखती है। जब कभी इस प्रकारके अच्छे स्वप्न किसीको दिखते हैं तो उनमें वह बड़ा खुश होता है, उन्हें अपना सगुन समझता है, वह सोचता है कि मेरे मनका संतुलन ठीक था, मेरे भाग्यका उदय हुआ है, नहीं तो ऐसा स्वप्न न आता। यों सोचकर वह बड़ा सन्तुष्ट होता है। कभी ऐसा स्वप्न आये कि हम समुद्रमें गिर गए या मगर हमारा पैर पकड़े खींच रहा है, या सिंहादिक क्रूर जानवर हमपर आक्रमण कर रहे हैं तो उन स्वप्नोंको देखकर हम घबड़ा जाते हैं, दुःखी होते हैं। तो जैसा अभ्यास हो उसके अनुसार वही चीज दिखती है। इन योगीजनोंको सर्व अवस्थावोंमें उस ही ज्ञानपुञ्ज भगवान परमेष्ठीका दर्शन होता रहता है। पर एक बात और जाननेकी है कि हमारा चित्त यदि समाधानरूप है, धीर है, गम्भीर है तो स्वप्न आयेंगे नहीं, और अगर आयेंगे तो एक विश्राम पहुंचाते हुए स्वप्न आयेंगे। तो ज्ञानी पुरुष जो इस आत्मतत्त्वके अभिलाषी हैं, उन्हें जब भी स्वप्न आयेंगे तब आत्मतत्त्वका अनुभव करने के प्रसंग ही आयेंगे। उनके इन बाह्य इन्द्रियोंका व्यापार बंद होता है शयन अवस्थामें, मन भी उपशांतसा रहता है, किन्तु वह मन अपने भीतर ही काम करता रहता है। तो जिन योगीजनोंने अभ्यास किया है वे सर्व अवस्थाओंमें परमेष्ठी प्रभुको ही निरखते हैं। जैसे मोही जन कोई धनसम्पदाकी प्राप्तिका स्वप्न देखकर बड़े खुश होते हैं और जगनेपर जरा खेदसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मानते हैं ऐसे ही जब कुछ आत्मानुभवकी आनंदकी बात कही जाती है तो किसी भी स्थितिमें चाहे सोते हुएमें, चाहे जगते हुएमें, और जब वह स्थिति मिलती है तब जगनेपर उस आत्माको कुछ खेद होता है, ऐसी स्थिति क्यों न बनी रही ?

स्वप्नवत् असार समागमोंको त्यागकर प्रभु स्मरणका अनुरोध—सांसारिक मौजका स्वप्न देखकर भी लोग जगनेपर विषाद करते हैं। एक मनुष्य था उसे स्वप्न आया कि मुझे राजाने ५० गायें इनाममें दी हैं। ग्राहक लोग उन्हें खरीदने आये। पूछा—इन गायोंका क्या मूल्य है ? तो उसने बताया कि इन सभी गायोंका मूल्य १००-१०० रु० है। ग्राहक लोग ५०-६०-७० रु० प्रति गायका मूल्य लगा रहे हैं। वह ९०) रु० प्रति गाय कहने लगा। बात न पटी तो ग्राहक लोग चल पड़े। इतनेमें वह जग गया, देखता है ओह ! यहां तो कहीं कुछ भी नहीं है। तो झट आँखें बंद कर लेता है और कहता है—अच्छा तुम ७०-७० रु० में ही ले जावो। था तो वहाँ कुछ नहीं, वह तो स्वप्नकी बात थी, पर उसीको वह सत्य मान रहा था। ऐसे ही मोहनिद्रामें सोये हुए इन प्राणियोंको यहांकी सारी बातें—मेरा घर, मेरे परिजन, मेरा वैभव आदिक सभी बातें सच मालूम हो रही हैं, पर है वास्तवमें किसीका कुछ नहीं, किसीसे कोई सम्बंध नहीं, पर मोहवश अपने आपको दुःखी कर रहे हैं और दूसरोंको भी सत्पथसे विचलित करते हैं। जब ज्ञानज्योति जगती है तब विदित होता है—ओह ! ये सब मोहनिद्राके स्वप्न हैं। जैसे अभी अपने जीवनमें जिन लोगोंका वियोग हुआ है—पिताका, बहिनका, भाईका या किसीका भी, वे अब स्वप्नवत् लग रहे हैं, तो जैसे बीती हुई बातें स्वप्नवत् लग रही हैं इसी तरह वर्तमानमें भी जो कुछ समागम हैं वे भी स्वप्नवत् ही समझिये। इन असार तत्त्वोंको त्यागकर इनसे उपेक्षा करके जो ज्ञानपुञ्ज प्रभु के स्वरूपमें तल्लीन होते हैं वे प्रभुको निहारते हैं और प्रभुस्वरूपको प्राप्त करते हैं।

तदालम्ब्य परं ज्योतिस्तद्गुणग्रामरञ्जितः ।
अविक्षिप्तमना योगी तत्स्वरूपमुपाश्नुते ॥२०४७॥

अविशेष परं ज्योतिके आलम्बनसे परमात्वकी उपलब्धि—ध्यानी पुरुष सर्वज्ञकी उस परमज्योतिका आलम्बन करके उनके गुणस्वरूपमें रंजायमान होकर, अपने आपमें विशेषतावों को छोड़कर प्रभु स्वरूपको प्राप्त करते हैं। जो अपने आपमें विशेषतायें लगा रखी हैं—मैं अमुक हूं, ऐसी पोजीशनका हूं, अमुक नामका हूं आदिक ये सब विशेषतायें प्रभु दर्शनमें बाधक हैं, और जब अपनेको एक ज्ञानमात्र मानकर प्रभुके ज्ञानस्वरूपका निर्णय करके इस उपयोगको विस्तृत करते हैं, सर्व जीव एक ज्ञानस्वरूपमात्र हैं और वही परमार्थ है, वास्तविक स्वरूप है, उस वास्तविक स्वरूपकी ओरसे मुझमें और समस्त जीवोंमें प्रभुमें कहीं कुछ भेद नजर नहीं आता। सर्व ज्ञानस्वरूप हैं, यों निहारकर अपनी विशेषताओंको छोड़कर एक साधारणरूपमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जब एक ज्ञानज्योतिमें हम आते हैं तब हम अविशेष बनते हैं और उस समय स्थिरचित्त होकर हम उस स्वरूपमें लीन होते हैं और उस ही को प्राप्त कर लेते हैं। हमारा कर्तव्य है कि उन सब सांसारिक समागमोंमें ये मायारूप हैं, भिन्न हैं, इनसे मुझमें कुछ भी नहीं आता, ऐसा निर्णय बनाकर अपने आपको दयारूप यत्न करें, हमारी दया है प्रभुस्वरूपका भजन व आत्मस्वरूपका स्मरण। दो ही तो काम करना है—एक तो प्रभुभजन और दूसरा अपने आत्मस्वरूपका चिन्तन। इन्हीं दो कार्योंको करके हम सदाके लिए संसारके संकटोंसे बचनेका अपना उपाय बना लें। अपना एक यही निर्णय बनायें और निश्चय रखें कि हमारे लिए शरण एक तो है प्रभुभजन और एक है आत्मस्वरूपका स्मरण। चाहे करना कुछ पड़ रहा हो, मगर श्रद्धा तो इसी भांति होनी चाहिए।

इत्थं तद्भावनानंदसुधास्यन्दाभिनंदितः ।
न हि स्वप्नाद्यवस्थासु ध्यायन्प्रच्यवते मुनिः ॥२०४८॥

परमात्मत्वभावनाभिवन्दित मुनिका स्वरूपप्रतीतिसे अच्यवन—वीतराग सर्वज्ञ प्रभुकी भावनासे जो आनन्दामृत उत्पन्न हुआ है उसके प्रवाहसे आनन्दमें हुए मुनि स्वप्न आदिक अवस्थाओंमें भी ध्यानसे च्युत नहीं होते। संसार शरीर भोगोंसे विरक्तिके कारण और वस्तुके यथार्थस्वरूपके निर्णयके कारण योगीके चित्तमें ही एक ज्ञानज्योतिकी धुनि रहती है और उस धुनिमें इतना लीन हो जाते हैं कि स्वप्न आदिक अवस्थाओंमें भी ये ध्यानसे चिगते नहीं हैं। स्वप्नमें भी मूर्तिदर्शन हो, स्वप्नमें भी विहार करते हुए प्रभुके दर्शन हों, ऐसी तत्त्वकी धुनि बनती है कि स्वप्नमें भी वे दर्शन होते हैं। निद्रामें इन्द्रियाँ सुप्त हो जाती हैं और इन्द्रियकी सुप्तिके कारण सोने वालेको विदित नहीं रहता कि मैं क्या कर रहा हूं ? तो किसी-किसी समयमें विकल्पों द्वारा यह कुछ अनुभव करता है, सो यह योगी मुनि स्वप्नमें भी प्रभुका ध्यान रखता है।

तस्य लोकत्रयैश्वर्यं ज्ञानराज्यं स्वभावजम् ।
ज्ञानत्रयजुषां मन्ये योगिनामप्यगोचरम् ॥२०४९॥

प्रभुका परम ऐश्वर्य—प्रभुका तीन लोकका ईश्वरत्व कितना महान है वह स्वरूपदृष्टिसे विदित होता है। सभी जीवोंको सुख दुःख दें, उनसे पाप पुण्य करायें, उन्हें उसका फल दें ऐसी व्यग्रता तो होती नहीं है प्रभुमें। तब फिर महिमा क्या जानी जाय ? अज्ञानी लोग तो इसमें महिमा समझते हैं कि प्रभु हमपर नाराज हो जायें तो हमारा बिगाड़ कर दें, ऐसी बात चित्तमें हो तो वे प्रभुकी महत्ता जानते हैं, किन्तु ऐसा तो है नहीं। प्रभुकी महत्ता स्वरूपदृष्टिसे जानी जाती है। रागद्वेषकी अवस्थाका अभाव होनेसे आत्मामें वह ऋद्धि समृद्धि उत्पन्न होती है जिसका चमत्कार विलक्षण है। समस्त लोक जिनके ज्ञानमें प्रतिबिम्बित हो, इससे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भी बढ़कर कोई चमत्कार कल्पनामें आ सकता है क्या ? इसी कारण वे विशुद्ध आनंदमें निरन्तर एक रूपसे तन्मय रहे, इससे और अतिशय आत्माका क्या कहा जा सकता है ? ऐसा तीन लोकका ईश्वरत्व और ज्ञानराज्य यों स्वभावसे उत्पन्न हुआ है। यहाँ भी लौकिक प्रसंगों में जो प्रधान लोग हैं वे इसमें अपनी प्रभुता समझते हैं कि हमारा ज्ञान विशिष्ट है। हम जो जानते हैं सो होता है। राज्यमें, समाजमें, व्यवस्थामें किसीमें भी हम अधिकसे अधिक जानें और जो होवेगा उसको हम अभीसे जान लें, इसमें वे ईश्वरत्व समझते हैं और परिचित लोगों पर राज्य समझते हैं। तो वीतराग सर्वज्ञदेवके ज्ञानमें जब समस्त लोक प्रतिभासित हुआ है तो इसे कितना बड़ा चमत्कार कहें, ऐश्वर्य कहें ? और फिर भी वह ज्ञानस्वभावसे उत्पन्न है। यहाँ तो बनाकर, साधन जुटाकर, दिमाग लड़ाकर कुछ निमित्तोंसे अनेक तरहसे हम ज्ञान बनाया करते हैं, किन्तु प्रभुका ज्ञान निरावरण होनेसे अब ऐसा फैल गया निसीमः निर्बाध कि सत् हो, कुछ भी कहीं भी, तो वह उनके ज्ञानमें प्रतिबिम्बित है।

प्रभुका वचनातीत ऐश्वर्य—हम जब कुछ थोड़ा बहुत पदार्थोंको जानते हैं सो भी यह ज्ञानकी ही तो महिमा है। जिसके आवरण बिल्कुल नहीं रहे वे सब सत्को न जानें तो यह तो एक अतथ्यकी बात होगी। इस ज्ञानमें जाननेकी कला है, और इतने उपद्रव, विडम्बनायें, विरोध होनेपर भी कुछ हमारा ज्ञान जान लिया करता है तो जहां कर्मका उपद्रव नहीं नहीं, रागादिककी विडम्बनायें नहीं, आवरण नहीं, वह ज्ञान समस्त सत्को न जाने तो कारण बतलावो अथवा मर्यादा सहित जाने, आगेकी न जान पाये तो इसका कारण बतलावो। प्रभुका ज्ञानराज्य इतना सातिशय है, स्वभावज है कि अपने आप ही समस्त सत पदार्थ उनके ज्ञानमें प्रतिभासित होते हैं। स्वरूपदृष्टिसे हम प्रभुकी महिमा समझ सकते हैं, अन्यथा वह हमें सुख नहीं देते, दुःख नहीं देते, फिर महिमा क्या समझेंगे ? प्रभुका महत्त्व तो उनके स्वरूपदर्शनसे ही विदित होगा। उन प्रभुका इतना महान ऐश्वर्य है कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानके धारी योगियोंको भी उनके ऐश्वर्यकी छाया नहीं मिल पाती। यहां ज्ञानी पुरुष प्रभुका ध्यान कर रहे हैं तो उन प्रभुकी महिमाको वे ज्ञानी ही समझते हैं।

साक्षान्निर्विषयं कृत्वा साक्षं चेतः सुसंयमी।
नियोजयत्यविश्रान्तं तस्मिन्नेव जगद्गुरौ ॥२०५०॥

मनको निर्विषय करके प्रभुमें मनको नियोजित करनेका अनुरोध—यद्यपि अल्पज्ञानके धारी पुरुष सर्वज्ञदेवका स्वरूप यथार्थ नहीं उपयोगमें ले सकते हैं अर्थात् उनकी जो अनन्त महिमा है उस अनन्त महिमारूप उनका स्वरूप ऐसे छद्मस्थ ज्ञानोंके अगोचर है। तो भी इन्द्रिय और मनको विषयोंसे हटाकर संयमी मुनि साक्षात् उसी भगवानके स्वरूपमें अपने मन को लगाते हैं। क्या करें सो बतावो। कहां रहें, कहां जायें, कितना समागम जोड़ें, कितनोंका

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्नेह बनायें, कितनी ममता करें कि यह ठीक गुजारा हो जाय, शान्त जीवन बन जाय ? कुछ उपाय तो बतावो। सिवाय प्रभुनाम स्मरण और आत्मस्वरूप मननके और क्या किया जाय ? कोई पुरुष वास्तविक धोखेसे रहित अपनी साधनाको बना ले तो यह योगी यद्यपि प्रभुस्वरूप के उस अनन्त विकासको अपने ज्ञानमें नहीं ले सकते, फिर भी कुछ निर्णय तो किया ही है। सो प्रभुमें वे अपना चित्त बसाया करते हैं। मेरा शरण बाहरमें यथार्थ कौन है ? तो अंगुली उठायें प्रभुकी ओर, और परमार्थसे अपना आत्मस्वरूप ही शरण है। जब हम प्रभुकी उपासना कर रहे हैं उस समय भी प्रभुकी उपासनारूप जो हमारा गुणस्मरण है वही हमारा शरण बन रहा है। वास्तवमें खुद ही खुदके जिम्मेदार हैं। अपनी जिम्मेदारी न समझें तो संसारमें हमें रुलना पड़ेगा और अपनी जिम्मेदारी समझ सकें तो संसारसे मुक्त होनेका उपाय बनाया जा सकता है। देख लो यहांके इस लगावमें कुछ भला नहीं होनेका। यह भी है मनुष्य-जीवनका एक अंग।

जीवोंमें शरणमान्यताकी प्रकृति—गृहस्थावस्थामें भी कोई शरण है तो अपने आपमें बिराजमान प्रभुस्वरूपका स्मरण है। तो योगीजन चाहे उसका पार न पा सकें तो भी वे प्रभुस्वरूपमें ही अपना मन लगाया करते हैं। देखिये किसीको आदर्श माननेका, अपना देवता माननेका सबके अभ्यास पड़ा हुआ है। प्रत्येक मनुष्यके चित्तमें कोई खास एक विशिष्ट जीव समाया हुआ होगा। किसीके चित्तमें प्रभु समाया है तो वह उनका देव बन गया। मोहियोंके चित्तमें कोई पुत्र समाया है, स्त्री समाई है, नेतागिरी समाई है, उनके लिए वे ही देव बन बैठे। उन्हें इससे आगे कुछ पता ही नहीं है। कुवेंमें जो मेढक होता है उसे तो इतना ही पता है कि इतनी ही बड़ी दुनिया है, इससे आगे उसे पता ही नहीं चलता। एक बार कोई हंस उस कुवें पर आया तो मेढक पूछता है कहो भाई हंस तुम कहासे आये ? तो हंस बोला—मानसरोवरसे। ··· मानसरोवर कितना बड़ा है ?—बहुत बड़ा। तो मेढक एक पैर फैलाकर कहता है—क्या इतना बड़ा ? ···· अरे इससे भी बड़ा ? फिर दूसरा पैर भी फैलाकर कहता है—तो क्या इतना बड़ा ? ···· अरे इससे भी बहुत बड़ा। तो मेढक एक जगहसे दूसरी जगह उछल कर कहता है—तो क्या इतना बड़ा मानसरोवर है ? ···· अरे अभी तो इससे भी बहुत बड़ा मानसरोवर है ? ···· तब मेढक कहता कि इससे बड़ी तो दुनिया भी नहीं। तो भैया ! क्या कहे मेढक ? उस मेढकका तो केवल उस कुवेके अन्दरकी थोड़ीसी जगहका ही परिचय है, ऐसे ही इन मोही जीवोंको जो भी समागम प्राप्त हुआ है बस उतनेको ही अपनी दुनिया समझते हैं। बस ये ही तो मेरे सब कुछ हैं, यह ही तो सब करनेका मेरा काम है आदि। उन्हें इसके आगे और कुछ पता ही नहीं।

चित्तवृत्तिके अनुसार बाहिर अवलोकन—जो जैसे चित्तका होता है उसे वही बाहर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सूझता है। क्या करे, ज्ञान ही तो जाननहार है। जैसा ज्ञान है वैसा जानेगा। एक नाई था, जो काफी मजेमें था, घरमें घी दूध वगैरह भी खूब रहता था। एक दिन वह बादशाहकी हजामत बनाने गया। सो बादशाहने पूछा—कहो खवास जी हमारी प्रजामें कैसा सुख है ? तो खवास बोला—महाराज आपकी प्रजामें बड़ा सुख है। खूब घी दूधकी नदियां बह रही हैं। बादशाह समझ गया कि यह खूब सुखी है इसलिए सारी प्रजाको सुखी समझ रहा है। सो क्या किया कि किसी दीवानको बुलाकर कहा कि इस खवासपर कोई झूठा आरोप लगाकर १०-१५ दिन के लिए इसके जानवरोंको मंगाकर कांजीहौजमें बंद कर दो। दीवानने वैसा ही किया। जो भी १०-१५ गाय भैंस उसके घर थीं सब मंगवाकर कांजीहौजमें बंद करवा दिया। जब एक हफ्ते बाद फिर वह खवास बादशाहकी हजामत बनाने गया तो बादशाहने पूछा—खवास जी हमारी प्रजाका क्या हाल है ? तो खवास बोला—महाराज आपकी प्रजा बड़ी दुःखी है, घी दूधके तो किसीको दर्शन ही नहीं होते। तो सभी जगह यही बात दिखती है कि जिसके चित्त में जो समाया हुआ है उसे ही वह सही निरखता है। जो योगी जन हैं, जिन्हें निरंतर अपने ज्ञानस्वरूपके अवलोकनकी ही रुचि है, सबसे वैराग्य है, बाहरमें कुछ सुहाता नहीं है ऐसे ज्ञानी पुरुष अपने आत्माको उस प्रभुस्वरूपके स्मरणमें ही लगाया करते हैं।

तद्गुणग्रामसंलीनमानसस्तद्गताशयः ।
तद्भावभावितो योगी तन्मयत्वं प्रपद्यते ॥२०५१॥

परमात्मत्वभावित योगीके तन्मयत्वका लाभ—योगी प्रथम तो भगवानके गुणसमूहमें अपने मनको लीन करते हैं और फिर प्रभुस्वरूपकी भावनासे स्वयं भावित होते हैं। इस प्रकार ये योगी परमात्मस्वरूपको प्राप्त करते हैं। इस श्लोकमें बहुत अच्छी योगसाधनाकी विधि कही गई है। परमात्मस्वरूपकी प्राप्तिके लिए इनके ये क्रमशः तीन यत्न हैं—प्रथम तो परमात्मा के स्वरूपमें मनको लगाना। इसका भाव सीधा है। परमात्मामें जो गुण पाये जाते हैं उनको देखकर निरखकर उनके अनुरागसे उसमें मन लगाये, दूसरा अभ्यास होता है कि उसमें आशय अभिप्राय पड़ा रहता कि जो प्रभुका स्वरूप है वह मेरा स्वरूप है। जिस रत्नत्रयके मार्गसे ये विशुद्ध हुए हैं उस मार्गसे यहां भी विशुद्धता हो सकती है। जो स्वरूप उनका है वह स्वरूप मेरा है। मुझे क्या करना है, प्रभुभक्तिसे हमारा क्या कर्तव्य है, यह सब आशय उस प्रभुभक्त में रत हो जाता है। फिर तीसरे प्रयासमें यह तद्भावसे प्रभावित होता है—सोऽहं। जो वह है सो मैं हूं। जो स्वरूप प्रभुका है उस स्वरूपके रूपमें अपनी भावना बनाता है और तद्रूपसे अपने आपकी सम्भावना करता है और ऐसे भावोंमें भावित हो जाता है कि तन्मयता आ जाय। तो ऐसी तन्मयताको वह तुरंत प्राप्त कर लेता है, और फिर कुछ समय बाद उस परमात्मत्वपदको प्राप्त कर लेता है। जैसे जलते हुए दीपककी उपासना कोई दूसरा दीपक करे

http://sahjanandvarnishastra.org/

अन्य दीपक भी अधिक जल उठता है, और प्रकाशमान हो जाता है, इसी तरह कोई भक्त अपना स्वरूप प्रभुके स्वरूपमें जोड़े तो वह भक्त भी उसके प्रसादसे तद्रूप हो सकता है, क्योंकि वह प्रभुके स्वरूपकी निरखसे अपने स्वरूपको जकड़ करके अपनेमें गुण उत्पन्न कर लेता है।

ध्यानके प्रारम्भिक यत्न—ध्यानके लिए जो प्रथम यत्न है वह इस प्रकार भी हो सकता है—स्थिर आसनसे सीधे बैठकर जिसमें श्वासकी नली मुड़े नहीं, सीधी रहे, वहां और कुछ न बन सके तो यह देखता रहे कि अब मेरी कौनसी श्वास निकल रही है ? जब श्वास लेते हैं और नासिकामें अंगुली लगाकर देखते हैं तो पता पड़ जाता है कि कौनसी श्वास चल रही है। यद्यपि श्वास लेनेसे कोई देवदर्शनकी बात बनती हो, सो बात नहीं है, पर चित्तको एकाग्र करनेकी यह भी एक विधि है। फिर इसके बाद अब हम श्वासके छोड़ने और लेनेमें जो कुछ छोटीसी एक आवाज चलती है, उस आवाजको ध्यानमें लें। जब श्वास लेते हैं तब सो की आवाज निकलती है और जब श्वासको बाहर छोड़ते हैं तो हं की आवाज निकलती है। इस चीजको करके भी आप देख सकते हैं। तो अब तो श्वासके लेने और छोड़नेके समय में हम सोहं सोहं सोहं धीरे-धीरे श्वासकी रफ्तारके साथ अब उस शब्दका ग्रहण करें, और बढ़े तो कुछ शब्दपर दृष्टि प्रधान न रखकर उस शब्दका जो वाच्य अर्थ है सो अर्थात् प्रभु और हं अर्थात् मैं। जो प्रभु हैं सो मैं हूं—यों निरखें। देखो यह मनुष्य रात दिन सोहं सोहं कि आवाज निकालता रहता है। अब उस आवाजमें शब्दोंका जोड़ करके हम उस वाच्यपर दृष्टि दें—जो प्रभु हैं सो मैं हूं, अब इसके बाद जब सो बोल रहे हैं तब उस शुद्ध स्वरूपपर दृष्टि दें जो प्रभुका स्वरूप है। और जब हं शब्द कहें तो अपने आपमें अन्तःप्रकाशमान उस विशुद्ध ज्ञायकस्वभावको लक्ष्यमें लें। सोहं। और जब स्थिरता हो जाय तो हम अहंका अनुभव करें। फिर इस प्रकार भी मंत्रका जाप करें। ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ शुद्धं चिदस्मि, सिद्धों को नमस्कार हो, मैं शुद्ध चित्त हूं। अहंकी बात नहीं कही अब, अहं तो अस्मिसे सम्बंधित है। दो ही तरहकी बात आई यहाँ—प्रभुध्यान व आत्मस्मरण। तो यह बात इस योगीके उन ३ अभ्यासभूमिकाओंमें आ गयी। प्रथम तो प्रभुके गुणसमूहमें मनको लीन करे, फिर इनके गुणोंमें अपना आशय लगा दे, फिर अंतमें जो अपना भाव है, स्वरूप है उस रूपमें अपनेको भावित कर दे। सोहं, यह मैं हूं।

तद्भावभावनाका प्रभाव—देखो एक बच्चेको भी जो ऊधम मचाता है उसे इतना कह दो कि अरे तू तो राजा है तो वह ऊधम मचाना छोड़ देता है। तो उसने क्या किया ? अपने चित्तको उसने भावित हो तो किया है। तू राजा है, राजा लोग तो ऐसा ऊधम नहीं किया करते। तो उस बच्चेने अपनेमें राजा भावको भावित किया, और उसने ऊधम मचाना छोड़ दिया। जो डाँट डपटसे नहीं मान सकता उसे अच्छे भावोंसे भावित कर दीजिये। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसका ऊधम मचाना छूट जायगा। फिर हम तो शुद्ध चैतन्यस्वरूपमात्र हैं ही, सो चाहे इस समय बाह्यस्थितिमें कैसे ही हों, फिर भी अपनी शक्ति अनुसार यदि ऐसा अनुभव करें कि परमात्माका जो स्वरूप है सो मैं हूं। परमात्मस्वरूपकी भावनासे अपनेको भावित बनायें तो हम अपने आपमें कितना ही उत्कर्ष पा सकते हैं।

यदाभ्यासवशात्तस्य तन्मयत्वं प्रजायते।
तदात्मानमसौ ज्ञानी सर्वज्ञीभूतमीक्षते ।।२०५२।।

तद्भावभावनाभ्यासका माहात्म्य—जब अभ्यासके वशसे उस सर्वज्ञ स्वरूपसे तन्मयता हो जाती है उस समय मुनि अपने असर्वज्ञ आत्माको सर्वज्ञ स्वरूपमें देखता है। यह सब अपने को शुद्ध भावोंसे भावित करनेका माहात्म्य है। जब कभी बच्चे लोग घोड़ा घोड़ाका खेल खेल खेलते हैं, घुटनोंके बल चलकर एक दूसरे बालकसे सिरमें सिर लड़ाते हैं, उस समय वे अपनेको घोड़ा अनुभव करते हैं। बादमें होता क्या है कि उन बालकोंमें परस्परमें हाथापाई हो जाती है और रोते हुए अपने-अपने घर भाग जाते हैं। तो उस समय वे बालक अपनेको घोड़ारूप अनुभव कर रहे थे, न कि बालकरूप। सुना है कि कोई अमरसिंह राठौरका नाटक हो रहा था। उसमें जो अमरसिंहका पार्ट कर रहा था उसने अपनेको वास्तविक अमरसिंह अनुभव कर लिया, उसे यह ध्यानमें न रहा कि मैं तो अमुक व्यक्ति हूं, यहाँ नाटक कर रहा हूं। उसके हाथमें थी सच्चकी तलवार। सो उसने क्या किया कि अपने विरोधीका सिर उसी तलवारसे उतार दिया। तो वहाँ भी क्या था ? उसने अपनेको उसीरूपमें भावित किया था। तो तद्रूपभाविकताकी बात कह रहे हैं, जैसा भावित बनाओ, परिणति तदनुरूप हो जाती है। वह भक्त यद्यपि उस समय सराग है तथापि उस वीतराग प्रभुके स्वरूपमें एक चित्त होकर तन्मय हो जानेके कारण अपनेको उस समय प्रभुस्वरूप रूपमें निरखता है। सो वह किस प्रकार निरखता है, सो कहते हैं—

एष देवः स सर्वज्ञः सोऽहं तद्रूपतां गतः।
तस्मात्स एव नान्योऽहं विश्वदर्शीति मन्यते ।।२०५३।।

तद्भावभावनामें स्वसंवेदन—जिस समय वह अपनेको सर्वज्ञस्वरूपमें देखता है उस समय ऐसा मालूम होता है कि यही सर्वज्ञदेव है। ऐसे उस प्रभुके स्वरूपके निकट वहींका वहीं तद्रूपको प्राप्त होता है। इस कारण वही सर्वका देखने वाला मैं हूं अन्य नहीं हूं, इस प्रकार अपने आपमें इस उत्कर्षताको निरखता है। मानते तो सभी लोग हैं अपनेको कुछ न कुछ। अपनेको लटोरा घसीटा जैसा माननेमें तो कुछ उत्कर्ष न मिलेगा अर्थात् मैं अमुक परिवारका हूं, इतने बच्चों वाला हूं, अमुक पोजीशनका हूं, अमुक जाति कुलका हूं, इत्यादिक रूप अपनेको निरखनेसे अपना उत्कर्ष न मिलेगा। इससे ये मुनिराज अपनेको सर्वज्ञके गुणानुरागमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इतना लीन कर रहे हैं, अपने आपको यों ही अनुभव कर रहे हैं कि यह वही सर्वज्ञ है, यह वही मैं हूं, इस प्रकार अपने आपमें विश्वदर्शी रूपसे तत्त्वको निरख रहे हैं। रूपस्थध्यानमें प्रभुभक्तिकी बहुतसी बातें कहकर अब उस योगीकी महिमाकी बात कह रहे हैं। जो ध्यान करता है वह भी तो महान् है। उसकी महिमा कैसी होती है ? प्रभुकी महिमा बतानेके बाद अब यह भक्तकी महिमा बताई गई है।

येन येन हि भावेन युज्यते यन्त्रवाहकः।
तेन तन्मयतां याति विश्वरूपो मणिर्यथा ॥२०५४॥

यन्त्रवाहककी भावानुसार तन्मयता—यह मंत्रवाहक जीव जिस-जिस भवमें युक्त होता है उस-उस भवसे तन्मयताको प्राप्त होता है। जैसे स्फटिक मणि जिस रंगवाली उपाधिसे युक्त होती है उस प्रकारसे उस रंगमें तन्मय होती है, अथवा उस उपाधिको तो युक्त क्या होता है, वह तो निमित्त मात्र है। वह उसका निमित्त पाकर अपने आपमें जिस रंग छाया परिणमनसे युक्त होती है उस रंग छायामें तन्मय होता है। इस ही प्रकार यह यंत्रवाहक जीव जिस भाव को करता है उस भावमें तन्मय होता है। इस जीवको यंत्रवाहक कहा है, एक यंत्रको ढोने वाला। यह शरीर यंत्र है, और जैसे किसी भी मशीनका चलाने वाला कोई नहीं हो, चाहे वह कितनी ही ओटोमेटिक मशीन हो, फिर भी और नहीं तो बटनका खोलने वाला किसीका निरीक्षण करने वाला कुछ भी मूलमें न हो तो उस यंत्रकी गति नहीं होती। इसी प्रकार इस शरीर यंत्रमें एक जीवतत्त्व है, उस जीवके संयोगसे यह यंत्र भी ढोया जा रहा है। तो यह यंत्रवाहक जीव जब जैसा भाव करता है तब उस भावमें तन्मय होता है। प्रभुभक्तिके प्रसंगमें कहा जा रहा है कि यह योगी जब इस भावमें अपने आपको लगाता है, प्रभुके गुणोंका चिंतन करके यह मैं सर्वज्ञ हूं, यह मैं इस ही स्वरूप वाला हूं, इस प्रकारका जब उस भावमें अपने उपयोगको तन्मय करता है, भले ही देखा अपनेको शक्तिरूपसे और प्रभुको देखा व्यक्तिरूपसे, किन्तु सम्बंध बनाया और उस भावसे अपनेको नियत किया तो यह भी इस प्रकारके उपयोग-मय होता है कि मैं सर्वज्ञ हूं या प्रभुसम विकासवान हूं, इस प्रकार उस दृष्टिमें यह तन्मयताको प्राप्त होता है।

भव्यतैव हि भूतानां साक्षान्मुक्तेर्निबन्धनम्।
अतः सर्वज्ञता भव्ये भवन्ती नात्र शङ्क्यते ॥२०५५॥

भव्यतामें मुक्तिकारणता—प्राणियोंकी भव्यता ही भव्यत्व नामक गुण साक्षात् मुक्ति का कारण होता हैं। इस भव्यत्वको एक तो दूरार्थमें भी लगा सकते हैं और एक भव्यत्वके निकट अर्थमें, जिसका कि संसार निकट रह गया है और रत्नत्रय रूप परिणमन चल रहा है यह उसका भव्यत्व है। जो निकट भव्य है उसकी भव्यता तो निकट कालमें ही मुक्तिका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

वरण करायेगी, लेकिन भव्यत्वगुणकी महिमा यहाँ बता रहे हैं। भव्यक्त्व न हो तो मुक्तिका पात्र नहीं होता। अथवा सर्वज्ञने जीवोंमें छांटकर यह संज्ञा नहीं रखी कि इतने जीव भव्य हो गए इतने अभव्य, किन्तु जिन जीवोंका ऐसा ही होनहार है कि वे कभी भी रत्नत्रयको सम्य-क्त्वको नहीं प्राप्त कर सकेंगे, उनका नाम रखा दूरातिदूर भव्य। कहीं नामकी संज्ञामें इन जीवोंमें छंटनी नहीं की गई है। जो कुछ कालमें मुक्त होंगे, सम्यग्दृष्टि होंगे उन्हें निकटभव्य कहते हैं और जहाँ ऐसी योग्यता ही नहीं है उन्हें अभव्य बताया है। तो साक्षात् मुक्तिका कारण प्राणियोंकी भव्यता ही है, और इससे हम समझते हैं कि यह सर्वज्ञता भव्यमें होती है।

उत्कर्षका मार्ग—सभी जीव अपना उत्कर्ष चाहते हैं। हमारी उन्नतिकी स्थिति हो ऐसा सभी चाहते हैं, पर यह तो निर्णय करिये कि उन्नतिकी स्थिति वास्तवमें है क्या ? विशेष धनिक बन जाना, लखपति, करोड़पति अथवा अरबपति बन जाना यह क्या जीवकी उन्नति है ? अथवा लोकमें बड़ी नामवरी फैल जाना यह क्या जीवका उत्कर्ष है ? जीवका उत्कर्ष तो वह है जिसमें जीव धोखेसे रहित स्वाधीन वास्तविक शान्ति प्राप्त कर सके। तो अब इन उत्कर्षके लक्षणोंसे बँधकर इनकी खोजमें चलिये। हम कौनसा प्रयत्न करें कि इन उत्कर्षोंको पायें ? इसको जरा जल्दी समझनेके लिए हमें उस आदर्शका भी चिन्तन करना होगा कि जिसके इन उत्कर्षोंको प्राप्त कर लें, बस इसीसे सम्बंधित है प्रभुभक्ति। प्रभुभक्तिमें भक्त पुरुष प्रभुके साथ ऐसा निःसंकोच अपने भाव जोड़ता है, उसके निकट पहुंचता है कि प्रभुसे अपनेको जुदा नहीं निरखता।

प्रभुभक्तिमें निःसंकोचताकी घटना—एक बार तो भक्तिमें भक्त यह कह बैठा कि हे प्रभो ! यह तो बतावो कि तुम हमें उठाते हो या हम तुमको उठाते हैं ? यह एक प्रश्न रख दिया भक्तने। उठानेके मायने उच्च प्रकट करना, उच्च बनाना। तो बतलावो कि प्रभु भक्त को ऊँचा उठाते हैं या भक्त लोग प्रभुको ऊँचा उठाते हैं। बात करते करते ऐसे ही कह दिया भक्तने कि भक्त प्रभुको ऊँचा उठाता है। इसे सुनकर यों अचरज करेंगे कि कैसी अनहोनी बात बतायी लेकिन समाधानमें एक समस्या और रख दी कि यह बतावो कि पानीमें हवासे भरी हुई एक मसक डाल दी जाय और उसपर मनुष्य तिर करके किनारे पहुंचता है तो यह बतावो कि मसकको पुरुषने तिरा दिया या पुरुषने मसकको तिरा दिया ? इसीका ही उत्तर बता दो, क्या उत्तर होगा ? कुछ तो ऐसा भी लगता कि मसकने पुरुषको तिरा दिया और कुछ ऐसा तो है ही कि पुरुष उस मसकको लिए जा रहा है। तो यह ही बात हम और आपके बीचके प्रश्नकी है। यह तो मानते ही हैं सब कि प्रभुभक्तको तारते हैं, यह निमित्त दृष्टिसे कथन है, पर यह भी तो देख लो कि भक्तजन न हों तो प्रभुको पूछे कौन ? प्रभुका

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वरूप जाने कौन ? उनकी शोभा रहे कैसे ? तो भक्तोंने तो प्रभुको उठाया है।

भक्तकी प्रभुसे एक मांग—भक्तिरसमें चूंकि आशय बड़ा विशुद्ध है, गुणानुराग है इसलिए उस आशयमें किस ही प्रकार प्रभुकी भक्ति करें पर अभिलाषा यह होनी चाहिए कि हम प्रभुके स्वरूपसे अपनेको अभेद बनाये हैं। एक बार भक्तिमें भक्त कहता है कि हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हो ना, तो देखो—हमने आपको अपना कितना नाटक दिखाया कि आज तक अनादिकालसे लेकर अब तक अनन्त जन्म किए, तो हमने आपको कितने नाटक दिखाये ? हां हां अनन्त नाटक दिखाये। तो नाटक दिखाने वालेपर आप प्रसन्न हुए कि नहीं ? नाटक दिखाने वालोंके मनमें यह रहता है कि मेरा मालिक मेरे नाटकको देखकर खुश हो जाय। तो मैंने तो आपको कितने ही नाटक दिखाये, पर आप मुझपर प्रसन्न हुए कि नहीं ? यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो जो मैं मांगता हूं सो दो। मैं मांगता हूं मुक्ति, निर्वाण। और यदि आप प्रसन्न न हुए हों मेरे नाटकको देखकर, तो मेरे उन नाटकोंको खतम करा दो जिनको देखकर आप खुश ही नहीं होते। जब आप खुश ही नहीं होते तो फिर उन नाटकोंकी जरूरत ही क्या है ? जब भाव विशुद्ध रहता है, गुणानुराग रहता है तो भक्तिमें कैसा ही कहा जाय, उद्देश्य यही है प्रभुका गुणानुराग।

अयमात्मा स्वसामर्थ्याद्विशुद्धयति न केवलम्।
चालयत्यपि संक्रुद्धो भुवनानि चतुर्दश ॥२०५६॥

आत्मसामर्थ्यका अनुपात—देखिये—आत्मामें अनंत सामर्थ्य है, विलक्षण शक्ति है। यदि कोई आत्मा अपने आत्माके विशुद्धस्वरूपका अनुभव करके उसमें रम करके सर्वसंकटोंसे, परभावोंसे, बंधनोंसे छूटकर निर्वाणको प्राप्त करता है तो इसको आप उसके अनंत अद्भुत सामर्थ्यका चमत्कार कहेंगे या नहीं कहेंगे ? और यह जीव जिस किसी भी प्रकारसे अपने आत्मस्वभावकी सुधि रखकर जो निगोद अन्य स्थावर या कीड़े मकोड़े कितनी ही तरहके पशु पक्षी मनुष्य इनमें जन्म लेता है तो ऐसा आकार बना लेता है, कितनी तरहके परिणमन करता है, इसे भी आप जीवकी सामर्थ्यका एक चमत्कार कहेंगे या नहीं ? सामर्थ्यका यहाँ भी उपयोग है और सामर्थ्यका निर्वाणके लिए भी उपयोग है। तो जब यह जीव अपनी सामर्थ्य से विशुद्धिको प्राप्त होता है तो यह निर्वाणको प्राप्त कर लेता है और अगर आत्माकी सामर्थ्यका उपयोग जब यह क्रुद्ध हो जाय तब करे तो चौदह प्रवनोंको भी चलित कर देता है।

चौदह भुवनोंको चलित कर देनेका भाव—चौदह भुवनोंको चलित कर देने के सम्बन्धमें एक यह घटना भी ले सकते हो कि जब यह जीव अपने आप पर क्रोधी बन जाता है, अपने स्वरूपकी दृष्टि नहीं रखता, जब अपने आपपर इतनी क्रूरताका बरताव करता है तब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

यह सर्वलोकोंमें जन्म धारण करता है। दूसरी बात सामर्थ्यमें बतायी गई है कि सामर्थ्य इतनी है कि वह समस्त भुवनोंको भी चलित कर दे। इन्द्रका सामर्थ्य बताते ही हैं—और आगममें भी कहा है कि इन्द्रमें इतनी सामर्थ्य है कि जम्बूद्वीपको पलट दे। होता नहीं है ऐसा और न आगे होगा भी ऐसा, पर एक सामर्थ्यका अनुमान करानेके लिए कहा है। इस ही ढंगसे यह भी दूसरा अर्थ ले सकते हैं कि जब यह जीव सन्नद्ध हो जाता है तो यह चौदह भुवनोंको भी चलित कर सकता है। चौदह भुवन कौन हैं ? इसे कोई लोग किसी तरह कहते हैं पर एक स्थान विशेषकी पद्धतिसे चौदह भवन लगा लीजिए—७ नरक, ८ वाँ भवनवासियों का लोक, ९ वाँ मध्यलोक, १० वाँ ज्योतिषलोक, ११ वां स्वर्गलोक, १२ वाँ नवग्रैवेयक, १३ वां नव अनुदिश और १४ वां पंचानुत्तर ऐसे चौदह भवन कहे जा सकते हैं।

जीवकी संसारदशामें सामर्थ्यकी विचित्रता—जीवकी सामर्थ्य इस ढंगसे भी देखें कि जब यह जीव अपने ज्ञानस्वरूपका आलम्बन करता है तो निर्वाण प्राप्त करता है और जब परकी ओर दृष्टि करता है तो कैसे कैसे विचित्रभव धारण करता है, परिणमन करता है। लो एक तरहसे देखो और प्रभुकी सामर्थ्य तो एक ही किस्मका काम करती है, पर इन संसारी सुभटोंकी सामर्थ्य तो नानाप्रकारके कार्य करने की है। कहो, प्रभु तुम कर सकते हम संसारी सुभटों जैसे काम ? प्रभु नहीं कर सकते, पर ये संसारी सुभट देखो तो कितनी तरह के कार्य कर रहे हैं, जन्म धारण कर रहे हैं, लेकिन ये सब विडम्बनायें हैं, अशान्ति हैं, उपद्रव हैं, मलिनता हैं, इस सामर्थ्यके उपयोगमें क्या रखा है ? वास्तविक सामर्थ्य, वास्तविक पुरुषार्थ तो वही है जहाँ अनंत ज्ञानका विकास है और अनंत आनंदका अनुभव है।

त्रैलोक्यानंदबीजं जननजलनिधेर्यानपात्रं पवित्रम्।
लोकालोकप्रदीपं स्फुरदमलशरच्चंद्रकोटिप्रभाढ्यम्।
कस्यामप्यग्रकोटौ जगदखिलमतिक्रम्य लब्धप्रतिष्ठं,
देवं विश्वैकनाथं शिवमजमनद्यं वीतरागं भजस्व ॥२०५७॥

प्रभुभजनका मर्म—रूपस्थध्यानके प्रकरणका यह अन्तिम छंद है। इसमें प्रभुभक्तिकी बात चली आ रही थी। आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसे वीतराग प्रभुकी सेवा करो, अर्थात् उनका भजन करो। भजन करना और सेवन करना दोनोंका एक अर्थ है। भज सेवायां, भज् धातुका सेवा अर्थ है है। पर लोकमें भजन नाम तो रख दिया अच्छे कामका और सेवन नाम रख दिया साधारण अथवा निकृष्ट कामका। लेकिन यहाँ भी देखो कि सेवनमें पद्धति क्या होती है ? जिसको सेवन करे उसमें अनुराग और एकमेकपना तन्मयता अनुभूति कैसी विशिष्ट होती है, जो बात भजन शब्दके कहनेपर विदित नहीं हो पाती है। भजनमें तो अब भी द्वैत जैसी बात लगती है। ये प्रभु हैं, ये भक्त हैं और यह भगत प्रभुका भजन कर रहा है, वह

http://sahjanandvarnishastra.org/

भजन ऐसा मालूम होता है कि जैसे ऊपरी पृथक्सी बात की जा रही हो, लेकिन भजनका भी अर्थ सेवन है जिससे यह अर्थ लगायें कि प्रभुके गुणोंका ध्यान रखकर उन गुणोंके सदृश जो गुण हैं स्वयंके अथवा स्वयंके क्या, प्रभुके क्या, गुण तो गुण हैं, ऐसे गुणस्वरूपमें उपयोगको तन्मय कर देवे, उसका नाम है वास्तविक भजन। तो ऐसी अभेदबुद्धिसे, सेवनपद्धतिसे वीतराग प्रभुका भजन करें।

प्रभुकी त्रैलोक्यानन्दकारणता—कैसे हैं वे वीतराग प्रभु ? जो तीन लोकके जीवोंके आनन्दका कारण हैं। देखो ना, कितने प्रकारके भक्त हैं, कोई सम्यक्त्व नहीं पा सके ऐसे भी भक्त हैं, कोई सम्यक्त्व प्राप्त कर चुके हैं ऐसे भी भक्त हैं और कोई उस गुणप्राप्तिके योगमें लग रहे ऐसे भी भक्त हैं। इन सब भक्तोंको आनन्द मिल रहा है, किसीको किसी ढंगसे और किसीको किसी ढंगसे। इसमें तीन दृष्टांत दिये हैं, एक मिथ्यादृष्टि पुरुष जो कि प्रभुकी भक्ति कर रहा है उस भक्तिमें भी चाहे वह समस्या उसने नहीं सुलझा पायी लेकिन सांसारिक विषयों में आनंद पा रहा है, और ऐसे सम्यग्दृष्टिजन जिन्होंने तत्त्वका निर्णय किया है वे विवेकके साथ प्रभुके गुणोंको चितार कर चुके, वैसे ही गुण अपनेमें हैं तो एक उन गुणोंके चिन्तनमें स्वयंके गुणोंमें विकास हुआ, अतएव वह उस प्रकारका विशुद्ध आनन्द पा रहा है। और योगीश्वर लोग जो प्रभुके गुणोंमें अभेद होकर उपासना करते हैं वे अपनेमें विशिष्ट आनंद पाते हैं, जिसे हम आनंदसे परे आनंद कह सकते हैं। आनंदमें फिर भी एक विकल्पकी कल्पना कर लिया, मैं आनंदमय हूं और इससे परे आनंद जो आकुलतारहित होनेसे आनंद है, पर आनंद का विकल्प तक भी नहीं है। जिसे कोई लोग असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। आनंदसे परे भी एक उच्च आनंदकी स्थितिमें पहुंच जाते हैं ये योगीश्वर। ये समस्त जीवोंके आनंदके बीज हैं। और आप पूछ सकते हैं कि जो कीड़ा मकोड़ा है उनके लिए वे आनंदके कैसे कारण पड़े ? तो प्रभुका उपदेश हुआ, उन उपदेशोंका पालन किया विवेकी पुरुषोंने। उपदेशमें बात आयी है कि जीवोंको रक्षा करो, किसी जीवको सतावो नहीं। तो इन भक्तोंने प्रभुकी आज्ञा मानी, वे किसी जीवको सताते नहीं। तो इन भक्तोंने उस उपदेशका पालन किया जिससे उन जीवोंकी रक्षा हुई। ये प्रभु तीनों लोक, अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोकमें रहने वाले भक्तोंके आनन्दके कारणभूत हैं।

प्रभुकी संसारतारणता—ये प्रभु संसारसमुद्रके जहाज हैं। जैसे जहाजमें चलकर यात्री समुद्र पार कर सकते हैं ऐसे ही प्रभुके गुणोंका सहारा लेकर उसके स्मरण ध्यान और मननके प्रसादसे संसारसमुद्र पार कर लिया जाता है। है कितना संसार ? भक्त कहता है कि जब मैंने अपने स्वरूपको यथावत् निरख लिया तो फिर इस संसारसमुद्रका क्या तिरना, यह तो एक चुल्लू बराबर है, इसके पार करनेमें क्या कठिनाई ? एक छोटासा योग है। कोई कहे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि हमें निर्वाणके मार्गकी बात, मुक्ति कैसे मिले उसकी बात थोड़े शब्दोंमें बता दीजिये—तो थोड़े शब्दोंमें भी सुन लो—करने वाले करें चाहे न करें, पर शब्द तो सुन ही लो। 'जित पिट्ठा तित दिट्ठा, जित दिट्ठा तित पिट्ठा।' जहाँ पीठ किए हैं, जिस तत्त्वके लिए हम पीठ किए हैं उस तत्त्वके लिए दृष्टि हो और जिसपर हम दृष्टि लगाये हैं उसपर हमारी पीठ हो, कितना एक भीतरी योग है। केवल एक ज्ञानकी दिशा भर ही तो बदलनी है। लो निर्वाणका कितना सुगम उपाय मिला। तो ये प्रभु संसारसमुद्रसे तिरनेके लिए जहाजकी तरह पवित्र हैं।

प्रभुप्रकाश—लोक और अलोकको जाननेके लिए उत्कृष्ट प्रदीप हैं। जैसे दीपक बहुत प्रकाश कर देता है ऐसे ही ये प्रभु अपने ज्ञानके द्वारा समस्त लोकालोकको प्रकाशित करते हैं। जिनकी निर्मल शरद चन्द्रकी किरणें शरदकालीन चंद्रमाकी प्रभाकी तरह स्फुरायमान हो रही है। शरदकालीन चंद्रमा अर्थात् असौज सुदी पूर्णिमाका चंद्र जैसे एक निर्मल कान्ति और शृङ्गारको लिए हुए है ऐसी किरणोंकी तरह जिनकी प्रभा स्फुरायमान है ऐसे वीतराग प्रभुको भजो। ये प्रभु किसी भी चंद्रकान्तिमें समस्त संसारका उल्लंघन करके अपनी प्रतिष्ठाको पाये हुए हैं। ये प्रभु समस्त गुणसम्पन्न हैं। ऐसे सर्व गुणसम्पन्न सर्व दोषोंसे रहित तीनों लोकके नाथ निर्दोष वीतराग प्रभुका भजन करो।

प्रभुकी सकलगुणसम्पन्नता—श्रीमन् मुनि मानतुंग जी ने कहा है कि हे प्रभो! आपमें यदि सारेके सारे गुण समा गये, समस्त गुणोंने यदि आपका आश्रय ले लिया तो इसमें आश्चर्य क्या है? हम तो इसमें कुछ भी तारीफकी बात नहीं समझते। क्यों? ये सारेके सारे गुण इन सारे संसारी जीवोंके पास पहुंचे तो उन्होंने उन बेचारे गुणोंको आश्रय ही न दिया, जावो जावो यहाँ तुम्हारे लिए जगह नहीं है ऐसा कहकर हटा दिया। सो वे बेचारे गुण कहीं स्थान न पा सकनेसे आपमें आ गये। और सारे दोषोंको इन संसारी जीवों ने आश्रय दिया और कहा—आवो खूब आवो, तुम्हारे लिए सारी जगह खाली है। तो सारे दोष तो इन संसारी जीवोंमें बस गए, पर इन बेचारे गुणोंको किसी संसारी जीवने आश्रय न दिया तो वे बेचारे सारेके सारे गुण झक मारकर आपके पास आ गए। तो हे प्रभो! इसमें क्या आश्चर्यकी बात है? यह एक प्रभुकी भक्तिका ढंग है। प्रभुकी भक्तिमें गद्गद होकर वह भक्त इस तरहसे कह रहा है। तो ये प्रभु सर्वदोषोंसे रहित सर्वगुणसम्पन्न हैं। ऐसे वीतराग ज्ञानकी मूर्ति अरहंत प्रभुका रूपस्थध्यानमें ज्ञानी पुरुष ध्यान कर रहा है।

(रूपातीतध्यानवर्णन प्रकरण ४०)

वीतरागं स्मरन्योगी वीतरागो विमुच्यते।
रागी सरागमालम्ब्य क्रूरकर्माश्रितो भवेत् ॥२०५८॥

जगतके चराचर वैभवोंमें राग करके हैरान हो चुके पुरुष कुछ विवेक जगाकर इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तलाशमें हैं कि मैं किस जगह पहुंचूं कि मेरी ये सारी हैरानी दूर हो जायें। वह जगह कौन मिली इस विवेकीको ? वह जगह मिलती है रूपातीत। अर्थात् जहाँ शरीर नहीं, मुद्रा नहीं, किसी प्रकारका रूप नहीं, मूर्ति नजर न आये, केवल एक ज्ञानज्योतिमात्र तत्त्व बोधमें रहे ऐसा पद मिला इस विवेकीको मोक्ष। उस पदमें जानेसे पहिले उस तत्त्वार्थीको यह शिक्षा दी जा रही है कि देखो कैसे जाना चाहिए वहाँ ? जो वीतराग तत्त्वका स्मरण करता है और जो सराग पुरुषका सराग तत्त्वका आलम्बन करता है वह क्रूर कर्मोंके आधीन हो जाता है।

पञ्चेन्द्रियके विषय—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदिक क्रूर कर्मोंमें शान्ति नहीं है, वे मिट जाने वाले हैं। मोहमें ऐसा यह प्राणी ख्याल नहीं करता। यही कारण है कि जब कभी मिटता है यह वैभव तो एकदम बड़ा धक्का लगता है। यदि पहलेसे ही कोई इस बातका ध्यान रखे कि यह तो मिटनेके लिए ही है—चाहे जब मिट जाय, चाहे जैसे मिट जाय तो उसके मिटनेपर वह खेद न मानेगा, क्योंकि वह तो पहिलेसे ही समझ रहा था कि यह मिटेगा अवश्य। ऐसे ही किसी इष्टके प्रति पहिलेसे ही यह ख्याल हो जाय कि इसका वियोग अवश्य होगा चाहे जब हो, चाहे जैसे हो, तो उसका वियोग होनेपर वह खेद नहीं मानता, क्योंकि वह तो पहिलेसे ही समझ रहा था कि इसका वियोग अवश्य होगा। जैसे कोई नेता सरकार भंग होनेके थोड़े दिन पहिले ही यह बात बता दे कि शीघ्र ही यह सरकार भंग हो जायगी तो भंग हो जानेपर वह बड़ा हर्ष मानता है कि देखो मैं जो कह रहा था सो ही हुआ ना, ऐसे ही समझो जिसने अपनी अच्छी समझ पहिलेसे ही बना रखी है वह किसी भी दुःखद घटनाके घटनेपर दुःखी नहीं होता। जो क्रूर कर्मोंमें रहता है उसे शान्ति नहीं मिलती और जो वीतराग प्रभुका स्मरण करता है, उसका परिणाम शुद्ध है तो वह निराकुल है, निर्भार है, निःसंग है, और वह पुरुष वीतराग प्रभुके स्मरणके प्रसादसे कर्मोंसे मुक्त हो जाता है।

मन्त्रमण्डलमुद्रादिप्रयोगैर्ध्यातुमुद्यतः।
सुरासुरनरव्रातं क्षोभयत्यखिलं क्षणात् ॥२०५६॥

ध्यानकी महिमा बतायी है कि मंत्र, मंडल, मुद्रा आदिक प्रयोगोंसे जो ध्यानमें उद्यत होता है वह पुरुष क्षणभरमें समस्त सुर असुर नर समूहोंको क्षोभित कर सकता है। ध्यानका इतना प्रताप है, इतना बल है। एक कथा सुनते हैं—विष्णुकुमार मुनिराजने उस जमानेमें जब अकम्पनाचार्य आदिक मुनियोंपर उपद्रव हो रहा था, कैसा चमत्कार दिखाया, वहां विष्णु ऋषिराजने अपना शरीर इतना बढ़ाया कि एक टांग बीचमें रखी और एक टांग घुमा दी तो सारे मनुष्य लोकको नाप दिया। और यह तो क्या, ध्यानकी इतनी महिमा है कि सुर असुर नरसमूहको भी वह ध्यानी पुरुष क्षुब्ध कर सकता है। उस ध्यानकी विधि बतलाते हैं कि मंत्र हो, मंडल हो, मुद्रा हो, संबंध है चित्तका ध्यानके साथ, संबंध है चित्तका शरीरके साथ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इसका कोई प्रयोग करके भी देख सकता है—पद्माशनसे बैठकर देहको बिल्कुल सीधा रखकर यदि तत्त्व भी ध्यान करनेमें न आये और शरीरके अन्त: अवयवका ही ध्यान करने लगे तो ध्यानकी एकाग्रताकी बात कह रहे हैं, जैसा कि सिद्धान्त बताता है कि—शरीरमें कमलकी रचना है और कहीं कल्पना करके भी कमल माना है। इस तरहसे शरीरमें ६ जगह कमलकी रचना मानी जा सकती है। अन्य सिद्धान्तोंने तो नाभिसे बहुत नीचे एक कमलरचना मानी है और उस जगह उस कमलरचनासे सटा हुआ ऐसा स्थान है जिसे कुण्डलिनी कहा है। उस कुण्डलनीको भावोंसे जलाया जाय तो सारे शरीरमें रोमांच होता है और वहांसे वायु चलकर सीधी एक ध्रुव स्थानपर नेत्रोंके बीच और मध्यमें उसके ऊपर चलती है, तो क्या किया है उस योगाभ्यासीने ? एक ध्यान किया है, वह है प्रथम चक्र। इसी प्रकार ५ जगह और चक्र की रचनायें कल्पनामें माना, वहां उसने चित्तको रोकनेका स्थान बताया है। यदि ऐसे ध्यानके योगका भी कोई अभ्यास करे तो इतना फल तो उसे तत्काल मिल गया कि परिवार की, वैभवकी, परिग्रहकी खबर न रही, इतनी बात तो वहां समा ही जा सकती है, और फिर चित्त प्रसन्न हो, ऐसी स्थितिमें जो तत्त्व है वह ध्यानमें आये, वह सुगम बात होती है। इससे यहां बताया है कि मंत्र मंडल मुद्रा आदिक प्रयोगोंके द्वारा ध्यानमें जो उद्यत पुरुष हैं उनमें इतनी सामर्थ्य बन जाती है कि वह सुर असुर नरसमूहको भी क्षोभित कर सकता है।

रूपातीत ध्यानका प्रसंग लानेसे पहिले जो उपयोगी बातें हैं भूमिकारूप, वे बताई जा रही हैं। रागका आलम्बन करनेसे हित नहीं है, वीतरागताका आश्रय करनेसे हित है, यह पहिली बात कहकर दूसरी बात बतायी है कि उस वीतरागताका ध्यान ही विधिपूर्वक करे तो उस ध्यानमें इतनी सामर्थ्य है कि सुर असुर नर आदिकके समूहको क्षुब्ध कर सकता है। रागद्वेष आदिक शत्रुवोंको, दुष्टोंको, विकारोंको इन सबको दूर कर सकता है। कोई बात किसी ढंगसे भी कही जाती है तो उसका उद्देश्य और उसमें भलेपनकी बात भी छिपी रहा करती है। सामर्थ्य ही तो विषय है, पर ध्यानी पुरुष अपनी सामर्थ्यका इस जगह उपयोग तो नहीं करता। उस सामर्थ्यका उपयोग उन रागादिक बैरियोंके विनाश करनेमें होता है।

(रूपातीतध्यानवर्णन प्रकरण ४०)

आज जो प्रचलित नाम हैं देवी देवतावोंके जैसे काली, मुंडी, भद्रकाली, चंडी, मुंडी आदिक ये सब वास्तवमें आत्मानुभूतिके नाम हैं, एक नाम दुर्गा भी है। दुर्गाका अर्थ है—जो बड़ी मुश्किलसे प्राप्त हो। ऐसी कौनसी चीज लोकमें है जो बड़ी मुश्किलसे प्राप्त होती है ? वह चीज है शुद्ध आत्माकी अनुभूति। शुद्ध आत्मानुभूतिको दुर्गा शब्द यदि कह दिया जाय तो शब्दार्थसे ठीक बैठेगा। अब इसे भूल जायें और बाह्यमें अपना रक्षक कोई और देवता है, ऐसी कल्पना करके कोई लोग मानें तो यह उनकी अलग बात है। काली किसका नाम है ? जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

असावनन्तप्रथितप्रभावः स्वभावतो यद्यपि यन्त्रनाथः ।
नियुज्यमानः स पुनः समाधौ करोति विश्वं चरणाग्रलीनम् ॥२०६२॥

अनन्तप्रभावी आत्माका समाधिमें यत्न—यह आत्मा स्वभावसे ही अनन्त प्रभाव वाला है—एक तो यह अमूर्त और दूसरे ज्ञानस्वरूप । इसमें इतना प्रभाव है जो कि आत्मामें स्वभावसे ही पड़ा हुआ है । फिर कोई समाधिमें अपने उपयोगसे चलित होता हो तो वह प्रभाव कितने गुणित हो जाता है ? इतना अधिक हो जाता है कि वह समस्त जगतको अपने चरणोंके अग्रभागमें लीन कर लेता है । अब देखिये ना, वीतराग सर्वज्ञदेवको, क्या है उनके पास ? लोकदृष्टिसे तो लोग कहेंगे कि क्या है उनके पास, जो था सो भी खो दिया । घर छोड़ दिया, वैभव छोड़ दिया, और रागादिक विभाव भी आते थे उनको भी छोड़ दिया । सो पहिले तो भरे पूरे थे, अब तो वे एकदम सूने रह गये । लेकिन उस सूनेपनमें कितनी महिमा बसी है ? रागादिक नहीं रहे, सर्व विविक्त हो गये, उसका प्रभाव इतना बढ़ गया कि लो यह जगत स्वयं खिंचा हुआ फिरता है । जीवलोक समवशरणमें पहुंचता है, दर्शनोंको उत्सुक रहता है और उपदेशोंका अभिलाषी रहेगा समवशरणमें । तो वह सब प्रताप किसका है ? वह उस समाधिमें लगा सो उसका फल पाया । यह रूपातीत ध्यानका ;वर्णन करनेके पहिले कुछ और श्लोकोंमें उसकी प्रस्तावनामें कह रहे हैं कि ध्यानमें इतना प्रभाव होता है ।

स्वप्नेऽपि कौतुकेनापि नासद्ध्यानानि योगिभिः ।
सेव्यानि यान्ति बीजत्वं यतः सन्मार्गहानये ॥२०६३॥

कुध्यानसेवासे सन्मार्गहानि—कहते हैं कि योगी पुरुषोंको स्वप्नमें भी कौतुकवश भी खोटे ध्यानोंका सेवन न करना चाहिए । इसका कारण यह है कि वह खोटा ध्यान इस समीचीन मार्गकी हानि करनेके लिए बीजपनेको प्राप्त होता है । इन खोटे ध्यानोंसे खुदकी भी और दूसरोंकी भी बरबादी होती है । इस कारणसे कौतुकवश भी स्वप्नमें भी, अथवा कभी कोई कषाय जग जाय तो उस कषायवश भी असद्ध्यान नहीं करना चाहिए । एक अपने आपका संतुलन रखना यह बहुत बड़ा गम्भीर पुरुष ही कर सकता है । अन्यथा इसी प्रकरणमें थोड़ी बहुत तृषा जगनेपर इस बातपर उतारू हो जाते हैं कि हमारा चाहे कुछ भी हो जाय, चाहे बरबाद हो जायें, पर इसको तो हम मजा चखा ही देंगे । ऐसा भाव बन जाता है । कोई जरा छोटासा कषायका लगार तो लगे फिर तो हानि हो जाती है । तो खोटे ध्यानका सेवन योगी पुरुषोंको रंच भी न करना चाहिए । इस प्रकरणसे अपने आपको यह शिक्षा ले लेनी चाहिए कि यह तो ध्यानकी बात है । हम आप सबको किसी व्यक्तिके प्रति कुछ द्वेषकी बात जग जाय तो इतना उतारू न हो जाना चाहिये कि मैं इसको इतना अधिक कष्ट पहुंचाऊँ । जैसे व्यवहारमें कहते हैं—मजा चखाऊँ क्योंकि ऐसी कषाय उमग जानेपर उसकी बरबादी भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो जाय तो क्या मिला ? और न हो तो वह अपने आधीन नहीं, किन्तु खुद कषायका आवेश बना लेनेके कारण सन्मार्गसे च्युत गया, अब उसे उल्टी-उल्टी बातें सूझेंगी ।

रागद्वेषसे बचनेके लिये मनके संतुलनकी अनिवार्यता—भैया ! मनका विचारका संतुलन बनाये रखना बहुत बड़े गम्भीर पुरुषकी बात है । किसी पुरुषमें दश अवगुण हैं और दो गुण हैं तो उस पुरुषके बारेमें, और कोई हो पुरुष ऐसा कि जो किसी कोटिमें अपनी समकक्षता जैसी बात रखता हो तो उसके बारेमें भी गुणोंका वर्णन कर सकना बहुत कठिन हो जाता है कषायवान पुरुषको । और फिर जिसमें दोष हों ही नहीं, कुछ और गुण हों तो ऐसे तकका भी वह वर्णन नहीं कर सकता । यह बड़ी गंभीरताकी बात है कि किसी भी पुरुषमें जो गुण हैं, बच्चेमें भी जो गुण हैं । उनको बता सके और दोष होनेपर भी दोषकी बात न रखे, यह तो ऊँची बात है और उसके दोष बताकर भी उसमें कोई गुण हों तो गुण भी बखान दे यह बड़ी गंभीरताकी बात है । जो बड़े विद्वान होते हैं, ऊँचे समालोचक होते हैं, दार्शनक फिलास्फर होते हैं उनमें ऐसी गंभीरता होती है कि किसी भी बातमें दोष हो तो दोषको भी कह देते, पर दोष हैं, दोषोंको कह रहे हैं इस धुनिके कारण गुणोंको तिलाञ्जलि दे दें ऐसी बात नहीं होती है । जो गुण हैं उन्हें भी कह देते हैं । यह बात इसलिए कही कि हम किसी व्यक्तिके प्रति कुछ द्वेष उमड़नेपर, उसकी कुछ बात न जंचनेपर उसके प्रति कषायकी बात प्रविष्ट कर दें, कोई कषाय बढ़ जाय, तथा उस दूसरेकी ओरसे भी कुछ चेष्टायें हों तो कषायें बढ़ाकर यह अपना ही नुक्सान कर लेता है । आचार्य संतोंने किसी भी चर्चामें प्रश्नोत्तर स्वयं देते-देते जब जरा कुछ बात तेजसी हो गयी, कर रहे हैं खुद रचना, बोलने वाला कोई नहीं है, परन्तु उसमें कोई वादविवादके ढंग जैसी बात आती है तो बीचमें यह लिख करके ही उस प्रकरणको समाप्त कर देते हैं कि इससे अधिक मत बढ़ो, नहीं तो रागद्वेष होगा और उस रागद्वेषसे अपनी ही हानि होगी । तो अपने आपकी रक्षा करना यही है मुख्य कर्तव्य ।

योगियोंकी समताकी प्रकृति—योगियोंको तो बताया है कि वे खोटे ध्यानोंको किसी भी कीमतपर न करें और अपने लिए फिर यह शिक्षा लें कि दूसरे व्यक्तिपर हम चतुराईकी बात, उसका बुरा करनेकी बात हम मनमें न लायें । चाहे आनेपर उसके द्वारा कितनी ही हानि छायी हो, कितने ही बार उसने हमपर आघात किया हो, फिर भी चाहे उसका मुकाबला कर लें, बात कह लें, पर हृदयमें उसके अकल्याणकी भावना न जग सके । यह बहुत बड़े ज्ञानकी बात है । भला बतलावो—सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष कभी विरोधी हिंसाके प्रसंगमें लग जायें, कोई आततायी लोग अथवा अन्याय करने वाले आक्रमण कर दें, धन भी हड़प रहे हैं, प्राणों का भी खतरा है तो उस समय मुकाबलेमें आकर भी, कितना ही उसका निराकरण करनेपर भी उस सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुषके चित्तमें किसी भी क्षण यह बात नहीं आती है कि मैं इनका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रागादिक दुश्मनोंको खा डाले उसे काली कहते हैं । इस ही शुद्ध आत्माकी अनुभूतिको जरा इस कालीके रूपमें तकिये । यह अनुभूति इन रागादिक शत्रुवोंको चबा डालती है । भद्रकाली– भव्योंको जो कल्याणमें प्रेरित करे वह भद्रकाली । कौन है वही शुद्ध आत्माकी अनुभूति, जो कि भव्य जीवोंको कल्याणमें प्रेरित करती है । इसी प्रकार चण्डी मुण्डी आदिक शब्द भी उस शुद्ध आत्माकी अनुभूतिकी तारीफ कर रहे हैं । जो रागादिक शत्रुवोंका खण्डन मण्डन कर दे सो चंडी मुंडी आदिक हैं । एक नाम है चंद्रघंटा––जो आनंदरूपी अमृतको झरानेमें चंद्रमासे भी ईर्ष्या करे उसे चंद्रघंटा कहते हैं । चंद्र क्या अमृत झरायेगा, अमृत तो शुद्ध आत्मानुभूतिसे झरता है । तो ध्यान करनेमें वह सामर्थ्य है कि जो रागादिक विकार आत्माके दुःखके कारण हैं वे सब दूर हो जाते हैं । इससे एक निर्णय रखो कि मुझे वीतराग तत्त्वका ध्यान ही शरण है, अन्य कोई शरण नहीं है ।

देखो भैया ! श्रद्धा तो निर्मल रखे रहिये । रही करनेकी बात, सो जितनी योग्यता है, जितनी शक्ति है उस माफिक बात चल सकेगी, पर श्रद्धा तो सही ही होना चाहिए । शामके समय देहातोंमें जब गायें घर आती हैं घास चरकर तो जंगलसे ही दौड़ती हुई घरपर आती हैं । सो जिन गायोंकी पूँछ पूरी है वे अपनी पूरी पूँछ उठाकर अपने बच्चेके स्नेहवश दौड़ती हुई आती हैं और जो बांड़ी गाय होती है वह अपनी आधी ही पूँछ हिलाती हुई डगमग करती हुई अपने बच्चेके स्नेहमें दौड़ती हुई आती है । तो इन दोनों तरहकी गायोंके भीतरी भावको देखो वह तो एकसा ही है, दोनों ही उसी प्रयोजनसे दौड़ती हैं । तो अपनी श्रद्धा पूर्ण निर्मल रखनी चाहिए स्थिति चाहे कैसी ही हो । अन्तर है चारित्रका । तो यहाँ इतनी श्रद्धा एक निर्णयके रूपमें बनाये कि हमारे लिए सार और शरण है तो अंतरङ्ग तत्त्वकी उपासना ही है, और कुछ हमारे लिए सार और शरण नहीं है । जिन कार्योंमें हम लग रहे हैं उनमें कुछ भी सार नहीं है, यह श्रद्धा अवश्य दृढ़ रहनी चाहिये अन्यथा धर्मकी नींव न बन सकेगी । जिसे ऐसी श्रद्धा नहीं है वह धर्मका कोई भी काम किस भावसे करता है उसे क्या बतावें ? लोक लाजवश समझ लो, या घरकी किसी आकुलताके कारण समझ लो––अरे चलो वहीं मंदिरमें ही वैठे, ऐसे भी कुछ भाव हो सकते हैं, पर श्रद्धा हो तो एक ही भाव होगा । तो श्रद्धा यथार्थ करनेका यत्न रखियेगा और जो श्रद्धा हुई है उसे यथावत् बनाये रहें कि मेरे लिए सारभूत चीज तो मुझमें ही विराजमान अनादि अनन्त अंतः प्रकाशमान जो केवल स्वरूप है उसका आलम्बन शरण है और यह शरण जिसने प्राप्त कर लिया है ऐसे प्रभुकी उपासना करो ।

क्रुद्धस्याप्यस्य सामर्थ्यमचिन्त्यं त्रिदशैरपि ।
अनेकविक्रियासारध्यानमार्गावलम्बिनः ॥२०६०॥

विविधविक्रियारूप असार ध्यान मार्गको अवलम्बन करने वाले क्रोधीके भी ऐसी शक्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्पन्न हो जाती है कि जिसका चिन्तन देव भी नहीं कर सकते। प्रसिद्ध बात है द्वीपायनमुनि की। ध्यानी थे, सम्यग्दृष्टि थे और उनको तैजसऋद्धि प्रकट हुई थी, किन्तु जब क्रोध आया तो चाहे उनका भी विनाश हो गया तो हो गया लेकिन उस क्रोधमें वह प्रताप बता ही दिया कि सारी नगरी भस्म हो गई। तो क्रुद्ध हो तो भी उसके उस ध्यानकी ऐसी शक्ति उत्पन्न होती है कि जिसका देव भी चिन्तन नहीं कर सकते। शायद पुराण और इतिहासोंमें किसी भी देव ने ऐसा न किया होगा कि किसी नगरीको भस्म कर दे। तो देवोंके द्वारा भी अचिन्त्य ऐसे कार्य क्रुद्ध होनेपर किए जाते हैं। लोग डरते हैं त्यागी साधुवोंको कि कहीं क्रुद्ध न हो जायें तो हमारा बिगाड़ हो जाय, लेकिन ऐसा डर उन्हींको है जिनके आत्मामें स्वयंमें कुछ बल न हो, और जिनको यह दृढ़ता नहीं है कि जो होगा वह मेरे ही किन्हीं भावोंसे संचित विपाक होनेपर होगा, ध्यानकी सामर्थ्य बतायी जा रही है, ऐसी ऋद्धियाँ पैदा हो जाती हैं कि वे साधु संत यदि किसीको स्नेहभरी, दयाभरी दृष्टिसे देख लें तो उसके रोग दूर हो जायें और कहीं क्रुद्ध होकर देख लें तो कहो जीवनसे भी हाथ धोना पड़े, इतनी सामर्थ्य है ध्यानमें। अब किस तरह उपयोग करें तो सही कल्याण हो यह उसके विवेककी बात है।

बहूनि कर्माणि मुनि प्रवीरैर्विद्यानुवादात्प्रकटीकृतानि।
असंख्य भेदानि कुतूहलार्थं कुमार्ग कुध्यानगतानि सन्ति ॥२०६१॥

आज एक प्रकरण शुरू हुआ है नया। तो जिस प्रकरणमें बड़े महत्त्वकी बात विस्तार से बतायी जायगी, उस प्रकरणकी बात कहनेसे पहिले कुछ लम्बी प्रस्तावना चलती है। तो उस ही प्रस्तावनामें यह बता रहे हैं—कि ज्ञानी मुनियोंने विद्यानुवाद पूर्वसे असंख्य भेद वाले अनेक प्रकारके विद्वेषण उच्चाटन आदि कर्म कौतूहलके लिए प्रकट किए हैं, परन्तु वे सब कुमार्ग और कुध्यानके अन्तर्गत हैं। और और भी ध्यानसे बातें बनती हैं। किसीका उच्चाटन, किसीका मन क्षुब्ध करना, किसीको वश करना, अनेक बातें भी ध्यान द्वारा होती हैं, पर ये सब ध्यान कुमार्गमें ले जाने वाले हैं। इनसे आत्मकल्याणकी सिद्धि नहीं होती। इस कारण उन कुध्यानोंको छोड़कर जो प्रशस्त ध्यान हैं उनमें लगना चाहिए। इस प्रकरणमें धर्मध्यानके आखिरी अंग रूपातीतका वर्णन किया जायगा, जो रूपसे अतीत है उस ध्यानको समीचीन कहा गया है। उसके विरुद्ध जितने भी सांसारिक प्रयाजनोंको लिए हुए ध्यान हैं वे सब ध्यान कुध्यान हैं। मेरे संतान उत्पन्न हो, मुकदमेमें जीत हो, मेरा रोजिगार अच्छा चले, आदिक कुध्यान हैं। कुछ लोग तो इतना तक भी ध्यान करते हैं कि अमुकका नाश हो। तो ये जो विरुद्ध आशयको लेकर प्रभुका ध्यान किया जा रहा है वे सब कुध्यान हैं, उनसे लाभके बदले हानि ही होती है। इससे इन कुध्यानोंको छोड़कर सच्चे ध्यानमें आयें। वह सच्चा ध्यान क्या है ? उसका वर्णन अब आगे चलेगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अकल्याण कर दूं। सोचिये यह कितने बड़े भारी ज्ञानबलकी बात है ? रामचन्द्र जी ने कितना राम रावण युद्धके समय पराक्रम दिखाया। रावणकी सेना परास्त हो गई, ऐसे समयमें भी रामचन्द्र जी ने यही कहा कि हे रावण ! तुझसे मुझे कुछ न चाहिए, तेरा राज्य न चाहिए, तेरा प्राण न चाहिए, तेरी कुछ भी चीज न चाहिए, बस न्यायकी बात है कि तू मेरी सीता को वापिस कर दे, फिर तू आनंदसे राज्य कर। भला इतनी विजय कर चुकनेपर जहाँ एक थोड़ा मामला रह जाय कि उसे पूर्ण बरबाद किया जा सकता है ऐसे समयपर भी इतनी गंभीरता रख सकना यह बड़े ज्ञानबलकी बात है। यहाँ योगी पुरुषोंको कहा जा रहा है कि उन्हें स्वप्नमें भी खेल कौतुकमें भी असत् खोटे ध्यान न करना चाहिए।

सन्मार्गात्प्रच्युतं चेतः पुनर्वर्षशतैरपि।
शक्यते न हि केनापि व्यवस्थापयितुं पथि ॥२०६४॥

सन्मार्गसे च्युत होनेका परिणाम—खोटे ध्यानके कारण कोई सन्मार्गसे विचलित हो जाय तो उस विचलित चित्तको फिर सैंकड़ों वर्षोंमें भी सन्मार्गमें ले जानेकी सामर्थ्य नहीं हो पाती, इस कारण खोटा ध्यान कभी भी किसीको न करना चाहिए। जैसे द्वेषप्रसंगमें किसी को भी द्वेष शुरू न करना चाहिये। चित्तमें थोड़ी बात कदाचित् आ भी जाय तो भी वचनों से, शरीरसे, चेष्टावोंसे उस द्वेषको व्यक्त न कर देना चाहिए, क्योंकि व्यक्त किए जानेसे पहिले हमारा मन हमारे वश हो सकता है, हमारी गल्ती हमारे विचार हम गुप्त ही अपने आपको समझाकर उस दुर्विचारसे अपनेको मुक्त कर सकते हैं। परंतु व्यक्त हो जानेपर, प्रकट हो जाने पर और अब उसका प्रयोग कर देनेपर, जवाब दे देनेपर फिर यह कठिन हो जाता है कि हम अपनी उस कषायको लौटा लें और दूर कर दें और निश्कषाय बन सकें। इस कारण द्वेषकी बात शुरू भी न हो पाये, इस तरहका अपना संतुलन बनाना चाहिए, क्योंकि बननेकी बात, लगार होनेपर बढ़ बढ़कर इतना तीव्र आवेग हो सकता है कि वह अपने सारे सन्मार्गोंको न्यायनीतिको त्याग दे और जो अपने आपको खुद बरबादीमें ले जाय, ऐसे उपायको भी यह कर डालता है। यदि एक बार भी विचलित हो जाय तो सैकड़ों वर्षोंमें भी अपने आपको सन्मार्गमें ले जानेको समर्थ नहीं हो सकता, अतएव इन दुर्ध्यानोंसे दूर रहें, यही विवेकीका कर्तव्य है।

असद्ध्यानानि जायन्ते स्वविनाशायैव केवलम्।
रागाद्यसद्ग्रहावेशात्कौतुकेन कृतान्यपि ॥२०६५॥

खोटे ध्यानोंसे स्वयंकी बरबादी—खोटे ध्यान अपने ही नाशके लिए उत्पन्न हुआ करते हैं। वे कौतुक भावसे किए हुए हों तो भी रागादिक असद्भावोंका उसके इतना ग्रहण होता है कि वह नाशके ही सम्मुख रहता है। यह ध्यान बना रहे, चित्तमें बहुत-बहुत बसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहे तो यही फिर आचरणमें आ जाता है। कहां तक कोई अपना खोटा भाव छिपायेगा ? जब खोटे भावकी भावना बना रहा है तो बाहरमें चाहे जितनी सफाई रखे, पर वह बात तो बनेगी, वैसी चेष्टा तो बनेगी। उसे कौन दूर कर सकता है ? एक सेठके तीन तोतले लड़के थे, सगाईके लिए नाई आया, उनके पिताने उन्हें खूब सजा दिया और समझा दिया कि देखो जब नाई आये तब तुम लोग कुछ बोलना नहीं। पर हुआ क्या कि जब नाई आया और उनको देखकर उनकी सुन्दरता की कुछ प्रशंसा की, तो उस प्रशंसाको सुनकर उन लड़कोंसे न रहा गया, वे बोल ही उठे—एक बोला—अभी टंडन मंडन टो लगा ही नहीं, नहीं तो बड़े अच्छे लगते, तो दूसरा बोला—टुप, डड्डाने का कही थी, तो तीसरा बोला—अरे टुप टुप टुप। लो तीनों लड़के बोल उठे, उनके तोतलेपनकी पोल खुल गई। ऐसे ही समझ लो कि कोई खोटा ध्यान बनाये रहे, वह चाहे कि हम मायाचारोंसे दूसरोको हितैषिता बताते फिरें, अपनी बड़ी प्रसन्न मुद्रा भी दिखायें, पर उसकी मुद्रासे, उसके आकारसे, उसकी चेष्टासे वह बात प्रकट हो ही जाती है। खोटा ध्यान बनानेसे तो इस लोकमें भी अपकार है और परलोकमें भी अपकार है। क्या फायदा पाया हमने दूसरेसे जलकर, दूसरेसे घृणा करके ? अरे यह तो संसार है, अनेक प्रकारके जीव हैं। एक जीवपर क्या दृष्टि देना, अनंतानंत जीव हैं। क्यों व्यर्थमें दुर्विचार बनाकर, खोटे ध्यान बनाकर दूसरोंसे ईर्ष्या करके, दूसरोंसे जल करके अपनेको बरबाद कर रहे ? उससे कुछ भी पूरा नहीं पड़नेका है।

निर्भरानन्दसन्दोहपदसंपादनक्षमम् ।
मुक्तिमार्गमतिक्रम्य कः कुमार्गे प्रवर्तते ॥२०६६॥

अज्ञानीका सन्मार्ग छोड़कर कुमार्गमें प्रवर्तन—जो पुरुष अत्यंत आनन्दके समूहोंको उत्पन्न करनेमें समर्थ ऐसे मोक्षमार्गको विशुद्ध ध्यानको छोड़ देता है और कुमार्गमें प्रवृत्ति करने लगता है तो बतावो ऐसा कौन हो सकता है ? ज्ञानी तो न होगा। अज्ञानी मंदबुद्धि जन ही ऐसा कर सकते हैं कि अच्छे ध्यानको छोड़कर खोटे ध्यानमें आयें। अनेक मनुष्य इस धुनि में रहते हैं कि मैं इसका विनाश कर दूँ, इसकी मृत्यु करा दूं, इसको तकलीफ पहुंचा दूं, इसका नुक्सान करा दूं। मंत्र भी सीखते हैं इन्हीं बातोंके करनेके लिए। पुराणोंके दो चार कथन स्पष्ट हैं कि उन मंत्र रचने वालोंकी बड़ी सेवा की, उनकी बड़ी उपासना की, मंत्र सीखा, अमुक मेरे वश हो जाय, अमुक मुझसे बड़ा न हो सके, कितनी-कितनी बातें ये पुरुष मोहवश ध्यानमें रखते हैं पर उनसे तत्त्व कुछ भी नहीं निकलता, लाभ कुछ भी नहीं मिलता। अपना लाभ तो अपनेमें अपनेसे अपनी एक विशुद्ध परिणतिसे होगा, बाहरमें कहीं कुछ नहीं है, उसको निरखकर अपनेमें क्षोभ न लायें, ऐसा ज्ञान बनायें।

भेदविज्ञानके बिना आत्मविनाशके प्रवर्तन—समताकी बात भेदविज्ञानके बिना नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो सकती। जो रुच गया उसे मानोगे कि यह मेरा है, और जो बाधक होगा उस विषय-साधनमें उसे मानोगे कि यह मेरा नहीं है, मेरा शत्रु है। तो ये जो दो भावनायें जगीं, यह कितना मोहांधकारका परिणाम है ? जीव जीव सब समान हैं, सबका एक स्वरूप है, पर उनमें कोई रुच गया और किसीसे जलन हो गई, ईर्ष्या हो गई ऐसी जो बुद्धि हुई वह ज्ञानका फल है कि अज्ञानका ? यह तो बड़े अज्ञान अंधकारकी बात है। इसमें हमारा शृङ्गार नहीं, आत्माकी इसमें शोभा नहीं। इसमें तो आत्माका विनाश ही है। इस प्रकारकी सच्ची जानकारी क्या बनाई नहीं जा सकती ? जानकारी भी बनाई जा सकती है, इस ही सही जानकारी के आधारपर हम अपना उत्थान भी कर सकते हैं। कितने विवाद मनुष्योंने व्यर्थके बना रखे हैं जिनसे खुद बड़ी चिन्तामें पड़े हैं। दो ही तो प्रयोजन हैं इस मनुष्य जीवनमें—एक तो आजीविका हमारी सही रहे ताकि ऐसे मौके न आयें कि भूखे प्यासे रहना पड़े या परिवारके लोगोंको भूखे प्यासे रहना पड़े। और दूसरे—आत्मोद्धारकी बात बनी रहे। तीसरी बात कौन सी हम आपको आवश्यक है सो तो बतावो ? लोग तो कितने ही ऐसे कार्य करते हैं जिनका न आजीविकासे सम्बंध है और न आत्मोद्धारसे सम्बंध है। जैसे व्यर्थके सामाजिक कलह। किसी समारोहमें एककी जगह पर दो बाजे रख लिये, यह आगे रहेगा यह पीछे रहेगा इसी बातपर कलह कर डालते हैं। यही एक बात क्या, पचासों बातें ऐसी हैं जिनमें ये अज्ञानी जन हठ कर डालते हैं, उस हठमें बड़ा विवाद भी कर डालते हैं, खुद भी अशांत होते हैं और दूसरोंको भी अशांत करते हैं, लाभ कुछ नहीं मिलता। ये सब अज्ञानताकी बातें हैं।

सुध्यानको न छोड़नेका अनुरोध—यहाँ यह कह रहे हैं कि अद्भुत, अतिशय, विशुद्ध आनन्दको प्राप्त करनेमें समर्थ ऐसे सभी सद्ध्यानोंको कोई छोड़ दे तो उसमें अपना ही नाश है। ऐसे सद्ध्यानोंको ज्ञानी पुरुष कदापि नहीं छोड़ सकते। धनी होनेके लिए किसी देवताकी आराधना करना और यहाँ तक कि वीतराग प्रभु मंदिरमें भी रागकी मूर्ति रख देना, और कोई बुरा न कहे इस बचावके लिए उस रागवाली देवीकी मूर्तिके ऊपर आध इंचकी कोई भगवानकी मूर्ति बना देना, उस भगवानका पूजन करना, उससे धन वैभवकी प्राप्तिके लिए आराधना करना, ये क्या कोई भली बातें हैं। कोई मान लो उस तरहसे धनिक भी बन जाय तो उसके माने हुए भगवानने उसे धनिक नहीं बना दिया। उस भगवानकी भक्तिके प्रतापसे उसका स्वयंका पुण्यरस बढ़ा और उससे अनेक सामग्रियां प्राप्त हुईं जिससे वह धनिक बना। तो धनिक बननेसे भी क्या लाभ है ? मेरी तो जो स्थिति है वही मेरे लिए भली है। मैं तो धर्मके लिए जीवित हूं ऐसी भावना होनी चाहिए। खोटे ध्यानमें चित्त जानेसे अपना विनाश ही है, लाभ कुछ नहीं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षुद्रध्यानपरप्रपञ्चचतुरा रागानलोद्दीपिताः,
मुद्रामण्डलयन्त्रमन्त्रकरणैराराधयन्त्यादृताः।
कामक्रोधवशीकृतानिह सुरान् संसारसौख्यार्थिनो,
दुष्टाशाभिहताः पतन्ति नरके भोगार्तिभिर्वञ्चिताः ॥२०६७॥

खोटे आशयसे ध्यान करनेका दुष्परिणाम—रूपातीत ध्यानके वर्णनसे पहिले कुछ आगाहें और की जा रही हैं—जो मनुष्य खोटे ध्यानके बड़े विस्तारके करनेमें चतुर हैं वे पुरुष अपना अहित करते हैं, अपनेको नरकमें पतित करते हैं। खोटा ध्यान करना, किसीका बुरा विचारना, बधबन्धन आदिक चिन्तन करना और अपने स्वार्थकी पूर्तिका उद्देश्य रखकर ध्यान करना, धनवैभव सम्पदा सांसारिक सुख मिलें आदिक भावनाओंसे ध्यान करना—ये सब खोटे ध्यान हैं। इन खोटे ध्यानोंके विस्तारमें जो लोग चतुर हो रहे हैं वे इस लोकमें रागरूपी अग्निसे प्रज्वलित होते हैं। राग या द्वेष इन दो की जब तीव्रता होती है तो खोटा ध्यान बनता है। रागकी तीव्रतामें तो अपने लिए सम्पन्न होनेकी चाह करनेकी बात आती है। द्वेषकी तीव्रतामें दूसरेके विनाशकी बात आती है और मूलमें देखो तो जो कोई पुरुष किसीसे द्वेष करता है तो किसी रागके वश करता है। इन्द्रियके विषयोंमें है राग तो उनमें जो बाधक हुए उनसे द्वेष करता है। ऐसा पुरुष मुद्रा, मण्डल, यंत्र, मंत्र आदिक साधनोंके द्वारा काम क्रोधसे वशीभूत होकर कुदेवका आदरसे आराधना करता है।

शाश्वत शुद्ध आनन्द पानेके लिये विषयोंसे उपेक्षाकी अनिवार्यता—भैया! प्रवृत्तिमें दो बातें नहीं निभतीं कि कोई विषयसाधन भी करे और मोक्षमार्ग भी अपना चला ले। जैसे एक सूई दो दिशावोंमें एक साथ नहीं सी सकती है, एक रास्तागीर दोनों दिशावोंमें एक साथ नहीं चल सकता, इस ही प्रकार समझिये कि विषयोंका भोगना और मोक्षमें जाना ये दो बातें नहीं निभ सकतीं, जिन्होंने अपना उद्देश्य संसारके संकटोंसे सदाके लिए छुटकारा पानेका बनाया है उनको इतना साहस रखना चाहिए कि किसी भी स्थितिमें विषयके साधनोंके अर्थ देवोंकी आराधना न करें, एक विशुद्धिके लिए देवकी आराधना होगी। यह भी एक दोषमें सामिक है। जो अपने स्वार्थकी साधनाके लिए वीतराग मूर्तिकी भी उपासना करे, कुदेवकी उपासना करे, वह तो महादोष है ही, किन्तु स्वार्थपूर्तिके लिए दूसरोंके विनाशके लिए इन खोटे उद्देश्योंको लेकर यदि कोई वीतरागदेवकी मूर्तिके समक्ष भी उपासना करता है तो भी वह गल्तीपर है। उसने अपना भीतरी लक्ष्य सही नहीं बना पाया। हम किसलिए अपना जीवन समझें, यह उसका निर्णय ठीक नहीं है। तो ऐसा पुरुष जो खोटी वासनाओंसे उपद्रुत है वह पुरुष कुदेवकी आदरसे आराधना करता है। जो जरासी बीमारीमें या अपने किसीकी भलाईकी बड़ाईमें कुदेवकी आराधना करता है, चण्डी मुण्डी आदिककी आराधना करता है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अथवा किन्हीं छोटे लोगोंसे चाण्डाल आदिक लोगोंसे कोई झड़वाना आदिक काम कराता है तो वह अपनी श्रद्धामें सही नहीं है। जिसमें व्यामोहविराधक भी ज्ञान नहीं, साहस नहीं, वह जैन शासनके जो वास्तविक मर्म हैं उनके पालनका पात्र ही क्या बनेगा ? ऐसे जन सांसारिक सुखोंके चाहने वाले और खोटी आशावोंसे पीड़ित होकर भोगोंकी पीड़ासे तपाये गये वे नरकों में पीड़ित होते हैं, इस कारण आचार्यदेव उन्हें यह शिक्षा देते हैं कि—

तद्ध्येयं तदनुष्ठेयं तद्विचिन्त्यं मनीषिभिः।
यज्जीवकर्मसम्बन्धविश्लेषायैव जायते ॥२०६८॥

कर्ममुक्तिके अर्थ किये गये ध्यानकी ही श्रेष्ठता—हे मुमुक्षु जनो ! ध्यान उसका ही करो, अनुष्ठान उसका ही करो, चिन्तन मनन भी उसका करो कि जिसके ध्यान आदिकसे यह जीव कर्मसमूहसे रहित हो जाय। जैसे कोई पुरुष दो दिनका आराम पा ले और उसे यह पता हो कि इस आरामके बाद हमें इतना दुःख दिया जायगा तो उस आरामके लिए चित्त नहीं चाहता। कोई कहे कि हम आपको एक दिनके लिए राजा बनाये देते हैं और उसके बाद जंगलमें छोड़ देंगे तो वह पुरुष उस ऐश्वर्यको न चाहेगा। लोग तो ऐसी यथायोग्य भली स्थिति चाहते हैं जो चिरकाल तक रहे। तो यहाँके ये समागम, यहाँकी ये बातें जब बहुत समय तक रह नहीं सकतीं तो इनके लिए क्यों ध्यान करना और क्यों इनका संग करना ? ध्यान करना उस प्रयोजनसे कि संसारके संकटोंसे सदाके लिए छूट जायें।

(रूपातीतध्यानवर्णन प्रकरण ४०)

सत्य श्रद्धानसे ही कल्याण—श्रद्धान् सही होगा तो पापरस घटेगा व पुण्यरस बढ़ेगा। श्रद्धान सही होनेसे सब प्रकारसे कल्याण कल्याणकी ही बात है और अगर श्रद्धा बिगड़ी तो न यहाँके रहे, न वहाँके रहे, यह स्थिति बनेगी। इस मनुष्यजीवनका बड़ा उत्तर-दायित्व समझना चाहिए और अधिक नहीं तो श्रद्धा तो सही बना लेना चाहिए। इतना साहस तो रखना ही चाहिए कि कोई रागी द्वेषी देवी नामसे प्रसिद्ध हमारे आदर्शभूत नहीं हैं, उनको हम आदर्श मानकर, उनकी आराधना करके, उनकी सेवासे हम झंझटोंसे मुक्त नहीं हो सकते। है कौन झंझटोंसे मुक्त कराने वाला ? प्रभुपूजा करके, प्रभुध्यान करके, तपश्चरण करके भी जो पुरुष कुछ वास्तविक आराम पाता है तो वह अपने कर्मसे पाता है, किसी दूसरे की दयासे नहीं पाता है। तो कौन हमें सम्पन्न बनायेगा ? अपने आपपर दयाका भाव करिये और सच्ची श्रद्धामें अपना जीवन बिताइये। यही तत्त्व ध्यान करने योग्य है जो जीव और कर्मके सम्बंधको अलग हटानेका कारण बनता है।

स्वयमेव हि सिद्ध्यन्ति सिद्धयः शान्तचेतसाम्।
अनेकफलसम्पूर्णा मुक्तिमार्गावलम्बिनाम् ॥२०६९॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शान्तचित्त पुरुषोंको ही सिद्धियोंका लाभ—कहते हैं कि जिनका शान्त चित्त है, जो मुक्तिमार्गका आलम्बन लेने वाले हैं उन पुरुषोंकी सिद्धि अनेक फलोंसे भरपूर है, स्वयं ही निष्पन्न होती है। शान्तिसे तो यहाँ ही त्वरित लाभ होता है। एक राजा अपने बगीचेमें शाम को घूमने गया, तो बागमें दो तीन कमरे जो खास थे, सो एक कमरेमें एक कोई संन्यासी आराम कर रहा था और एक कमरेमें उसका शिष्य। तो पहिले ही गुरुने संकेत कर दिया था शिष्यसे कि देखो भाई यहाँ बनना कुछ नहीं। शिष्यने कहा—अच्छा महाराज। अब राजा आया सिपाहीके साथ। सो सिपाहीने देखा कि इस कमरेमें कोई आदमी बैठा है, सो राजाकी आज्ञा लेकर वह सिपाही उनको निकालने गया। जब वह सिपाही शिष्यके पास पहुंचा तो पूछने लगा कि तुम कौन हो, क्यों राजाके कमरेमें बिना पूछे आये? कुछ गालियां भी सुनाईं। सो वह शिष्य बोला—तुम्हें पता नहीं हम तपस्वी हैं, साधु हैं, ध्यान करने बैठे हैं। सिपाहीने झट उस शिष्यको वहाँसे निकाल दिया। जब गुरुके पास वह सिपाही पहुंचा तो गुरु से भी वही बात कही, पर गुरु कुछ भी न बोला, अपने ध्यानमें बैठा रहा। तो सिपाही राजा के पास जाकर बोला—महाराज! एक कमरेके एक व्यक्तिको तो निकाल दिया और दूसरे कमरेमें बैठा हुआ व्यक्ति तो हमारे पूछनेपर भी कुछ बोलता ही नहीं है, बड़ी शान्तिसे बैठा है। तो राजा बोला—अरे उन्हें मत छेड़ो, वे कोई साधु होंगे। जब राजा घूमकर बागसे चले गये तब बादमें उस शिष्यने कहा—महाराज! तुमने हमें अच्छी जगह ठहराया, वहाँसे तो सिपाहीने हमें निकाल दिया। तो गुरु बोला कि तुम कुछ बने होगे? शिष्य बोला—महाराज! बने तो कुछ नहीं, सिपाहीने पूछा कि तुम कौन हो, क्यों यहाँ राजाके कमरेमें ठहरे हो? तो हमने यही कहा था कि हम साधु हैं, तपस्वी हैं, ध्यान करने बैठे हैं। तो गुरु बोला—बस यही तो बनना है। तो जो शान्त चित्त हैं, जो कुछ बनते नहीं हैं, जो क्षमाभाव धारण करके परमशान्तिका आश्रय लेते हैं उन्हें सर्वसिद्धियां स्वतः ही सिद्ध हो जाती हैं।

संभवन्ति न चामिष्टसिद्धयः क्षुद्रयोगिनाम्।
भवत्येव पुनस्तेषां स्वार्थभ्रंशोऽनिवारितः ॥२०७०॥

क्षुद्रयोगियोंको सिद्धिके लाभकी असंभवता—जो खोटा ध्यान करने वाले क्षुद्र योगी हैं, अज्ञानमें मुग्ध हैं उनको इष्ट सिद्धियां कदापि सिद्ध नहीं होतीं, किन्तु उनके उल्टी स्वार्थकी अनिवार्य हानि ही हुआ करती है। चाहे कुछ और हो कुछ, यह खोटे आशय वालोंकी गति होती है। यहाँ भी व्यवहारमें देखो—जो पुरुष अधिक मायाचार रखते हैं और अधिक छल कपटका व्यवहार करते हैं प्रायः करके देखा होगा कि वे पद-पदपर ठगाये जाते हैं। छल कपट का पता पड़ जाय दूसरोंको तो कोई भी दूसरा उसे अपने निकट भी बैठानेमें संकोच करता है। खोटा आशय रखना अपने लिए अहितकर है। क्रोध आता है तो तब आता है जब कोई

Version 1

यह समझ लेता है कि देखो इतने इतने लोगोंमें मेरी पोजीशन अटकी तभी क्रोध आया। अकेलेमें कोई कितनी ही बात कह ले तो वहाँ क्रोधमें उतनी तीव्रता नहीं होती है। जिसके चित्तमें ज्ञानमें यह बात समाई हुई है कि जो देख रहे हैं सो मुझे जानते नहीं और जो जानते हैं सो देखते नहीं, मेरेको तो कोई पहिचानता ही नहीं है, यदि इन व्यवहारविमूढ़ जीवोंने कुछ सम्मान अथवा अपमान भरे शब्द कह दिये तो उससे क्या उठता है ? वे सब स्वप्नवत् हैं। ऐसी जो अपने अन्तरङ्गमें परमार्थ स्वरूपसे लगन लगाये हैं ऐसे पुरुषको क्रोध क्या जगे, अभिमान क्या उत्पन्न हो ? संसारके समस्त समागमोंको भिन्न असार मानने वाला पुरुष किस बातके लिए मायाचार करे, किस चीजकी तृष्णा करे, क्या करना है इन पञ्चेन्द्रियके साधनों का ? तो जो पुरुष एक ज्ञानतत्त्वका आशय रखते हैं उन पुरुषोंको सिद्धि होती है, और जो क्षुद्र योगी हैं, खोटा ध्यान रखते हैं, छल कपटमें बर्तते हैं उनको उल्टी हानि ही होती है। इससे अपने भावोंको सही बनाये रखना चाहिए जिससे कषायोंका हममें प्रभाव न जमें, विषय भोगके साधनोंमें हमारा चित्त न लुभाये। इस प्रकारसे सजग रहना यह हम आप लोगोंके उद्धारका बीज है।

भवप्रभवसम्बन्धनिरपेक्षा मुमुक्षवः।
न हि स्वप्नेऽपि विक्षिप्तं मनः कुर्वन्ति योगिनः ॥२०७१॥

निरपेक्ष ज्ञानी संतोंके स्वप्नमें भी विक्षेपका अभाव—जिनके सम्यग्ज्ञान जगा है वे संसारके संकटोंसे मुक्ति पानेकी ही एक मात्र अभिलाषा करते हैं ऐसे प्राणी संसारमें उत्पन्न हुए संबंधमें भी निरपेक्ष रहा करते हैं। अपने लिए इन सांसारिक समागमोंसे कुछ भी वाञ्छा नहीं रखते, स्वप्नमें भी अपना मन विक्षिप्त नहीं करते। जैसा निरन्तर भाव रहता है स्वप्न में भी उस ही के अनुरूप चित्त रहता है। और जो जगतेमें भी विक्षिप्त हैं, सोतेमें भी विक्षिप्त हैं उनको अनेक बाधायें आयें तो इसमें कौनसे आश्चर्यकी बात है ? अपना परिणाम सबकी भलाई करनेका होना चाहिए। किसी भी जीवको हृदयसे विरोधी न मानें, बल्कि दूसरा जो अपनेको विरोधी समझे उसकी भी हम अज्ञानतापर दयाभाव रखें। कोई भी पुरुष मेरे विरोध के लिए विरोध नहीं करता किन्तु अपनी कषाय शान्त करनेकी चेष्टा कर रहा है। तो ऐसा ज्ञान जगे भीतरमें कि समस्त जीवोंके प्रति समताका भाव बने, किसीको अपना विरोधी न समझ सकें। जो पुरुष ऐसे निर्मल आशा वाले होते हैं वे इस भवमें भी सुखसम्पन्न होते हैं और उनका परलोक भी सुधरता है। इस प्रकार इस प्रकरणमें यह आगाह किया गया है कि सुख चाहने वाले पुरुषोंको खोटा चित्त मलिन ध्यान न बनाना चाहिए। ऐसा आगाह करनेके बाद अब आचार्यदेव रूपातीत ध्यानका वर्णन करेंगे।

http://www.jainkosh.org

अथरूपे स्थिरीभूतचित्तः प्रक्षीणविभ्रमः ।
अमूर्तमजमव्यक्तं ध्यातुं प्रक्रमते ततः ॥२०७२॥

रूपस्थ ध्यानके बाद रूपातीत ध्यानका प्रक्रम—उस ज्ञानीने अभी रूपस्थध्यानमें सकलपरमात्माका ध्यान किया था। अरहंत भगवान अर्थात् सशरीर भगवानके ध्यानको रूपस्थध्यान कहते हैं, क्योंकि अभी वहाँ मुद्रारूप शरीर दिव्यकाय वह सब उपस्थित है और उस मुद्राके माध्यमसे यहाँ ध्यान हुआ। तो रूपस्थध्यानमें उसने अपना चित्त स्थिर किया, ऐसा वह ध्यानी जिसको किसी भी प्रकारका कुछ विभ्रम नहीं रहा वह इसके अनन्तर अमूर्त, अजन्मा और अव्यक्त तत्त्वका ध्यान करनेके लिए उद्यम करता है, अर्थात् रूपातीत ध्यानमें अब आता है। रूपातीतका अर्थ है—जो रूप मुद्रा आकार प्रकारसे अतीत है, दूर है। इस ध्यानमें दो स्थानोंपर दृष्टि जायगी—एक तो सिद्ध प्रभु और दूसरा अपने आपमें अनादि अनन्त विराजमान शुद्ध चैतन्य तत्त्व। दोनों रूपातीत हैं, और उनमें भी प्रधान है वह ज्ञान-स्वभाव जिसके ध्यानमें इसे न अपने व्यक्तिका ख्याल है और न सिद्ध व्यक्तिका ख्याल है। ऐसा जो ज्ञानस्वरूप है, स्वभाव है वह है रूपातीत।

रूपातीत तत्त्वकी अमूर्तता व अजता—रूपातीत ज्ञानस्वभाव अमूर्त है याने रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित है। वह किसी आधारमें नहीं बँधा, किसी आकारमें नहीं बँधा। अतः वह सर्व प्रकारसे अमूर्त है। इसकी उत्पत्ति नहीं है, सदासे है, अतः अनादि है। किसने उत्पन्न किया है इस रूपातीत तत्त्वको ? यह विशेषण प्रधानरूपसे आत्मस्वभावमें घटित होता है पर सिद्धस्वरूपको भी देखो तो वह भी अज है, किसीसे उत्पन्न नहीं है। यद्यपि कर्मोंके क्षयका निमित्त पाकर सिद्धस्वरूप बना है, इस व्यवहारदृष्टिसे उस सिद्धपर्यायको सादि कह सकते हैं और जायमान कह सकते हैं, किन्तु उसकी वास्तविकतापर ध्यान दें तो विदित होगा कि वह सिद्धविकास भी किसी द्रव्यसे उत्पन्न नहीं हुआ, किसी कारणसे उत्पन्न नहीं हुआ, कोई वहाँ भिन्न कार्य नहीं है, क्योंकि वहाँ हुआ ही नहीं कुछ काम। देखिये इतना बड़ा काम होकर भी संसारके जन्ममरण कट गए, कर्मोंका बन्धन मिट गया, रागादिक विकार दूर हो गए तिसपर भी एक दृष्टि ऐसी है कि जिस दृष्टिमें यह नजर आयगा कि सिद्ध भगवानमें जो बात बनी है वह कोई कहीसे आकर नहीं बनी है।

रूपातीत तत्त्वकी स्वयंभुता पर एक दृष्टान्त—रूपातीत तत्त्वविकासकी अजताके संबंधमें एक दृष्टान्त लो। टाँकीसे उकेरी हुई प्रतिमा। एक बड़े पाषाणमें एक प्रतिमा बनवानी है तो कारीगरको बुलाकर वह पाषाण दिखाया और कह दिया कि देखो यह प्रतिमा इसमें बननी है। तो पाषाणके देखते ही उस प्रतिमाका वह आकार जो बनाना है वह उस पाषाणके अन्दर उसे दिख गया, और वह कह देता है कि ठीक है प्रतिमा बन जायगी। तो कारीगर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उस प्रतिमाको कोई नई नहीं बना रहा, किसी चीजको जोड़ नहीं रहा, जैसे कि कोई मिट्टीकी प्रतिमा बनाये तो मिट्टी जोड़ जोड़कर उसमें लगा लगाकर एक प्रतिमा खड़ी करदे, इस तरहसे नहीं किया जा रहा है किन्तु जो प्रतिमा निकालनी है वह प्रतिमा उस पाषाणके अन्दर बिराजमान है। सिर्फ उस प्रतिमाके ढाकने वाले (आवरण करने वाले) जो अगल-बगलके पत्थर हैं उन्हें कारीगर हटाता है। जब पूर्ण रूपसे आवरण हट गये तो जो प्रतिमा उस पाषाणके अन्दर पहिले से ही मौजूद थी वह निकल आयी। इसी तरहसे उस सिद्ध अवस्थामें हुआ क्या कि जो आत्मामें था स्वभाव, उसकी अपने सत्त्वके कारण जो बात थी वह प्रकट हो गयी। इस दृष्टिसे यह कहेंगे कि यह सिद्ध अवस्था किसी परसे जायमान नहीं है, अतएव वह भी अज है। जो विशेषण प्रधानरूपसे आत्मस्वभावमें लगे, उसे वहाँ लगाये और जो दोनों जगह लगे उसे दोनों जगह लगाये।

रूपातीत तत्त्वकी अव्यक्तता—वह रूपातीत तत्त्व कल्पनातीत अव्यक्त है। कहाँ प्रकट है? किसीने कहा कि चलो आज हम एक संतके दर्शन करा लायें। चल दिया। वहाँ बता दिया कि ये देखो बैठे हैं महाराज। ठीक है दर्शन कर लिया। अब चलो वीतराग प्रभुके, सकलपरमात्माके दर्शन करा लायें—चलिये—ले गया और करा दिया दर्शन। ये देखो बिराजमान हैं प्रभु। ठीक है दर्शन कर लिया। चाहे परमार्थ बात उसने न भी जानी तो भी दिलको तो चैन हो गया कि हमने प्रभुके दर्शन कर लिये और कोई कहे कि चलो हम तुम्हें उस सिद्ध स्वरूपके, चैतन्यस्वरूपके दर्शन करा लायें। चलो। अब कहाँ दर्शन कराये, कहाँ दिखाये, कहाँ बैठाये? वह स्वरूप तो अव्यक्त है, जो ज्ञानद्वारा जाननेका उद्यम करता है सो ही जान सकता है। ज्ञानियोंको तो वह स्वरूप व्यक्त है पर अज्ञानियोंको अव्यक्त है, यों भी कह सकते हैं। और फिर बाह्य सम्पर्क न होनेसे व्यवहारमें किसी भी रूपमें व्यक्त नहीं है। ऐसा जो रूपातीत तत्त्व है उसका ध्यान करनेके लिए यह योगी उपाय करता है।

चिदानन्दमयं शुद्धममूर्त्तं परमाक्षरम्।
स्मरेद्यत्रात्मनात्मानं तद्रूपातीतमिष्यते ॥२०७३॥

रूपातीत तत्त्वकी चिदानन्दमयता—चैतन्यात्मक आनन्दस्वरूप शुद्ध अमूर्त परम अक्षर ऐसे आत्माको आत्माके ही द्वारा स्मरण करे तो वह रूपातीत ध्यान है। इन सब विशेषणोंमें आप आत्मस्वभावपर दृष्टि लगायें और इसको वहाँ व्यक्त करें। वह तत्त्व चैतन्यात्मक है। कोई भी पदार्थ हो उसकी कुछ न कुछ बॉडी होती है। आत्माकी अपनेमें अपनी बॉडी क्या है? वह तो विध्यात्मक तत्त्व है जिससे जाना जाय कि यह आत्मा है वह है चैतन्यस्वरूप। वह आनन्दमय है। जहाँ आकुलता रंच भी न हो उसीको तो आनन्द कहते हैं। दूसरे शब्दोंमें हम यह भी कह सकते कि जो सर्व ओरसे समृद्धिशाली हो उसीका नाम है आनंद। अर्थात्

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जहाँ गुणोंका चरम विकास है, पूर्ण समृद्धि है उसे आनंद कहते हैं। और इस समृद्धिमें आकुलताका नाम नहीं है। तो आकुलता न होनेका नाम आनंद है। भक्तिमें यह भी कहा है कि हे प्रभो! मुझे अनंत सुख न चाहिए। क्या करना है अनंतका, पर इतना चाहता हूं कि आकुलताका संताप रंच न रहे और होता क्या है उस अनंतमें? तो यह स्वरूप आकुलतारहित है। आकुलता तो जीवोंने मोह रागद्वेष कर करके बनायी है।

चिन्मात्रस्वरूपकी दृष्टिमें आकुलताका विश्लेष––भैया! अपने आप ही परख लो। ज्ञानदृष्टि जगे, समस्त परजीवोंसे, परतत्त्वोंसे निराला मेरा यह चैतन्यस्वरूप ही है, मैं इतना ही मात्र हूं, ऐसी दृष्टि जगे तो वहाँ फिर आकुलता नहीं रह सकती। जैसे अनेक घरोंमें लोग रहते हैं, उन सब घरोंके लोगोंसे आपके चित्तमें क्या आकुलता है, वे अच्छे रहें या बुरे रहें। आकुलता इसलिए नहीं आती कि आपने उनसे तो भेदविज्ञान बना लिया है कि मैं इनसे निराला हूं, ये सब गैर हैं। तो ऐसे ही इन सांसारिक समस्त अनात्मतत्त्वोंसे यदि यह भेदविज्ञान बने कि मैं इन सर्वसे निराला, शरीर तकसे भी निराला चैतन्यमात्र हूं, ऐसी प्रतीति बने, ऐसा सत्यका आग्रह बने तो वहाँ आकुलताका फिर क्या काम है? तो वह स्वरूप जो रूपातीत ध्यानमें ध्याया जा रहा है वह आनन्दमय है, शुद्ध है, स्वभावतः समस्त परपदार्थोंसे पृथक् है। परभावोंकी बात अभी नहीं कह रहे, पर प्रत्येक जीव परपदार्थोंसे निराला है। सभी शुद्ध हुए उस नयदृष्टिसे, लेकिन ऐसा होकर भी अपनेको शुद्ध समझ नहीं सकते। और परपदार्थोंमें लगे भिड़े सने हुए ही कल्पनासे अपनको मान रहे हैं, तो वह तो उनकी कल्पनासे परतंत्रता है, पर किसी पदार्थमें किसी अन्य पदार्थका प्रवेश नहीं है, इतनी शुद्धता तो अनादि अनंत समस्त पदार्थोंमें है और फिर यहाँ स्वभाव और विभावका भेदविज्ञान करके शुद्धको निरखा जा रहा है। ऐसा मैं चैतन्यमात्र शुद्ध आत्मा हूं और अमूर्त हूं, रूप आदिक विडम्बनाओंसे दूर हूं, तभी मैं चैतन्यात्मक हूं, आनंदस्वरूप हूं। इस तत्त्वमें जब दृष्टि खचित होती है, फिर उसमें अगर रह जाय उपयोग तो उस समय उस अनुभवमें जो बात होती है, आनन्द होता है, बस दुनियामें सारभूत बात इतनी ही है, बाकी सारी चीजोंमें तो कुछ भी सारभूत बात न मिलेगी।

असार सम्पर्कोंसे निवृत्त होकर रूपातीत ध्यानमें उतरनेका अनुरोध––भैया! इन सब चीजोंका समागम कितने दिनोंका है, यहाँ किसको क्या दिखाना है, कौन यहाँ मेरा प्रभु है? यहाँ किसको प्रसन्न करना, किसको दिखाना, किनमें यश चाहना, किनमें पोजीशन बढ़ाना? हैं ना ये सब व्यर्थकी बातें! अहो मोही जन इन ही व्यर्थ बातोंकी कल्पनायें गढ़-गढ़कर अपने जीवनको बरबाद किए जा रहे हैं। यहाँ एक अपने आत्मस्वभावको भूलकर किन असार पदार्थोंमें अपनी दृष्टि गड़ाई जाय? किन चीजोंके लिए अपने जीवनको यहाँ आकुलित बनाया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाय ? निरंतर व्यर्थकी कल्पनायें जो बनायी जा रही हैं वे तो अपनी बरबादीके ही कारणभूत हैं। तो यह आत्मा अमूर्त है, परम अक्षर है, अविनाशी है। ऐसे आत्माको इस आत्माके ही द्वारा स्मरण करे तो इस स्मरणको कहेंगे रूपातीत ध्यान। धर्मध्यानके इस प्रकरणमें ज्ञानीने प्रभुकी आज्ञाको प्रधान करके ध्यान किया। फिर रागादिक भावोंके विनाशकी उत्सुकताका भाव लगाकर ध्यान किया, फिर कर्मोंके नाना विपाकोंको निरखकर संसारसे उपेक्षा भाव करके ध्यान किया, फिर पिण्डस्थ, पदस्थ और रूपस्थमें क्रमसे बढ़-बढ़कर इसने अपना चित्त एकाग्र किया, और अब उस तत्त्वपर उतरा जा रहा है जिसके लिए ये पूर्वके सारे ध्यान बनाये गए थे। उस आत्मतत्त्वका जो आत्मासे ही स्मरण करे उसके ध्यानको रूपातीत ध्यान कहते हैं।

वदन्ति योगिनो ध्यानं चित्तमेवमनाकुलम्।
कथं शिवत्वमापन्नमात्मानं संस्मरेन्मुनिः ॥२०७४॥

मुक्तिप्राप्त सिद्ध प्रभुके स्मरणमें अनाकुल चित्तकी संभवतापर प्रश्न—क्षोभरहित परिणामको ध्यान कहते हैं। जहाँ आकुलता न हो ऐसे एकाग्र चित्तको योगीजनोंने ध्यान बताया है। ऐसी बात सुनकर बात तो ठीक है कि नहीं, लेकिन सुनकर जो कोई विवेकी पुरुष है उसने या तो किसी प्रकारकी आशंका मिटानेके लिए यह प्रश्न किया है या प्रकरणको स्पष्ट करानेके लिये यह प्रश्न किया है कि जब क्षोभरहित परिणामका नाम ध्यान है तो मोक्ष प्राप्त आत्माका अर्थात् सिद्ध भगवानका कोई स्मरण कैसे करें, क्योंकि ध्यान करने वाला है यह मुनि। और ध्यान किया जा रहा है मोक्ष प्राप्त सिद्ध भगवानका। तो जहाँ यह द्विविधा है—ध्यान और है, ध्येय और है तो ऐसे ध्येयको उपयोगमें लेनेसे तो क्षोभ होगा। इस प्रश्नके उत्तरमें कह रहे हैं—

विवेच्य तद्गुणग्रामं तत्स्वरूपं निरूप्य च।
अनन्यशरणो ज्ञानी तस्मिन्नेव लयं व्रजेत् ॥२०७५॥

सिद्धप्रभुके स्मरण व उपयोगमें अनन्यशरणताकी संभवतासे ध्यानसिद्धिका समाधान—कहते हैं कि प्रथम तो परमात्माके गुण समूहको, उसके स्वरूपको पृथक् पृथक् विचारे, और फिर उन गुणोंके समुदायरूप परमात्माको गुणगुणीके अभिन्न भावसे विचारे और फिर अन्य किसीकी शरणसे रहित होकर ज्ञानी पुरुष उसी परमात्मामें लीन हो जावे। यह ज्ञानी जब अनन्य शरण हो जाता है तब उस ही में लयको प्राप्त हो जाता है। भले ही उस सिद्ध प्रभुके ध्यानके प्रारम्भमें द्वैत बुद्धि है और प्रकट भी द्वैतता है। यह ज्ञानी भी ध्यान किसी अन्य क्षेत्र में बिराजे हुएको कर रहा है, लेकिन वहाँ जब गुणसमूहका विचार किया जाता है तो उस विचारमें चलते-चलते एक चैतन्यस्वभावका विचार रह जाता है और व्यक्ति छूट जाती है और उस चैतन्यस्वरूपका फिर जब ध्यान चलता है तो यह द्वैत नहीं रहता कि ध्यान करने वाला

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और है और ध्यानमें लाया गया पदार्थ और है। वह चैतन्यस्वरूप जब उपयोगमें आये तो चैतन्यस्वरूप और उपयोग—ये दोनों वहाँ एकरस हो जाते हैं, भेद नहीं मालूम होता है। तो उस समय यह ज्ञानी लयको प्राप्त हो जाता है। हम चौकीका ज्ञान करें तो ज्ञान और चौकी एक रस कैसे बन सकते हैं ? विलक्षण चीज है, विरुद्ध चीज है, ध्येय वस्तु अन्य तो ध्याता है व अन्य है और जब ज्ञान ही ध्यान करने वाला है और ज्ञानस्वरूप ही ध्येय बन जाता है तो वहाँ वह ध्यान ध्याता ध्येयका द्वैत मिट सकता है और वहाँ एकरूपता आ सकती है। इस कारणसे रूपातीतके ध्यानके लिए मुमुक्षुजनोंको ऋषिजनोंने आदेश दिया है।

तद्गुणग्रामसम्पूर्णं तत्स्वभावैकभावितः ।
कृत्वात्मानं ततो ध्यानी योजयेत्परमात्मनि ।।२०७६।।

परमात्मतत्त्वकी अभेदोपासनाका समाधान—परमात्माके स्वभावमें एक भावसे भावित हुआ योगी अर्थात् परमात्माके स्वभावका ध्यान करते हुएमें तन्मय हुआ अन्य सब सुध बुधोंसे, विकल्पोंसे दूर हुआ परमात्मतत्त्वरूप अपनेको करता हुआ यह योगी परमात्माके संपूर्ण गुणोंसे युक्त तद्वत अपने आत्माको करके फिर उसे परमात्माको योजित करता है, ऐसा वहाँ ध्यानका विधान है। ध्यान किस विषयमें किया जाता है ? वह ध्यान यदि बड़ी उत्सुकतासे हुआ है तो ध्यान करने वाला अपनेको तद्रूप अनुभवने लगता है। तो जब परमात्मा सिद्ध भगवान के उन समस्त अनंत गुणोंको चतुष्टयको अनंत आनंद, अनंत ज्ञान इन ज्ञानोंसे ध्याया तो ऐसा एक होकर ध्येयके वे समस्त विकास इसके उपयोगमें ऐसे अभेदरूपसे ज्ञेय बने कि उस रूप अपनेको मानने लगा और ऐसे ध्यानोंके कारण यह योगी परमात्मस्वरूपमें अद्वैतरूपसे ध्यान करने लगता है। यह उस शंकाके समाधानमें बात कर रहे हैं जहाँ पूछा गया था कि भक्त अलग है और सिद्ध भगवान अलग हैं ? एक आत्मा दूसरे आत्माका ध्यान करेगा तो चूंकि विषय अन्य हो जानेसे, द्वैत हो जानेसे उसके क्षोभ तो आयगा, कुछ विकल्प तो आयेंगे। तब ध्यान कैसे बनेगा ? इसके समाधानमें कह रहे हैं कि यह योगी परमात्माके स्वरूपको इस प्रकार एक नयसे ध्यान करता है कि वह तो उसका स्वभाव ही भावित हो गया, तो यों वहाँ लीन हो जाता है।

द्वयोर्गुणैर्मतं साम्यं व्यक्तिशक्तिव्यपेक्षया ।
विशुद्धेतरयोः स्वात्मतत्त्वयोः परमागमे ।।२०७७।।

परमात्माके व्यक्त स्वरूप और अपने शक्त स्वरूपकी समानताके अनुभवका प्रभाव—आगममें बताया है कि परमात्माको स्वरूप विशुद्ध है, कर्मरहित है, और यह जो हम आप उपासना करने वाले हैं वे अभी कर्मसहित हैं और विशुद्ध भी नहीं हैं, किन्तु शक्तिकी अपेक्षा और व्यक्तिकी अपेक्षासे यदि मिलान किया जाय अर्थात् जो उनका व्यक्त स्वरूप है एक अपने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आपमें शक्ति रूपसे मिलाया जाय तो वहाँ समानता पायी जाती है। जैसे एक गर्म पानी और दूसरे ठंडे पानीमें व्यक्तिकी अपेक्षासे इनमें अन्तर है लेकिन ठंडे पानीके व्यक्तस्वरूपको और गर्म पानीमें इस प्रकारकी दृष्टिसे देखें कि इसका ठंडा स्वभाव है तो यह शक्तिसे जो देखा और दूसरे शीतल जलमें जो व्यक्तरूप देखा उसकी समानता मिली। इसी प्रकार भगवानमें जो ज्ञानका, आनंदका चरम विकास है उसमें जो उनकी स्थिति है उसे हम अपनेमें शक्तिरूपसे निरखते हैं तो एक समान है। तो यों व्यक्तिको और यहाँ शक्तिको जोड़ दिया ध्यानमें तो इस तरह हम उस प्रभुके ध्यानमें एक हो सकते हैं, लीन, निर्विकल्प हो सकते हैं। प्रभुका गुणगान करके यदि अपने आपकी शक्तिका परिचय नहीं पाता है कोई तो आया किसलिए है? और बातें तो किसी प्रकार अन्यत्र भी बन सकती थीं, प्रभुभजनमें तो यह दृष्टि लेना है कि जो प्रभु का आनंदमय स्वरूप है वह मेरेमें शक्तिरूप है, हम भी उसी मार्गपर चलें तो उसे प्रकट कर सकते हैं। तो अपनी शक्ति और प्रभुका व्यक्त स्वरूप, इनकी तो समानता है। तो अद्वैतके लिए एकाग्र चित्त होनेके लिए रास्ता तो मिला। इस तरह अपनी शक्तिको छोड़कर उस व्यक्तिमें यह जीव एकाग्रचित्त हो जाता है।

यः प्रमाणनयैर्नूनं स्वतत्त्वमवबुद्धयते।
बुद्धयते परमात्मानं स योगी वीतविभ्रमः ॥२०७८॥

स्वतत्त्वके अवबोधसे परमात्माका अवबोध—जो पुरुष प्रमाण और नयोंके द्वारा अपने आत्माके तत्त्वको जानता है वही योगी भ्रमरहित होकर परमात्माको जानता है। परमात्मामें यह भक्त निरखेगा क्या? अपने आत्माकी शक्तिस्वभावदृष्टिसे कुछ अनुभवी हुई हो, परिचय हुआ हो तो प्रभुके स्वरूपको भी हम समझ सकते हैं। यद्यपि कुछ अंशों तक हम ऐसी परस्पर अपेक्षा कर सकते हैं कि प्रभुके स्वरूपको जानेंगे तो हम अपनी शक्तिको जानेंगे, अपनी शक्ति को जानेंगे तो हम प्रभुके स्वरूपको जानेंगे। यद्यपि कुछ कुछ अंशोंमें हम ऐसी परस्पर अपेक्षा की बात रख सकते हैं, किन्तु यह तो बतावो कि थोड़ी बहुत शुरुवात कहाँसे हुई? कुछ बोध यहाँसे जगे तो फिर परमात्मस्वरूपका बोध हो, फिर उस बोधसे अपने आत्माका और बोध जगे, फिर परमात्मस्वरूपमें बोध जगे, इस तरह बढ़ोतरी हो जायगी। शुरुवात हम कहाँसे कर पायेंगे? इसका निर्णय कीजिए। शुरुवात हमारी हमारे आत्मासे होगी। यद्यपि इस प्रसंगमें हम कहीं यह निर्णय नहीं बना सकते कि शुरुवात यह है अब यहाँ चलें। एक व्यवहारनयमें, शुद्ध व्यवहारनयमें प्रभुभजनके प्रसंगमें चले आये हैं, कुछ यहाँ व कुछ वहाँ दृष्टि है, है शुद्धमें सो सफलता मिल जाती है।

स्वके अनुभवके अनुरूप परमें घटनाका बोध—स्थिति कैसी ही हो, पर अपने आपके आत्माकी निरख बिना हम परमात्माके स्वरूपको नहीं आंक सकते कि क्या है? जैसे किसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पुरुषको कोई दर्द हो रहा है जिसे कहते हैं कि हड़फूटन हो रही है या शरीरके कोई अंग बायके कारण तड़क रहे हैं, उस दर्दको हम देख रहे हैं, उसके रूपको लख रहे हैं, उस रोगी के मुखसे वेदनाका स्वरूप सुन रहे हैं, पर हम उस दर्दका अन्दाजा कब कर पाते हैं ? जब हम अपने उपयोगमें कुछ अपने उस दर्दरूप परिणतिसी ज्ञानमें बनाते हैं तब उस दर्दका अंदाजा कर सकते हैं। ये अन्य बातें तो बहुत-बहुत घटनाओंमें घटित होती हैं। किसी भी जीवके किसी महान दुःख दर्दको निरखकर पशु कट रहे हैं, पक्षी मारे जा रहे हैं, उन्हें बहुत बुरी तरहसे मारा जा रहा है, ये बातें देखते हैं या सुनते हैं तो हम उनके दर्दकी बात कब समझ पाते हैं ? जब हम अपने आपमें उस वेदनाका गुन्तारा लगा लेते हैं। यद्यपि हम कुछ समय सोचनेमें नहीं लगाते, होते हैं दूसरे काम लेकिन अपने आपमें किसी प्रकार जब इतना गुन्तारा लगाते हैं यों होता है दर्द, कुछ अपने आपमें हम थोड़ी झलक करते हैं—अपने आपके बारेमें दर्दकी, तो हमें उनके दर्दका स्पष्ट अंदाजा हो जाता है। किसी दुःखी जीवको देख कर करुणा कैसे उपजती है ? उसका स्रोत क्या है जिसमें स्वयं उस जातिकी कुछ वेदना जगती है तब करुणा उपजती है। तो इसी तरह हम यह स्वरूप भक्तिके बारेमें भी समझें कि प्रभुके स्वरूपका हम कब बोध कर पाते हैं, कब हम अच्छा अंदाजा लगा सकते हैं ? जब हम में कुछ अपने आपमें भी उन अपने गुणोंको किसी अंशमें समझा हो, माना हो तो हम प्रभु स्वरूपकी महिमा परख सकते हैं।

निज वैभवकी झांकीसे परमात्मवैभवका अन्दाजा—यहाँ कहा जा रहा है कि प्रमाण से नयोंसे अपने आत्माके स्वरूपकी जो व्यवस्था बना सकता है, जानकारी रखता है वह ही परमात्माको जानता है। अब आत्मतत्त्वका बोध कैसे बनता है ? उसकी यह चर्चा विस्तृत है और बहुत कुछ परिचित हैं सब लोग। स्याद्वाद है यह, जिसमें आत्मतत्त्वका निर्णय किया जाता है। नित्य हो, अनित्य हो, एक हो अनेक हो। यह मैं अनन्त गुणोंका पिण्ड हूं। जितने गुण हैं उतनी परिणतियाँ प्रति समय हो रही हैं। और यह मैं अपने प्रदेशोंमें ही रहता हुआ अपने ही स्वरूपमें, अपने ही गुणोंमें परिणमता हुआ चल रहा हूं, चलता रहूंगा आदिक अनेक परिणतियोंसे जब आत्मतत्त्वका बोधन हो और बोधनमात्र ही नहीं किन्तु उसकी अनुभूति जगी हो, ज्ञानमात्रका उपयोग करके उस प्रकारका अनुभव बना हो उसमें जो आनन्द पाया उसके बलसे यह ज्ञानी जानता है कि इस प्रभुके स्वरूपकी क्या महिमा होती है ?

व्योमाकारमनाकारं निष्पन्नं शान्तमच्युतम् ।
चरमाङ्गात्कियन्न्यूनं स्वप्रदेशैर्घनैः स्थितम् ॥२०७९॥
लोकाग्रशिखरासीनं शिवीभूतमनामयम् ।
पुरुषाकारमापन्नमप्यमूर्त्तं च चिन्तयेत् ॥२०८०॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनाकार आत्मतत्त्वका अनुभव और प्रभाव—ऐसे विशाल आकाशके बराबर आकार वाला, व्योमाकार, आकाशवत निर्लेप, निराकार परमात्माका ध्यान रूपातीत ध्यानमें होता है । इन्द्रियके व्यापारोंको रोककर, शरीरका भी विकल्प तोड़कर अपने आपमें निरखने चले तो मिलेगा क्या वहाँ ? एक ज्ञानस्वरूप, एक जाननस्वरूप । जिसे हम किसी रूपमें नहीं पकड़ सकते, जिसे हम किसी सिद्धान्तमें नहीं पकड़ सकते । केवल भावात्मक तत्त्व है । वह आकाशवत् अमूर्त है, निर्लेप है । इस तरह अपने आपको ध्यानमें ला रहा है यह योगी । ये सब बातें मोह जालके विध्वंस करनेमें कारण हैं इसलिए इसका अपनी शान्तिके लिए बड़ा महत्त्व है । मैं आकाशवत् अमूर्त और निर्लेप हूं, ऐसा अनुभव पानेके बाद इसके बाह्यमें यह दृढ़ निर्णय होता है कि समस्त समागम प्रकट भिन्न हैं, मेरे लिए असार हैं, इनसे मेरेको कुछ लाभ नहीं है । जब कोई बड़े लाभकी बात पा ले तब ही तो वह इन समस्त सांसारिक सुख के समागमोंको असार जान सकता है । किसी भिखारीसे कोई कहे कि तू अपनी झोलीमें ये १०—५ दिनकी सड़ी रोटी लिए है, तू इनको फेंक दे, मैं तुझे ताजी पूड़ी पकवान दूंगा । तो उसके कहने मात्रसे वह फेंकता नहीं है । उसे विश्वास ही नहीं होता । और जब वह ताजा पूड़ी पकवान लाकर उसके सामने रख दे और उसे दे दे तो वह फेंक भी देगा । उनके रखने से क्या फायदा ? तो हम अपने आपके ज्ञानमात्र अनुभवसे उत्पन्न हुए आनन्दका उपयोग करनेकी धुनि न बनायें और गाते रहें बहुत-बहुत तो इतना गाने मात्रसे यह अपने आपका जो विकार है, विष है वह हट नहीं पाता है ।

ज्ञानानुभवसे ही विशुद्धानन्दका लाभ—यदि रहा सहा जो १०-५ वर्षका समय है उस समयको ऐसे पागलपनमें बिता दें—जिस पागलपनके मायने हैं जो दुनियाके लिए पागल-पन दिखता है, यदि इसको हम अपने ज्ञानकी धुनिमें बिता दें और चाहे कितने ही उपसर्ग सामने आयें उनकी परवाह न करें, उन्हें समझें कि ये हैं ही नहीं मेरे ऊपर कुछ, ऐसी धुनि-पूर्वक बिता दें तो अनन्त काल तो हमारा बीत गया, ये १०—५ वर्ष अगर हमारे इस तरह बीत जायें तो कौनसे समयका घाटा है ? समय तो अनन्त है और अनन्त समय तक रहना है । भैया ! ऐसी धुनि बन तो सकती है । थोड़ा साहस करें और सत्संग बढ़ायें, स्वाध्यायमें समय बढ़े तो ये सब बातें हम अपनेमें पा भी सकते हैं । प्रमादसे तो काम न चलेगा, श्रम करना होगा । जैसे लड़के लोगोंको देखा होगा वे झूठी पंगत करते हैं आपसमें, पत्ते परोस दिये तो कह दिया कि लो ये पूड़ियां हैं, कंकड़ परोस दिये तो कह दिया कि लो ये बूंदी हैं, ढेला परोस दिया तो कह दिया कि लो ये लड्डू हैं । तो इस तरहकी पंगत करनेसे उन लड़कोंका मन भर जायगा, पर पेट तो नहीं भर पायगा । इसी तरहसे एक अनुभूतिका प्रयोग किये बिना भीतरमें एक आत्महितकी अभिलाषापूर्वक अपनेमें अपनेको जोड़े बिना इन बातोंको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सुनकर पढ़कर कुछ मन तो भर जायगा, पर वह स्वाद तो न मिल पायगा जो सिद्धप्रभुके समान जातिका आनंद भोगा जाता है।

आत्मतत्त्वकी स्वयंनिष्पन्नता—यह ज्ञानी चिन्तन कर रहा है कि यह मैं आकाशवत् निराकार हूं, स्वयं निष्पन्न हूं, मुझे किसीने बनाया नहीं, अनादिसे ही पूराका पूरा बना हुआ हूं, सत्त्वके कारण ही परिपूर्ण हूं, अधूरा कभी होता ही नहीं मैं। कोई लोग कहते हैं—पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णात्पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।। एक पूर्ण ब्रह्मकी स्तुतिमें कहा है लेकिन अध्यात्मसे घटित किया जाय तो एक मर्म विदित होता है--यह आत्मा पूर्ण है, किसी भी समय अधूरा नहीं है। जब निगोद स्थितिमें है तब भी यह अधूरा नहीं है। जिस रूप भी परिणम रहा है वह वहाँ उसमें ही परिपूर्ण है, अधूरा क्या है? जब और अच्छी स्थितिमें आया तब भी यह सत् परिपूर्ण है। कुछ भी अवस्था हो, ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसमें अधूरेपनकी कभी कोई बात हो। तो यह आत्मा पूर्ण है और वह भी पूर्ण है प्रभु, जिसको आदर्शमें लेकर हम अपने आपकी समझ बढ़ा रहे हैं। यह पूर्ण है और पूर्णसे से पूर्ण निकलता है। इस परिपूर्ण आत्मासे जब भी जो पर्याय प्रकट होती है वह परिपूर्ण ही प्रकट होती है। चाहे सिद्ध पर्याय हो, चाहे विकृत पर्याय हो, सत्त्वकी बात तो परिपूर्ण ही है। क्या कोई पर्याय ऐसी है कि जो यह कहे कि हम तो अभी आधे ही बन पाये हैं, अभी आधे और बनना है? अरे एक ही समयमें जो कुछ बनता है वह तो पूर्ण है। तो इस पूर्णसे पूर्ण निकलता है और पूर्णसे पूर्णको ग्रहण करके भी उस निकले हुए परिपूर्णको पूर्णमें विलीन करके भी यह शेषमें क्या रहा? पूर्णका पूर्ण। यह आत्मा स्वतः निष्पन्न है, यह अधूरा नहीं है।

आत्मतत्त्वकी अच्युतस्वरूपता--यह आत्मा शान्त है, स्वभावतः यह निराकुल है। स्वरूप इसका ज्ञानमात्र है, वह अनाकुलताको ही लिए हुए है। यों यह मैं शान्त हूं और जो कुछ भी मेरा स्वरूप है उस स्वरूपसे मैं च्युत नही होता। कोई पदार्थ अपने स्वरूपको, स्वभावको कभी नहीं छोड़ सकता, यह नियम है। यदि छोड़ देता होता तो आज जगतमें कुछ भी न होता, शून्य होता। ये पदार्थ अब भी मौजूद हैं। ये इस बातका प्रमाण दे रहे हैं कि इन सब पदार्थोंमें से किसी भी पदार्थने अपना स्वरूप नहीं तजा। इनकी उपस्थिति ही इस बातकी घोषणा कर रही है। यह मैं आत्मा अपने स्वरूपसे अच्युत हूं, सिद्ध प्रभुका ध्यान चल रहा है। वे प्रभु जिस शरीरसे मुक्त हुए हैं उस अंतिम शरीरसे कुछ न्यून है। न्यून क्या है? जो हम आपके बाहर निकले हुए नख हैं या जो केशोंके अन्तिम रोम हैं या जो इस शरीरके ऊपर की सबसे पतली चमड़ेकी झिल्ली है, इन सबमें भी आत्मप्रदेश नहीं हैं, पर वे भी शरीरके अङ्ग कहलाते हैं। शरीर जहाँ दूर हुआ बस जितना आत्मा है उतना ही रह गया। अपने

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रदेशमें घनरूपसे स्थित है, ऐसा सिद्धका ध्यान हो रहा है। सिद्धका ध्यान करनेमें अपनेमें अपना भी ध्यान किया जा सकता है। यह मैं भी देहसे कुछ न्यून हूं अब भी। इतनी बात घटा लो—बाहर निकले हुए नख, केशोंका ऊपरी भाग, शरीरके ऊपरकी पतली चमड़ेकी झिल्ली, इनमें आत्मप्रदेश नहीं है, पर मैं अपने प्रदेशोंमें घनरूपसे स्थित हूं, इस प्रकार यह रूपातीत ध्यानी आत्मतत्त्वका चिन्तन कर रहा है।

(रूपातीतध्यानवर्णन प्रकरण ४०)

सिद्ध प्रभुकी लोकाग्रशिखरपर आसीनता—तत्त्ववेदी पुरुष सर्वोत्कृष्ट निर्दोष सर्वगुण सम्पूर्ण सिद्ध परमात्माका ध्यान कर रहा है। यह प्रभु लोकके अंतिम शिखरपर विराजमान हैं, सर्व कर्मकलंकोंसे छुटकारा पा चुके हैं। यह जीव स्वभावतः ऊर्ध्व गमन करता है और कहाँ तक चला जाता है, जहाँ तक लोक है। लोकके शिखरपर वहाँ सिद्ध प्रभु विराजे हैं। ऐसा ऊर्ध्वगमनका जीवमें स्वभाव है, लेकिन कर्मकलंकसे दबा हुआ होनेके कारण यह अपने स्वभाव रूप गमन नहीं कर पाता। जहाँ चाहे ऊंच नीच गतियोंमें यह जीव उत्पन्न होता रहता है। तो जैसे कीचड़से भरी हुई तुम्बी पानीमें डाल दी जाय तो वह तुम्बी नीचे चली जाती है, किन्तु जब वह कीचड़ निखर जाता है तो वह तुम्बी स्वभावसे ही ऊपर आ जाती है, इसी प्रकार जब जीवके ये कर्म निखर जाते हैं, बन्धन टूट जाता है तो यह आत्मा शुद्ध होकर ऊर्ध्वगतिको गमन करके लोकके अन्त तक पहुंच जाता है। ये प्रभु लोकके अन्तमें विराजमान हैं।

प्रभुकी कल्याणस्वरूपता एवं अनामयता—प्रभु स्वयं कल्याणस्वरूप हैं। इनकी कल्याणमूर्तिको देखकर भव्यजन अपने कल्याणका मार्ग प्राप्त करते हैं। ये प्रभु सर्व रोग रहित हैं। रोगोंका आधार शरीर है। शरीरोंसे वे मुक्त हो गए, तब फिर रोगोंका वहाँ काम क्या ? रोग दूर होनेके लिए ज्ञानी पुरुषोंने यह दवा दी है कि रोग रहित आत्माके स्वरूपका दर्शन करने लग जायें। इससे जरूर असर होगा, स्थायी असर होगा। तत्काल असर न भी हो सके, पर कुछ समय बाद यह ऐसे पदको प्राप्त कर लेगा, जैसे कोई रोग हो तो भीतरमें एक ऐसा साहस बने कि इस शरीरसे अपना उपयोग हटाकर केवल ज्ञानमात्र जैसा कि सर्व विविक्त स्वरूप है उसका ध्यान बन जाय तो देह पसीनेसे भर जायगा और सब रोग निकल जायेंगे। ऐसा भी होता है। और इस आत्मस्वरूपको निरखनेपर उसका उपयोग विशुद्ध रहता है। रोगकी कल्पना भी नहीं है।

पुरुषाकार अमूर्त परमात्मतत्त्वका चिन्तन—ये प्रभु पुरुषाकार हैं। जिस देहसे मुक्त हो गए उस देहके आकार आकार हैं। फिर भी आत्माके प्रदेश जहाँ तक ठहरे हैं इस दृष्टिसे तो उनका आकार है, किन्तु मूर्तिकी तरह आकार बने ऐसा आकार नहीं है। वे अमूर्त हैं। ऐसे दिव्यस्वरूपका यह ज्ञानी स्पष्ट चिन्तन कर रहा है। ये ज्ञानीजन अपने चित्तको और कहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लगायें ? अन्यत्र अपना चित्त लगानेसे कोई भी प्रयोजन नहीं सिद्ध होता। वे शुद्ध तत्त्वका ध्यान करते हैं। सिद्धको जानता हुआ, सिद्धका ध्यान करता हुआ पुरुष उस उपयोग रूप होता है और उसमें परिणति भी शुद्ध होने लगती है और अशुद्धको जाने, अशुद्धमें सम्पर्क रखे तो उसके फलमें शुद्ध परिणतिकी क्या आशा हो सकती है ? ये प्रभु ऐसे निर्दोष सर्वगुण सम्पन्न हैं। इस प्रकार रूपातीत ध्यानमें ज्ञानी पुरुष उत्कृष्ट परमात्मतत्त्वका चिन्तन कर रहा है।

निष्कलस्य विशुद्धस्य निष्पन्नस्य जगद्गुरोः।
चिदानन्दमयस्योच्चैः कथं स्यात्पुरुषाकृतिः ॥२०८१॥

निष्कल परमात्माकी पुरुषाकारताकी संभवतापर प्रश्न—सिद्धस्वरूपको रुचिसे सुनने वाला और उससे अपना ध्यान विशुद्ध करने वाला कोई श्रोता एक विशद आशय बनानेके लिए एक प्रश्न रख रहा है कि ये भगवान देहरहित हैं, निष्कल हैं, विशुद्ध हैं, निष्पन्न हैं, चिदानन्द स्वरूप हैं, ऐसे आत्माका आकार पुरुषके समान कैसे बनाया जा रहा है ? यह आत्मा फैल भी सकता था। सारे लोकमें फैल जाय या सिकुड़ करके बटबीजकी तरह छोटा बन जाय, अथवा कुछ भी हो। एक ढंगसे पुरुषाकार बन जाना, बना रहना, यह कैसे सम्भव है ? इस प्रश्नका समाधान करते हैं—

विनिर्गतमधूच्छिष्टप्रतिमे मूषिकोदरे।
यादृग्गगन संस्थानं तदाकारं स्मरेद्विभुम ॥२०८२॥

अन्य आकार होनेका कारण न होनेसे परमात्माकी अन्तिमदेहाकारता—जिस प्रकार से एक मूषिका तैयार की जाती है। उसके अन्दर मोम भरा हुआ होता है और पिघला देने पर उस मूषिकाका एक आकारमात्र रह जाता है। वहाँ एक आकाशका आकार मात्र रह जाता है इसी प्रकार प्रभुका जब वह शरीर उड़ गया तो वहाँ क्या रह गया ? जैसा वह शरीर है बस तदाकार रह गया। दूसरी बात यह है कि आत्माका फैलना और सिकुड़ना ये आत्मा में आत्माके कारण स्वभावसे नहीं हैं। किन्तु उस उस प्रकारके कर्मविपाकसे यह सिकुड़ता और फैलता है। जैसा शरीर मिला उस प्रकारसे यह फैल गया। अभी हाथीके शरीरमें है और मरकर चींटीके शरीरमें आ गया तो चींटीके शरीर बराबर आकारमें फैल गया, यही उसका सिकुड़ना हुआ। और अभी चींटीके शरीरमें है और मरकर हाथीके शरीरमें पहुंच गया तो यह हाथीके शरीरके आकार बराबर फैल गया। यों ही जिस किसी भी जगह यह उत्पन्न हुआ उसी आकार रूपमें यह फैल अथवा सिकुड़ जाता है। जब कर्मसमूह दूर हुए, शरीर विघटा तो अब क्या कारण होगा कि अन्य आकार बन जाय। फैल जाय तो उसका कारण क्या ? सिकुड़ जाय तो उसका कारण क्या ? जिस आकारमें है उस मात्र रह गया।

Version

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसी सम्बन्धमें अब दूसरा दृष्टान्त दे रहे हैं ।

सर्वावयवसम्पूर्णं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
विशुद्धादर्शसङ्क्रान्तप्रतिबिम्बसम प्रभम् ।।२०८३।।

ज्ञानीका वैभव सर्वस्व—समस्त अवयवोंसे परिपूर्ण उन समस्त लक्षणोंसे लक्षित ऐसे निर्मल दर्पणमें जो प्रतिबिम्ब पड़ रहा हो उसके समान प्रभावाला यह परमात्मतत्त्व है उसका चिन्तन करें । जैसे निर्मल दर्पणमें जिस पुरुषका प्रतिबिम्ब पड़ा है उसके समस्त अवयव और लक्षण दिखाई देते हैं इसी प्रकार परमात्माके प्रदेश शरीरके अवयवरूपसे परिणमते हैं और वहाँ समस्त लक्षणोंकी तरह समस्त गुण रहते हैं । क्या हो गया ? शरीरका खेल मिट गया और विशुद्ध निर्विकल्प निष्तरंग जो था सो रह गया । ऐसी कैवल्यपरिणति जब होती है तो भक्तजन उनके गुणगानमें उनके सम्मानमें अपने जी भर समस्त वैभव लगाकर आनन्द मानता है । सब एक दृष्टिका फेर है, जिसको धर्म रुचा है उसका ऐसे प्रसंगोंमें ही तन, मन, धन और वचन है । अपने आपमें धर्मकी दृष्टि न जगे, उनके लिए ये परिवारजन जिनमें प्रीति हो, राग हो, जिसके कारण कुछ स्वार्थ अधिक सिद्ध हो, विषयसाधन हों, मनकी वृत्ति हो उसे बस वह ही सर्वस्व है, और कदाचित् उनका वियोग हो जाय तो यह मानता है कि मेरी तो दुनिया लुट गई और कितने ही लोग तो उस समय अपने ही प्राण खो देते हैं, धीरज समाप्त कर देते हैं । है क्या ? ये तो सब उन्मत्त चेष्टायें हैं ।

सिद्ध परमात्माकी उपासनामें ही शरणका लाभ—इस विशाल लोकमें यह परिचित क्षेत्र कितना-सा क्षेत्र है ? यह समस्त लोकका असंख्यातवां भाग है, करोड़वां भी भाग नहीं, अरबवां भी भाग नहीं । इससे भी परे संख्यातवां भी भाग नहीं, यह तो असंख्यातवां भाग है । इतनी सी जगहमें मोह ममता करके क्यों अपनेको बरबाद किया जा रहा है ? इनको छोड़कर इस सर्वलोकपर दृष्टि दें, सर्वजीवोंपर दृष्टि दें और सर्वसमयोंपर दृष्टि दें तो आत्मीय ज्ञाननेत्र जगेगा और फिर अन्तरमें यह मोहान्धकार न रहेगा । जिन्होंने ऐसी उदार विशाल दृष्टि की है वे भव्य आत्मा इन बन्धनोंको तोड़कर सदाके लिए आनन्दमग्न हो गए । उनका ध्यान न करें तो किसके ध्यानमें लगें ? कौन है जगतमें ऐसा पुरुष अथवा अन्य कोई भी जीव जो हमारे लिए शरण बन सके ? एकमात्र यह निर्दोष परमात्मा ही ध्यानके योग्य है । तो ज्ञानी पुरुषकी बस एक लक्ष्यपूर्वक एक इस ही निर्दोष तत्त्वपर दृष्टि जाती है, वह किसीके बहकाये बहकता नहीं है ।

देवतासे स्वार्थसाधनाकी प्रार्थनाका व्यर्थ विकल्प—घरमें कोई बच्चा बीमार हो जाय और कोई कह दे कि अमुक देवस्थानपर इसे ले जावो, उसका पूजा पाठ करो तुम्हारा लड़का ठीक हो जायगा, तो इस प्रकारकी बातें मानकर कोई देवी देवताओंकी आराधना करना योग्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नहीं है । एक ग्वालाके पास १०० भैंसें थीं । तो एक बार भैंसोंपर चेचककी बीमारी आयी । तो उस बीमारीमें उसकी भैंसें मरने लगीं । तो वह ग्वाला किसी चेचक देवीकी मूर्तिके पास जाकर उसकी बहुत आराधना करे अपनी भैंसोंको बचानेके लिए । इतना करनेपर भी उसकी रोज-रोज बहुतसी भैंसें मरती गईं । यहाँ तक कि जितना अधिक वह उस चेचक देवीसे भैंसों के बचनेकी प्रार्थना करे उतना ही अधिक उसकी भैंसें मरती जावें । (यह सही घटना सुना रहे हैं) तो ९० भैंसें मर गयीं । जब १० भैंसें बचीं तो एक दिन वह उस चेचक देवीसे कहता है कि ऐ देवी ! ले ले तू मेरी इन १० भैंसोंको भी । मैं अब तेरी आराधना नहीं करता, और ले तुझे मैं फोड़ फाड़कर इस नदीमें फैंके देता हूं । आखिर फैंक ही दिया । उसी दिनसे सुयोग की बात है कि भैंसोंका मरना रुक गया । वे दसों भैंस उस बीमारीसे बच गईं । तो केवल एक कल्पना भर है कि कोई देवी देवता बचा लेता है । यह सब एक चल रहा है नियोग । संसार जन्ममरण, निमित्तनैमित्तिक भाव एक चक्र है यह । यहाँके पाये हुए समागमोंमें जो अनुरक्त रहेगा वह दुःखी होगा और जो इनमें विरक्त रहेगा वह इन समागमोंमें रहनेके काल में भी दुःखी न होगा ।

फंसावका कारण स्नेह—भैया ! इन समागमोंसे जो बोले, जो राग करे बस वही फंस जाता है । एक राजाको किसी जंगलमें एक साधु मिल गया । साधुने उसपर प्रसन्न होकर कहा कि राजन् ! तुम्हें क्या चाहिए ? तो राजा बोला महाराज मैं एक पुत्र चाहता हूं । तो साधुने कहा—अच्छा हो जायगा । कई माह गुजर गए । साधुने सोचा कि अब तो रानीके गर्भका समय है पर इस समय कोई जीव मर नहीं रहा, किसे इस रानीके गर्भमें भेजूँ । सो स्वयं ही मरण करके रानीके गर्भमें पहुंचा । वहाँ बड़े बड़े दुःख सहने पड़े । तो पेटके अन्दर ही प्रतिज्ञा की कि जब मैं पैदा हो जाऊँगा तो कभी बोलूंगा नहीं । आखिर पैदा हो गया । राजघरानेमें बड़ी खुशी छा गई । पर जब ७-८ वर्ष तक कुछ बोले ही नहीं तो राजाको बड़ा दुःख हुआ । और अपने राज्यमें यह डंका बजवा दिया कि मेरे पुत्रको जो बोलता बता देगा उसे बहुतसा पुरस्कार दूंगा । बहुतसे लोगोंने उसे बोलता बतानेका प्रयत्न किया, पर कोई भी उस कामको कर सकनेमें समर्थ न हो सका । एक दिन वह राजपुत्र वाटिकामें शामके समय खेलने गया । देखा कि एक चिड़ीमार जाल बिछाये चिड़ियां पकड़ना चाहता है, किन्तु कोई चिड़िया न दिखी । थोड़ी देरमें ही जाल लपेटकर चलने लगा, इतनेमें ही एक डालपर बैठी हुई चिड़िया च्याऊँ च्याऊँ कर बोल उठी । चिड़ीमार फिर लौट आया, जाल बिछाया, चिड़िया फंस गई । उस समय उससे न रहा गया, सो वह राजकुमार बोल उठा—जो बोले सो फंसे । इतने शब्द चिड़ीमारने सुन लिए तो झट जालको फेंककर राजदरबारमें पहुंचा और राजासे कहा—महाराज ! आपका पुत्र बोलता है ।····बोलता है ? हाँ बोलता है ।····अच्छा मैंने तुम्हें

http://sahjanandvarnishastra.org/

१० गावोंकी जायदाद पुरस्कारमें दी। जब राजपुत्र घर आया तो बहुत बुलवानेपर भी न न बोले। तो राजाको चिड़ीमारपर गुस्सा आ गया कि चिड़ीमार भी हमसे मजाक करता है। हमारा पुत्र बोलता नहीं और यह कहता है कि बोलता है? राजाने उस चिड़ीमारको फांसी का हुक्म दे दिया। राजाने कहा कि ऐ चिड़ीमार तू जो खाना पीना चाहता हो सो खा पी ले या जिससे मिलना चाहता हो सो मिल ले, तुझे फांसी दी जायगी। तो चिड़ीमारने कहा—महाराज! मुझे खाना पीना कुछ नहीं है, मुझे तो सिर्फ १ मिनटके लिए राजपुत्रसे मिला दीजिए। मिला दिया। तो चिड़ीमार कहता है राजपुत्रसे कि हे राजपुत्र! मुझे मरनेका गम नहीं, गम इस बातका है कि दुनिया यही कहेगी कि चिड़ीमारने राजासे झूठ बोला था इसलिए उसे फांसी दी गई थी। सो कृपा करके आप उतने ही शब्द बोल दीजिए जो वाटिकामें बोले थे। फिर क्या था राजपुत्रने सारा वृत्तान्त सुनाया। देखो—मैं पहिले साधु था। राजासे बोल दिया तो मैं फंस गया, फिर चिड़ियाने डालीपर बोल दिया तो वह फंसी, अगर न बोलती तो क्यों फंसती? चिड़ीमार तो वहाँसे चला ही जा रहा था। और देखो—चिड़ीमारने राजासे बोल दिया तो इसे भी फांसीका हुक्म मिला। सो जो बोले सो फंसे। जो स्नेह करेगा किसी भी जीवसे वह बँधता है ही। तो यह तत्त्ववेदी पुरुष किससे अनुराग करे? ये सब बन्धकी चीजें हैं। वह तत्त्ववेदी पुरुष तो एक इस विशुद्ध परमात्मतत्त्वमें पहुंचता है। तो यह रूपातीत ध्यान निर्दोष सर्वगुणसम्पन्न परमात्माका ध्यान कर रहा है।

इत्यसौ सन्तताभ्यासवशात्संजातनिश्चयः।
अपि स्वप्नाद्यवस्थासु तमेवाध्यक्षमीक्षते ॥२०८४॥

ज्ञानस्वभावके संतत अभ्यासमें परकृत चेष्टाओंसे क्षोभका अभाव—मैं केवल ज्ञानमात्र हूं, सबसे निराला अपने आपमें आनन्द स्वभावको लिए हुए हूं। इस प्रकार ज्ञानमात्र अपने आत्माके चिन्तनका अभ्यास होनेसे उसको पूर्ण निश्चय अपने आपके बारेमें हो जाता है कि मैं ज्ञानमात्र हूं। यह निश्चय इतना दृढ़ हो जाता है कि कोई सम्मान करे अथवा अपमान करे, इन दोनोंमें उसकी यह दृढ़ प्रतीति है कि मैं तो ज्ञानमात्र हूं। ये लोग किसी दूसरेके बारे में सम्मान अपमान आदिकी बातें कर रहे हैं। जैसे कोई पुरुष समझ लेता है कि अमुक आदमी दूसरे के बारेमें निन्दाकी बात करता है तो उस निन्दा करने वालेका विरोध नहीं होता, इसी प्रकार यह ज्ञानी अपने को ऐसा लख रहा है कि मैं तो शाश्वत ज्ञानमात्र हूं और लोग जो कुछ भी रागद्वेष आदिकके व्यवहार करते हैं वे किसी दूसरेका लक्ष्य करके करते हैं। ये मुझे कुछ नहीं कह रहे। ये स्वयं ऐसे व्यवहारके कारण स्वयं अपनेमें क्षुब्ध हो रहे दौड़े होंगे। यह बात सम्भव ही है कि कोई ज्ञानी पुरुष अपने बारेमें ज्ञानस्वरूपका विश्वास लेता है और दूसरे लोग कुछ प्रतिकूल क्रियायें करें, तो वह ज्ञानीपुरुष जानता है कि ये लोग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मेरा कुछ भी नहीं कर रहे । इनकी ये सारी चेष्टायें किसी अन्यको लक्ष्यमें लेकर हो रही हैं ।

ज्ञानके सतताभ्याससे स्वप्नादिक अवस्थाओंमें भी तत्त्वके दर्शन—मैं तो ज्ञानमात्र हूं, इस प्रकार अपने आपके ज्ञानमात्र स्वरूपका निरन्तर अभ्यास होनेसे एक निश्चय उत्पन्न होता है, फिर वह योगी स्वप्न आदिक अवस्थावोंमें भी इस ही तत्त्वको प्रत्यक्षरूपसे देखता है । जिसका निरन्तर अभ्यास किया है स्वप्नमें वही इस योगीको दिख जाता है । यह रूपातीत ध्यानका वर्णन है । मुद्रामण्डल आकार प्रकारसे जो परे है ऐसा यह परमात्मतत्त्व कारण-समयसारा अथवा सिद्ध प्रभु हैं कार्य समयसार । वह है रूपातीत स्वरूप । रूपातीत ध्यानमें परमात्माको निरखा तो प्रभाव अपने पर आता है और अपने स्वभावको निरखा तो अपने पर आया ही । यों निरन्तर अभ्यास करता है ज्ञानानुभवका । इसके प्रतापसे स्वप्न आदिक अवस्थावोंमें भी यह तत्त्व प्रत्यक्ष दिखता है ।

सोऽहं सकलवित्सार्वः सिद्धः साध्यो भवच्युतः ।
परमात्मा परमज्योतिर्विश्वदर्शी निरञ्जनः ॥२०८५॥

भवरहित सकलवित् स्वरूपका चिन्तन—वह मैं सर्वज्ञ और निज वैभवसे युक्त हूं । देखिये एक सिद्ध प्रभुके गुणोंमें दृष्टि लग रही है और उसही के समान अपनी शक्तिको जब निरखा है तो उस निरखनेमें यह यत्न कर लिया कि इस ही प्रकार सर्वज्ञता मेरा स्वरूप है । व्यक्ति और शक्तिकी बात हृदयमें रखे रहियेगा । वह मैं सिद्ध हूं, स्वयं सत् हूं । अपने गुणोंसे निष्पन्न हूं । ऐसा यह मैं सिद्ध हूं, यही साध्य है । सिद्ध भी यह मैं हूं और साध्य भी । क्या बना है वह ? पूर्णविकासमय निरपेक्ष केवल, ऐसा मैं बनूंगा । ऐसा अपने आपके सम्बन्धमें परमात्मस्वरूपका निरन्तर खुद निर्णय कर रहा है । सोऽहं । वह मैं हूं । यह मैं भवच्युत हूं, भवसे रहित हूं । सिद्धप्रभु भवसे रहित हैं और उन्हींको निरखकर अपने स्वरूपको समझकर वह योगी मनन कर रहा है कि मैं भवसे रहित हूं । यह मैं जो सहज शाश्वत ज्ञानस्वरूप हूं वह भवसे च्युत है । बहुत अन्तर मननकी बात है कि परिस्थिति तो है यह संसारी की और विकार परिणमन भी है, जन्ममरण भी हो रहा है, नाना दशायें भी बनती हैं । ऐसी भी स्थितिमें इस ज्ञानीने कहाँ चित्त डाला है, उस सहज स्वरूपपर । सहजस्वरूप प्रत्येक वस्तुका नियमसे होता ही है अन्यथा वस्तुकी सत्ता नहीं रह सकती । तो मैं अपने सत्त्वमें सहज स्वरूप कैसा हूँ, इस पर दृष्टि देकर जो निर्णयमें आये उसको तो माने कि यह मैं हूं और शेष जो कुछ भी इस पर बीत रही है उसे यह न माने कि मैं हूं । रागद्वेष शोक विचार वितर्क आदि ये मैं नहीं हूं । कहाँ दृष्टि लगाकर निरख रहा है वैसी ही दृष्टि बनाकर यह प्रकरण सुनना चाहिए । वह मैं भवसे रहित हूँ ।

कैवल्यस्वरूपकी श्रद्धाके अभावमें केवल परिणति होनेकी अशक्यता—देखिये, न श्रद्धा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो ऐसी कि मेरा स्वरूप तो भवसे रहित है, संसारमें अतीत है तो वह वैसा बननेका उद्यम कर नहीं सकता। पानी गर्म है, पर यह विश्वास बना है ना कि पानीका स्वभाव ठंडा है, सो उस गर्म पानीको झट फैलाकर, पंखा चलाकर ठंडा कर लेते हैं, पर अग्निका गर्म स्वभाव है यह सभीको पता है सो किसीको अग्निको उस तरहसे ठंडा करते हुए न देखा होगा। तो अपने बारेमें यदि यह विश्वास न रखें कि मैं सर्वविकारोंसे रहित केवल ज्ञायकस्वरूप हूं, लेकिन जाय दृष्टि अन्तस्वरूपमें, तो हम उस अग्निके माफिक कभी शान्त नहीं बन सकते। तो यह रूपातीत ध्यानमें आया हुआ योगी अपने आपका कैसा चिन्तन कर रहा है। मैं भवसे रहित हूं, परमात्मा हूं। परमका अर्थ है उत्कृष्ट, मा वाला, जहाँ उत्कृष्ट लक्ष्मी है उसको परम कहते हैं। परम शब्द विशेषण रूप है। उत्कृष्ट लक्ष्मी वाला ऐसा यह मैं आत्मा हूँ।

परमज्योतिस्वरूपके चिन्तनमें सच्ची चतुराई—अहो, संसारकी चतुराईमें सोच तो यह रहा है जीव कि मैं बड़ी चतुराई कर रहा हूं, बहुतसे काम कर रहा हूं, बड़ा वैभव जोड़ रहा हूं, मैं दूसराको खूब सता रहा हूं, मैं अपने सब काम स्वार्थसे चला रहा हूं, यों सोचता है कि मैं बड़ी चतुराईका काम कर रहा हूं, लेकिन यह अमूर्त ज्ञाननिधि बरबाद हो जाती है इस चतुराईके कारण। हूँ तो मैं परम आत्मा उत्कृष्ट ज्ञान लक्ष्मीयुक्त आत्मा, पर ऐसा विश्वास न होनेसे उस मार्गमें हमारी गति नहीं हो पाती। यह मैं परमात्मा हूं, परम ज्योति उत्कृष्ट ज्योति। ज्योतिका काम है प्रकाश करना। ये दीपक, ये सूर्य चन्द्र क्या वैसा प्रकाश कर सकेंगे जो प्रकाश ज्ञानमें होता है। स्पष्ट समस्त सत् ज्ञानमें आते हैं उस प्रकाशकी हम क्या सूर्य चन्द्र आदिकसे उपमा दें ? एक क्या करोड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रभा इस ज्ञानमें है। मैं परमज्योतिस्वरूप हूं। सहज स्वभावसे तो यह मैं केवल जाननशक्ति मात्र हूं, ऐसी यह ज्योति है और पर्यायतः यह ऐसी ज्योतिरूप बन सकेगा कि जिस ज्योतिमें फिर वह प्रकाश प्रतिशत एक साथ प्रतिबिम्बित होता है। ऐसा यह मैं परमज्योतिस्व रूप हूं, समस्त विश्वका देखने वाला हूं। विश्वका ज्ञान करने वाले निज आत्माको जो दर्शनमें, प्रतिभासमें लेता है उसने सारे विश्वका दर्शन किया है। विश्वका दर्शन ज्ञानकी झांकी, विश्व रूपमें याने विश्व के आकार रूपमें नहीं होता, किन्तु समस्त विश्वके जाननहार परिणति वाले समस्त आत्माको प्रतिभासमें ले, यही विश्वदर्शन है।

निरञ्जन परमात्मतत्त्व—यह मैं निरञ्जन हूं, इसमें किसी भी परका सम्बंध नहीं, न शरीरका संबंध, न कर्मोंका सम्बंध, न रागादिक विकारोंका सम्बंध। किसी भी प्रकारका अञ्जन इस स्वरूपमें नहीं है। यहाँ उस तत्त्वको निरख रहा है ज्ञानी पुरुष अपने आपमें कि जिसके निरखनेके प्रसादसे यह लग रहा हुआ अञ्जन भस्म हो जाता है। अपनेको निरञ्जन अनुभव करना यह एक भव्यताका सूचक है। तो यह रूपातीत ध्यानी योगी अपने आपका ठीक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उतने रूपमें चिन्तन कर रहा है जितने रूपसे सिद्धप्रभु व्यक्त हुआ करते हैं। आप शक्तिको निरखते हैं तो कोई बात सिद्धसे कम है क्या? यदि कम है तो वह बात कितने ही प्रयत्न किए जानेपर भी उत्पन्न नहीं हो सकती। जितना जो कुछ सिद्धमें है उतना सब कुछ प्रत्येक आत्मामें है, व्यक्त नहीं है, है शक्तिरूप। चैतन्यस्वरूपके नाते यह समान है और उस ही समानताका यह रूपातीत ध्यान अपने आपमें चिन्तन कर रहा है।

तदासौ निश्चलोऽमूर्तो निष्कलङ्को जगद्गुरुः।
चिन्मात्रो विस्फुरत्युच्चैर्ध्यान ध्यातृविवर्जितः ॥२०८६॥

अमूर्त निष्कलङ्क आत्मस्वरूपका चिन्तन—जिस समय यह योगी निश्चल होता हुआ अपने आपको निरख रहा है कि मैं अमूर्त हूं, निश्चल हूं, जो स्वरूप अनुभवमें लाया गया है केवल ज्ञानमात्र जो अनुभवका काम है, उस कालमें निश्चल है, वहाँसे चलित नहीं और स्वरूपतः स्वभावमें तो कभी भी चलित नहीं हूं, अमूर्त हूं। मैं अपने आपको यदि अमूर्त पिण्डके रूपमें देखने लगूं तो यहाँ कुछ नजर न आयगा। यह ज्ञान यह प्रकाश यह प्रतिभास अमूर्त रूपमें ही तो ठहर सकता। मूर्तरूप हो तो प्रतिभास सम्भव ही नहीं है। यह मैं आत्मा अमूर्त हूं, निष्कलंक हूं। जो मेरा ढांचा है, भीतर जो बॉडी है, जिस स्वरूपसे मैं रचा हुआ हूं चिदानन्दस्वरूप, उस स्वरूपको देखता हूं तो उसमें तो वही है, चेतनामें तो चेतना ही है, कोई कलंक नहीं है, स्वरूप निरखा जा रहा है। जलके स्वरूपमें यदि गर्मीका प्रवेश है तो वह कभी ठंडा किया ही नहीं जा सकता।

जगद्गुरु अन्तस्तत्त्वके आश्रय बिना बरबादी—यह आत्मा जगत् गुरु है। चूंकि सिद्ध प्रभुको जगत् गुरु निरखा है। जो बातें सिद्धमें निरखी जा रही हैं वे सब बातें इस आत्मामें हैं। तो यह तत्त्व भी जगद्गुरु है। समस्त पदार्थोंमें श्रेष्ठपना यह भी आत्मामें निरखा जा रहा है अपनी शक्तिस्वभावको लक्ष्यमें रखते हुए। इस प्रकार जब यह अपने आपके ध्यानमें, एकाग्रतामें होकर रहता है तो उस समय यह ध्यान ध्याताके भेदसे रहित होकर विकसित होता है। दुनियाके इन लोगोंमें, इन परिवार संबंधोंमें, ये मेरे हैं, इनसे मुझे सुख मिलेगा इन बातोंमें पड़कर इस जीवका कुछ भी विकास न होगा। इन सबसे तो एकदम नेत्र बन्द कर ले, इनका विकल्प तोड़ दे और ऐसे अद्भुत साहसके साथ अपने आपमें विश्राम किया जाय तो सर्व वैभव विकसित होगा। इन दुनियावी लोगोंको अपना माने तो इसमें जीवकी बरबादी ही है। जिनको माना कि ये मेरे हैं, ये मेरे थे, उनमें से कोई क्या आपका बनकर रह सका? इतिहासकी, पुराणोंकी बात इस समय छोड़ दो, अपने आपके जीवनमें ही निहार लो, किस किसके बीचमें आपने यह मेरा है, ये मेरे हैं, इस तरह मानकर रहे थे, बड़े मौजके वातावरणोंमें रहे थे, पर क्या है आज? कुछ भी नहीं। व्यतीत हुई बातें सब एक स्वप्न जैसी लगती

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। इतने वर्ष गुजर गए, कितनी ही घटनाएँ जीवनमें घट गईं, पर वे आज सब स्वप्नवत् लगती हैं, और जो कुछ आज हैं वे भी स्वप्नवत् हैं।

प्रतीतिका परिणाम—इन सर्व बाह्य समागमोमें जिसके मोहबुद्धि नहीं है, ये मेरे सर्वस्व हैं ऐसी जिसकी दृष्टि नहीं है, वह अपनेको उन सबसे विविक्त समझता है। और इसी कारण वह अपनेको विशुद्ध बना लेता है, अगर प्रतीति खोटी है तो वह अपनेको खोटा ही बना डालता है। एक जमींदारका किसी गरीबके साथ मुकदमा चल गया। पेशीका दिन था। कस्बेसे रेलवे स्टेशन पहुंचकर रेलगाड़ीसे अदालतमें पहुंचना पड़ता था। तो इस गरीबने एक उपाय रचा। पहिलेसे ही किसी तांगे वालेको दो चार रुपये दे दिये और कह दिया कि देखो अमुक सेठ जब यहाँ आये तो उससे इतनी बात बोल देना कि सेठ जी आपका चेहरा आज कुछ गिरासा, तबियत खराब है क्या? यों ही किसी कुलीसे और स्टेशनमास्टरसे दो-दो चार-चार रुपये देकर सेठसे वही बात कहनेके लिए कह दिया। जब सेठ स्टेशनपर पहुंचा तो पहिले ताँगे वालेने वही बात कही, फिर कुलीने भी वही बात कही, फिर स्टेशन मास्टरने भी वही बात कही। अब तो उस सेठको पूरा विश्वास हो गया कि हमारी तबियत वास्तवमें खराब है, नहीं तो ये सब लोग क्यों कहते? लो वैसा सोचनेसे वह सेठ बीमार हो गया, घर लौट आया। वह गरीब तो पेशीमें पहुंच गया, वह सेठ न पहुंच सका। तो उसका फायदा उस गरीबने उठाया। तो जैसा अपनेको बार-बार चिन्तन करे वैसा उपयोग बनता है और उसके अनुरूप परिणति चलती है। तो यह रूपातीत ध्यानी अपने आपके स्वरूपके संबंधमें ये सब विचार करता है।

पृथग्भावमतिक्रम्य तथैक्यं परमात्मनि।
प्राप्नोति स मुनिः साक्षाद्यथान्यत्वं न बुध्यते ॥२०८७॥

सिद्ध परमात्माके चिन्तनसे भी अन्तमें एकत्वका अनुभवन—यह ज्ञानी ध्यानी रूपातीत ध्यानके प्रसंगमें प्रथम तो सिद्ध परमात्माका चिन्तवन करता है—अष्ट कर्मोंसे रहित, अमूर्त, लोकके शिखरपर विराजमान, शरीरसे भी अतीत, कषाय आदिक समस्त विकारोंसे अतीत प्रभुका ध्यान कर रहा है और इस पद्धतिसे करता है, पृथक् भाव अर्थात् अलगपनेका उल्लंघन करके साक्षात् एकताको इस तरह प्राप्त हो जाता है कि जिससे पृथक्पनेका बिल्कुल भान नहीं होता। तीन मंजिल हैं ध्यान करनेके। प्रथम तो दासोहं। मैं दास हूं, हे प्रभो मैं सेवक हूं, मैं तुम्हारे चरणोंकी रज हूं, और और भी अनेक प्रकारसे परमात्माकी उत्कृष्टता और अपनी निकृष्टता जानकर भक्ति की जाती है। इस पद्धतिसे भगवान की उपासना कर करके कुछ गुण विकास हो तो दा और छूट गया। सोहं रह गया। यह भक्तिकी दूसरी मंजिल है। जो वह है सो मैं हूं, जो आप हैं सो मैं हूं। यदि इस बातको कुछ लौकिक विधिमें बताया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाय तो यह बात उल्टी जंचती है। दासोहंकी मंजिल ऊँची और सोहंकी मंजिल नीची जंचती है। दासोहंकी मंजिलमें निरभिमानता और सोहंकी मंजिलमें अभिमानकी बात जंचती है। और अहंकी मंजिल वालेसे जनता घृणा करने लगती है। किन्तु शान्तिमार्गमें अहंके अनुभवका सर्वोत्कृष्ट महत्त्व है। सोहंके सतत अभ्यासके बाद तीसरी मंजिलमें दा भी छूट गया और सो भी छूट गया, सिर्फ अहं रह गया। इस अहंके ध्यानमें भीतरी चिन्तनकी बात चल रही है। इसमें तो सिर्फ अपने आपका ध्यान रह गया। इसमें लौकिक दृष्टिसे और भी अधिक अभिमान की बात जंचती है। लेकिन आत्मयोगका यह मनन उत्तम है, मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान। यह है एक बीचकी मंजिल। प्रभुमें और अपनेमें स्वरूपका साम्य कर करके इतना मग्न हो जाता है यह ज्ञानी ध्यानी कि वहाँ सो भी उड़कर सिर्फ हं रह जाता है, अर्थात् ज्ञानानन्दमात्र केवल निज स्वरूपका अनुभव वहाँ रह गया। तो इस प्रकार उस पार्थक्यका उल्लंघन करके इस ज्ञानी पुरुषने इस पद्धतिसे प्रभुका ध्यान किया कि साक्षात् जैसे उसे अन्यत्वका बोध न रहे इस प्रकारसे वह ध्यानमग्न हो गया।

ध्यानमें ज्ञानस्वरूपका निरन्तर ज्ञान—देखिये, ध्यानीने क्या किया ? ज्ञानमें क्या किया जाता है ? ज्ञानमें जो किया जाता है वही बात देर तक बनाये रहे वह ध्यानमें किया जाता है। और इस ज्ञानसे व इस ध्यानसे उत्कृष्ट एक और ज्ञान है जहाँ केवल ज्ञातृत्व स्थिति है। वह ध्यानकी ऊंची चीज है जहाँ केवल एक जाननहार स्थिति रहती है। उपयोग लगाना, विकल्पोंका तोड़ना, निर्विकल्प स्थितिकी ओर प्रयास करना, इन सबसे ऊपर केवल एक ज्ञातृत्व की स्थिति है। ज्ञानमें कुछ जाना नहीं जाता। परिजन जान लिया, ऋषिजन जान लिया, अन्य-अन्य बात भी जान लिया, यों ही इसी बीचमें एक बार अपने स्वरूपको भी जान लें। जानने की ही तो बात है। जिस ओर उपयोग लगाया, जिसको ज्ञेय बनाया उसे जान लिया। तो जानना यह क्या है, ज्ञानका क्या स्वरूप है, इस प्रकार उस स्वरूपको भी जानें। तो ऐसा ज्ञान मात्र जब जाननेमें आया तो उसीके द्वारा मैं ज्ञानमात्र हूं—ऐसा अनुभव भी पा लें और यह अनुभव दासोहं सोहंके बादका अनुभव है जो एक स्वरूपका और अपनेका भेद नहीं कर रहा।

निष्कलः परमात्माहं लोकालोकावभासकः।
विश्वव्यापी स्वभावस्थो विकारपरिवर्जितः ॥२०८८॥

निष्कल आत्मामें देहात्मबुद्धि होनेका दुष्परिणाम—रूपातीत ध्यानका यह एक अंतिम प्रसंग है। इसमें उपसंहार रूपमें ध्यानकी बात फिर बतायी है। ऐसा चिन्तन होता है कि मैं निष्कल हूं, शरीररहित हूं, शरीरसे परे हूं। शरीरसे परेका उपयोग लगायें तो अब भी विदित होने लगेगा कि मैं शरीरसे परे शरीरसे विलक्षण स्वरूपवाला हूं। इस शरीरमें जो रात दिनका संस्कार बसा है, यह मैं हूं, इस वासनाको हम क्षणभर भी नहीं छोड़ना चाहते हैं। प्रशंसामें, निन्दामें, व्यवहारमें, पोजीशनमें, सब स्थितियोंमें इस शरीरको शरीरके नाते ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सब मान रहे हैं। शरीरको ही 'यह मैं हूं' इस प्रकार अनुभव रहे हैं तो यह कितनी बड़ी भारी विपदा है ? जो विपदा संसारके सभी संकटोंका मूल कारण है। तो घबड़ाकर और संकटोंको मिटानेके लिए तो बाहरमें बड़ी हठ करते हैं और जो उपाय सूझता है सो बनाते हैं, पर सब संकटोंसे भी महान संकट जो यह लगा है कि हम आप यह वासना बनाये बैठे हैं कि यह वासना बनाये बैठे हैं कि यह शरीर ही मैं हूं। कहने सुननेमें तो लगता है कि क्या है, जरासी बात है, किन्तु यह बात इतनी बड़ी है कि जिसके कारण चौरासी लाख योनियोंमें, चतुर्गतियों में, नाना शरीरोंमें भटकना पड़ रहा है, जन्म लेना पड़ रहा है। बात इतनी जानना है कि इस देहसे रहित यह मैं आत्मा हूं, ऐसा जानना अनुभव करना, यह कितनी बड़ी विपदा है ? सारी विपदाओंका यही कारण है। भला, निगोद जैसी स्थितियोंमें रहना पड़े, जीवको स्वरूपतः और विकासकी ओरसे देखो तो कितना बड़ा अन्तर हो गया ? कहाँ क्या रहा ? कितने प्रकारके संकटोंको सहने वाले पशु पक्षी कोड़े मकोड़े नजर आ रहे हैं। यह सब किसका परिणाम है ? देहको माना कि यह मैं हूं, बस इतनीसी मान्यताका यह सारा परिणाम है। जैसे— विषकी एक बूंद सारे भोजनको विषैला बना देती है, इसी प्रकार शरीरको ही 'यह मैं हूं' इतनी मान्यता ही सारे संकटोंका कारण बन जाती है। उसका फल यह संसारका सारा संकट है। धन वैभव, कुटुम्ब, इज्जत प्रतिष्ठा—इनकी उत्सुकता इस शरीरमें आत्मबुद्धि रखनेके ही कारण है। यदि इन सबसे भिन्न अपने आपको निरख सकें तो फिर चिन्ता किस बातकी होगी ?

निष्कलताके अनुभवसे सकल संकटोंका अभाव—अनुभव करिये कि मैं शरीररहित हूं। यह बात छोटी नहीं, बड़ी बात है। ऐसा ज्ञान बनेगा, अनुभव बनेगा तो इस ही उपाय से आप शरीररहित बन जायेंगे, विशुद्ध आत्मा बन जायेंगे, पर मूलमें यह यत्न करनेका है और सब कल्याणोंकी यह जड़ है। समस्त ऋद्धियां सिद्धियां एक इसी अनुभवपर निर्भर हैं— मैं शरीरसे रहित केवल ज्ञानमात्र हूं। इन आँखोंसे भी बाहरमें निरखना बंद कर लीजिए। इस निरखनेमें जो कुछ नजर आता है वह दिलको उचाटनेका ही कारण होता है। कुछ क्षोभ और और विकल्पोंका ही उत्पादक होगा। समस्त इन्द्रियोंका व्यापार रोककर निरखिये निजमें शरीरमें है यह, पर कुछ ऐसी उपयोगकी विधि है कि उपयोगमें शरीरका भान ही नहीं रहता, अत्यन्त निर्भार केवल ज्ञानमात्र रह जाता है। ऐसा अनुभव आने दीजिए। यह ज्ञानमात्रका अनुभव सारे संकट दूर कर देता है। यहाँ न जाने किन-किनको देखकर अपना सम्पर्क बनाया, अपने विकल्पोंका विस्तार बनाया, पर उससे क्लेश ही मिला—एक इस ज्ञानमात्र निज तत्त्वका अनुभव हो तो सभी संकट दूर हो जायें।

आत्मरक्षाकी धुनिमें अन्तर्व्यवहार—यह आत्मरक्षाके वास्तविक प्रसंगमें बात कही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जा रही है। इस चिन्तनके प्रसादसे सारे संकट दूर होते हैं। ग्राजकलके संकट देखो—देश विदेशमें शत्रुतायें चल रही हैं, एक देश दूसरे देशको हड़प जाना चाहता है। जो जिस देशमें उत्पन्न हो गया उसे यह ग्रपना समझ लेता है, उसीके पक्षमें रहता है, ग्रन्यका विरोधी हो जाता है। यह एक कितनी ग्रज्ञानता भरी बात है ? जरा सोचो तो सही कि जैसा मेरा स्वरूप है वैसा ही सर्व जीवोका स्वरूप है। जैसा स्वरूप इस देशके वासियोंका है, वैसा ही स्वरूप ग्रन्य देशवासियोंका भी है, फिर उनसे द्वेष किस बातका करना ? उनके प्रति ग्रनेक प्रकारके विकल्प बनाकर, उनसे द्वेष भावना रखकर ग्रनेक प्रकारके संकटोंका ग्रनुभव किया करते हैं। पर उन सबका विकल्प छोड़कर एक इस निज ग्रात्मतत्त्वका ग्रनुभव किया जाय तो इसी ग्रनुभवके प्रसादसे सारे संकट दूर हो जाते हैं।

भगवतीका प्रसाद—जोशी लोग कहा करते हैं ग्रपने भक्तोंको कि तेरी भगवती फतेह करे। जरा बतावो नो सही कि वह भगवती कौन सी है ? वह भगवती है प्रज्ञा भगवती, यह ज्ञानानुभूति। इसके प्रसादसे हमारी पूर्ण विजय होती है। सारे संकट टल जाते हैं। लोग तो ऐसा कहते हैं कि वह भगवती भगवानके ग्रर्द्धांगमें रहती है। भगवती ग्रौर भगवानका रूपक भी यहाँ दिखाते हैं। इस शरीरके ऊपरसे नीचे तक एक ग्रोरका ग्राधा ग्रंग तो भगवानका रूपक बनाकर दिखाते हैं ग्रौर ग्राधा ग्रंग भगवतीका बनाकर दिखाते हैं। इस ग्रलंकारकी बात को कही तो, पर उसमें भी थोड़ा डरकर कहा। ग्ररे जरा ग्रन्तर्दृष्टि करके देखो तो भगवानका सारा ही रूप भगवतीरूप है ग्रौर सारा ही भगवतीरूप भगनानका रूप है। उसमें ग्रर्द्धांगका विभाग नहीं है। जो भगवानकी परिणति है उसे भगवती कहते हैं। तो उस ज्ञानानुभूति भगवतीके प्रसादसे सारे संकट दूर होते हैं। ज्ञानी चिन्तन कर रहा है कि मैं निष्कल हूं, परमात्मा हूं, लोकालोकका ग्रवभासन करने वाला हूं। समस्त जगत इस ज्ञानमें ज्ञेय होता है। मैं समस्त विश्वमें व्यापक हूं, स्वभावमें स्थित हूं, विकारोंसे रहित हूं—इस प्रकार यह ज्ञानी ध्यानी रूपातीत ध्यानके प्रसंगमें ग्रपना चिन्तन कर रहा है। ग्रब इस प्रकरणमें एक ऐसे परमात्माको भजो इस ग्रनुरोधरूप ग्रन्तिम छंद कहा जा रहा है।

इति विगतविकल्पं क्षीणरागादिदोषं,
विदितसकलवेद्यं व्यक्त विश्वप्रपञ्चम्।
शिवमजमनवद्यं विश्वलोकैकनाथं,
परमपुरुषमुच्चैर्भावशुद्धया भजस्व ॥२०८९॥

रूपातीत तत्त्वके ध्यानका ग्रनुरोधपूर्वक प्रकरणका उपसंहार—समस्त विकल्पोंसे दूर निर्विकल्प ज्ञानमात्र, जिसके रागादिक दोष समस्त क्षीण हो गए हैं, विकारोंसे ग्रतीत हैं, सकल वेद्य विदित हो गए हैं, कोई सत् जाननेको छूटा नहीं है। समस्त विश्वके प्रपंचोंको जिसने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

छोड़ दिया है, केवल एक ज्ञानलीला ही जिनके रही है, सर्व रागद्वेषादिककी लीलायें जिनकी समाप्त हो गई हैं, ऐसे शिव अज निर्दोष समस्त विश्वके एक नेता ऐसे उत्कृष्ट आत्माको हे भव्य जन ! भावशुद्धिसे ध्यावो, सेवो। उनके गुणसमूहमें ऐसा ध्यान लगावो कि 'वह मैं हूं' इस प्रकारका पहिले योग चले और स्वरूपमात्रका चिन्तन रहकर एक ज्ञानानुभव बने, इस प्रकारसे उस परमात्मतत्त्वको भजो। इस रूपातीत ध्यानमें पहिले सिद्धप्रभुका ध्यान किया, जहाँ दासोहं जैसी स्थिति है, फिर उस विकाससे अपनी शक्तिसे समता लाकर सोहं जैसी स्थिति बनाई गई है। इसके बाद जब स्वरूपमात्र ध्यानमें रहा तो वहाँ केवल हं अनुभवमें आया। ज्ञानमात्र निज तत्त्व अनुभवमें रहता है। यह तत्त्व रूपसे अतीत है, शरीर मुद्रा आकार इन सबसे परे हैं, इससे इस परमज्योति ज्ञानस्वरूप तत्त्वको रूपातीत कहा है। इस तरह धर्मध्यानके प्रसंगमें यह ध्यानी आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय आदिक में क्रमसे बढ़-बढ़कर समस्त विधियोंसे चलकर अन्तमें रूपातीत ध्यानमें जो धर्मध्यानको ध्याया था उसको समाप्त करते हैं। इसके बाद अब धर्मध्यानका फल बताकर शुक्लध्यानका वर्णन करेंगे।

॥ ज्ञानार्णव प्रवचन विंश भाग समाप्त ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com